अमृतलाल नागर के कथा साहित्य का समाजशास्त्रीय विश्लेषण

(इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल० उपाधि के लिये प्रस्तुत)

शोध प्रबन्ध

निर्देशिका :
डा० मालती सिंह
प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

शोधकर्त्री :
सरोज सिंह

हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

जून १९९९

अमृतलाल नागर के कथा साहित्य का समाजशास्त्रीय विश्लेषण

सारांश

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में सात सोपान है, जिसके अन्तर्गत नागर जी के कथा साहित्य के सामाजिक परिप्रेक्ष्य को समग्र रूप से विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है ।

प्रथम अध्याय में साहित्य और समाजशास्त्र की परिभाषा को स्पष्ट करते हुए उसके विषय क्षेत्र को स्पष्ट किया गया है । साहित्य की धारणा के परिवर्तन और विकास में सामाजिक विकास प्रक्रिया की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। साहित्य का समाजशास्त्र बीसवीं शताब्दी की उपज है, इसका महत्वपूर्ण विकास साहित्य की सामाजिकता की मीमांसा की दिशा में हुआ है। इस धारा के अन्तर्गत साहित्यिक कर्म और कृतियों के माध्यम से साहित्य की सामाजिकता की व्याख्या होती है। साहित्य के समाजशास्त्र का मुख्य उद्देश्य है समाज से साहित्य के सम्बन्ध की खोज और उसकी व्याख्या । साहित्यिक रचना एक सामाजिक कर्म है और कृति एक सामाजिक उत्पादन । लेकिन साहित्य की रचना व्यक्ति करता है, इसलिए समाज से साहित्य के संबंध को समझने के लिए समाज से रचनाकार व्यक्ति के ठोस ऐतिहासिक संबंध की समझ आवश्यक है। साहित्य और समाजशास्त्र के संबधों , पर भी विचार किया गया है ।आज के साहित्यिक समाजशास्त्री रचना की अस्मिता को स्वीकार करते हुए समाज से उसके संबंध का विश्लेषण करते हैं। साहित्य के समाजशास्त्र में समाज से लेखक के संबंध, उसकी सामाजिक स्थिति, जीविका, आश्रय और इन सबसे प्रभावित होने वाली मानसिकता का अध्ययन होता है । तेन, लिवो लावेंथल, लूसिएं गोल्डमान, रेमण्ड विलियन्स जैसे प्रसिद्ध पाश्चात्य साहित्य के समाजशास्त्रियों की अवधारणा तथा भारतीय विचारकों की मान्यतायें भी निरूपित की गयी है। साहित्य का समाजशास्त्र समाजशास्त्र की नवविकसित शाखा के रूप में बीसवीं शताब्दी में निरन्तर विकास की ओर अग्रसर है।

अन्य साहित्यिक विधाओं तथा उपन्यास का समाजशास्त्र पर भी विचार व्यक्त

करने का प्रयास किया गया है। साहित्यिक विधाओं का प्रयोजन है – रचनाओं का संप्रेषण और सौन्दर्य बोध । साहित्य का वहीं समाजशास्त्र प्रामाणिक और विश्वसनीय हो सकता है जो साहित्य के रूप में इन दोनों पक्षों को उजागर करें । सामाजिक विकास से साहित्य रूप के विकास के स्पष्ट संबंध का सबसे बड़ा प्रमाण है आधुनिक युग में उपन्यास का उदय । उपन्यास के उदय में तीन कारक परिस्थितियाँ थी – लोकजीवन, मध्यवर्ग और पाठक । आज के पाठक उपन्यास के माध्यम से जीवन के विस्तार को पाकर मन से मानवीय अनुभूति के विस्तृत क्षेत्र में सहभागी हो जाता है । उपन्यास ही आज के यथार्थ को उसकी बहुरंगी विविधता में मूर्त कर सकता है । अपने समय, समाज और इतिहास की प्रक्रिया से परिभाषित मनुष्य ही उपन्यास रचना का लक्ष्य है और समाजशास्त्रीय अन्वेषण का भी । पश्चिम में साहित्य के समाजशास्त्र के विकास के आरंभिक काल से ही उपन्यास के सामाजिक आधार, अर्थ और अभिप्राय की खोज होती आ रही है। उपन्यास के समाजशास्त्रीय व्याख्या की अनेक दृष्टियाँ और पद्धतियाँ है । उपन्यास अपने पाठकों को जीवन मूल्यों के बीच चुनाव का संकेत देता है, उनकी सहानुभूतियों का विस्तार करता है और जीवन की कला भी सिखाता है। इ स तरह उसका एक नैतिक आयाम है।

द्वितीय अध्याय में अमृतलाल नागर के व्यक्तित्व, रचना–प्रक्रिया और विचारधारा को समझने की चेष्ठा की गयी है, साथ ही उनके परिवेश को भी रेखांकित किया गया है। नागर जी ने आधुनिक कथा साहित्य को अपनी महत्वपूर्ण कृतियों से समृद्ध किया है और अपने व्यक्तित्व की विलक्षण छाप हिन्दी कथा साहित्य पर अंकित की है । साहित्य के अन्तर्गत लेखक का सम्पूर्ण व्यक्तित्व अभिव्यक्त होता है – उसकी अनुभूति, कल्पना, धारणा, विचारणा आदि। नागर जी के व्यक्तित्व के परिष्करण में उनके पिता के गाँधीवादी विचारों, नैतिक संस्कारों एवं उच्चादर्शों का अमिट योगदान रहा है। जीवन के प्रारम्भिक दिनों में जिस आचार– विचार का बीज उनके संस्कारों में पनपता रहा, वह उनके साहित्यिक

जीवन में पूरी तरह पल्लवित हो चुका है। जीवन के कष्टों और आघातों से ज्यों-ज्यों इनका साक्षात्कार होता गया, जीवनास्था का स्वरूप निखरता गया। अमृतलाल नागर जी का व्यक्तित्व एक उन्मुक्त और जीवन्त कथा लेखक का व्यक्तित्व रहा है। जीवन के साक्षात् अनुभवों को, स्वयं भोगे हुए क्षणों को साहित्य निबद्ध कर देना उनके कथाकार व्यक्तित्व की उल्लेखनीय विशेषता रही है । नागर जी ऊँचे, गौरवर्णी, तेजस्वी परन्तु सरल और आडम्बर मुक्त व्यक्ति के रूप में आकृष्ट करते रहे हैं। रहन-सहन में सादगी और सुरुचि उन्हें स्वभाव से प्रिय थी। नागर जी वान भंग और मिठाई के बेहद शौकीन रहे है । वे अपने साथ एक पान का डिब्बा अवश्य रखते थे। उनकी ये रूचियाँ उनके व्यक्तित्व में समाये उमंग और उल्लास-तत्व की प्रतीक है। नागर जी की रूचियों में वैविध्य और वैचित्र्य है। एक ओर उन्हें इतिहास, पुराण और साहित्य तीनों के प्रति गहरी रूचि, तो दूसरी ओर संगीत और रंगमंच से भी विशेष लगाव रहा है ।

व्यक्तिगत रूचियों, वृतियों के अतिरिक्त नागर जी के व्यक्तित्व निर्माण में वाह्य सम्पर्कों और युगीन परिस्थितियों ने भी सक्रिय भूमिका निभाई है। आंतरिक और वाह्य प्रेरणाओं से संबंधित परिस्थितियाँ प्रभाव और सम्पर्क लेखक के विचारों और भावनाओं को दिशा प्रदान करते हैं और लेखक की आन्तरिक शक्तियों को उद्धेलित कर अन्तर्द्वन्द्व को जन्म देते हैं। नागर जी के लेखकीय व्यक्तित्व के पार्श्व में कतिपय विशिष्ट प्रेरणायें रही है, जिन्होंने नागर जी को एक साहित्यकार बनने के लिए प्रेरित किया। डॉ0 श्यामसुन्दर दास, पं0 माधव शुक्ल, प्रेमचन्द, प्रसाद, शरतचन्द्र, निराला, आदि प्रसिद्ध साहित्यकारों के सम्पर्क से नागर जी के साहित्यिक व्यक्तित्व में निखार आया । नागर जी का लेखक -व्यक्तित्व एक प्रतिभा सम्पन्न ईमानदार, कर्मठ, महत्वाकांक्षी और संघर्षों में पलने वाले कर्मनिष्ठ कलाकार का व्यक्तित्व है। आधुनिक जीवन की विषम परिस्थितियों में भी उन्होंने स्वतन्त्र लेखन का व्रत अपनाया और आत्मसम्मान तथा निष्ठापूर्वक उसका निर्वाह किया।

नागर जी के व्यक्तित्व की सबसे महत्व की चीज आशामयी अदम्य जिजीविषा और जीवन आस्थायी। उनका लेखकीय व्यक्तित्व एक ईमानदार, सच्चे भारतीय लेखक जिजीविषायुक्त, संघर्षों– कठिनाइयों का सामना करने वाले कर्मठ आस्थाशील कलाकार का व्यक्तित्व था। उनके स्वभाव एवं व्यक्तित्व का सहज गुण है – आत्मीयता । नागर जी के जीवन का मुख्य लक्ष्य आनंद और शांति था। उनके साहित्य में तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और वैचारिक परिवेश प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में प्रतिबिम्बित हुआ है। उनके कथा साहित्य में स्वाधीन भारत के हृदय की धड़कन सुनाई पड़ती है । नागर जी की मनोभूमि भारत की सांस्कृतिक गरिमा से अभिभूत होकर प्राचीनता की स्वर्णभूमि पर अभिनव सामाजिक जीवन और राष्ट्रीय जागरण की अखण्ड ज्योति जलाकर रामराज्य की कल्पना साकार करने के लिए सचेष्ट दिखाई पड़ती है । समग्र रूप से वे एक सम्पूर्ण मानव, संवेदनशील कलाकर थे। उन्होंने पूर्ण समर्पित भाव से भारतीय संस्कारयुक्त आत्मा को मानवता का जामा पहनाया है, उनके कृतित्व में तत्कालीन परिवेश गहरे रंगों में उभरा हुआ है।

तृतीय अध्याय में नागर जी के कथा सृजन की समीक्षा की गई है जिसके अन्तर्गत समाज, संस्कृति , इतिहास, दर्शन और मानव जीवन के अनेक पहलू समाहित हैं। उनके कथा साहित्य में एक समाजशास्त्री का सामाजिक अध्ययन, इतिहासकार का इतिहास जगत और दार्शनिक का चिन्तनलोक स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। वे सामाजिक स्थितियों के निरूपक तथा इतिहास का नींव पर खड़े समकालीन जीवन की ऐसी इमारत थे जो मानवीय अनुभवों के ईंट गारे से बनाई गई थी। इस अध्याय के अन्तर्गत उनके प्रमुख उपन्यासो एवं कहानियों का परिचय एवं वैशिष्ट्य प्रस्तुत किया गया है । 'महाकाल' उनके द्वारा रचित प्रथम सामाजिक उपन्यास है, जो बंगाल के भीषण अकाल का यथार्थ प्रामाणिक तथा जीवन्त चित्र प्रस्तुत करता है । नागर जी ने एक समाजशास्त्री की भांति दुर्भिक्ष के सामाजिक, राजनीतिक कारणों से भी परखकर कथा को अधिक सार्थक और सोद्देश्य बनाकर प्रस्तुत

किया है। 'सेठ बाँकेमल' एक रोचक, हास्य व्यंग्य मिश्रित प्रसंगों से परिपूर्ण उपन्यास है। सेठ बाँकेमल और उनके मित्र पारसनाथ चौबे का चरित्र परस्पर मिल – जुलकर समान्तवादी व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करते है। इस उपन्यास में नागर जी ने लोक जीवन का सटीक चित्रण करते हुए आगरा की ठेठ खड़ी बोली मिश्रित ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। 'बूँद और समुद्र' नागर जी द्वारा रचित सामाजिक और वैयक्तिक जीवन के अन्तर्वाह्य अनुभूति चित्रण एवं युगीन परिवेश का प्रस्तुतिकरण है । इस उपन्यास का शीर्षक प्रतीकात्मक है। बूँद व्यष्टि का अर्थ वहन करती है तो समुद्र समाज की प्रतीकार्थ है। नागर जी ने सर्वत्र व्यक्ति और समाज को एक दूसरे का पूरक माना है। इस उपन्यास की कथा का मुख्य सम्बन्ध लखनऊ के चौक मुहल्ले से है , परन्तु इस मुहल्ले के चित्रण के माध्यम से लेखक ने लखनऊ नगर के अतिरिक्त सम्पूर्ण सामाजिक जीवन को प्रत्यक्ष करने का प्रयास किया है। 'शतरंज के मोहरे' ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर रचित गदर पूर्व के नवाबों के सामन्तशाही अत्याचार, भोगविलास, अंग्रेजों का बढ़ता हुआ कूटनीतिक चाल और दो पाटों के बीच में पिसता हुआ हिन्दू मुस्लिम समाज एवं कुशासन से फैली हुई सामाजिक व्यवस्था और इन सबके ताने बाने में बुनी वर्तमान राष्ट्रीयता की सूक्ष्म जागरूकता । नागर जी ने अपनी सजगता के कारण ही इस उपन्यास में साहित्य एवं इतिहास का अद्भुत सम्मिलन प्रस्तुत किया है । इस उपन्यास के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में सामाजिक विषमता , नारी दुर्दशा एवं अपनी मान्यताओं के संकेत तथा हिन्दू – मुस्लिम संस्कृतियों का सन्निवेश आदि ने कल्पना तत्वों को श्रृंखलित कर इसे रोचक बना दिया है । 'सुहाग के नूपुर' में परम्परागत संस्कृति पर आस्था प्रकट करते हुए नारी के कुलवधू रूप को महत्ता और उच्चाशयता प्रदान की है

नागर जी की सर्जकता, प्रस्तुतीकरण क्षमता एवं सहज मानवीय चिन्ताओं एवं भावनाओ के कारण यह उपन्यास एक मौलिक रचना है । कुलवधू के सुहाग के नूपुर और नगरवधू के नृत्यघुंघरूओं का संघर्ष ही उपन्यास की मूल संवेदना है। इसमें एक प्रेम

त्रिकोण के माध्यम से सामाजिक समस्याओं, राजनीतिक संघर्षों , कला और संस्कृति के विविध रूपों का सागोपांग चित्रण किया गया है। 'अमृत और विष' में नागर जी की औपन्यासिक यात्रा का उत्कर्ष दिखलाई देता है। समाजवादी यथार्थवाद का पैना चित्रण, वर्तमान समस्याओं से सीधा साक्षात्कार राजनीतिक षड्यन्त्रों का व्यंग्यात्मक रूप, सृजन प्रक्रिया का विश्लेषण, नई पीढ़ी के युगीन संघर्षों का सहानुभूति पूर्वक अंकन इस उपन्यास को महत्वपूर्ण बना देते है। शिल्प की दृष्टि से उपन्यास के भीतर उपन्यास की रचना का प्रयोग नूतन शिल्प प्रयोग है। लेखक अरविन्दशंकर का जीवन, उसके संघर्ष, सामाजिक समस्याओं को भोगना और उनका विश्लेषण एवं उसकी सृजन प्रक्रिया एक साहित्यकार की कहानी है ।

'सात घूंघट वाला मुखड़ा' में इतिहास के एक रहस्यमय चरित्र बेगम समरू के इतिहास सम्मत तथ्यों को प्रचलित किवदंतियों से कल्पनामय रोचक रूप देकर इसका कथा संगठन किया गया है । पौराणिक – सांस्कृतिक पृष्ठभूति पर आधारित , 'एकदा नैमिषारण्ये', 'मानस का हंस', 'खंजन नयन' आदि विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण उपन्यास है । 'एकदा नैमिषारण्ये' पौराणिक संदर्भों से युक्त राष्ट्रीय संस्कृति के नवजागरण का सचेतन आलेख है और 'मानस का हंस' में गोस्वामी तुलसीदास के जीवनवृत्त और मानसिक ऊँचाईयों को दैवी और स्वतः स्फूर्त उर्जस्वित भक्ति को जीवन की चिरन्तन आस्था और विश्वास के रूप में नूतन आयाम दिया है । 'नाच्यौ बहुत गोपाल' मेहतर जाति की युग युगीन रिसती पीड़ा का अनूठा दस्तावेज है। इस मानसिकता, आचार–विचार, निषेध मर्यादाओं को केन्द्र बनाकर चलती है। नागर जी ने मेहतर वर्ग के समस्त समाजशास्त्रीय अध्ययन और सर्वेक्षण पर आधारित इस उपन्यास को जीवन्त, आत्मीय और प्रामाणिक दस्तावेज बना दिया है ।

'खंजन नयन', सूरदास के व्यक्तित्व एवं जीवन पर आधारित , मानवीय सबलताओं, दुर्बलताओं से युक्त संवेदनशील व्यक्ति है। 'बिखरे तिनके' नागर जी द्वारा लिखित आधुनिक समाज तथा भारतीय राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार तथा उसके प्रभाव पर आधारित

उपन्यास है । 'अग्निगर्भा' में दहेज की समस्या तथा नारी की स्थिति पर आधारित उपन्यास है। 'करवट' में भारतीय समाज के एक घटनाबहुल इतिहास को रोचक कथा में रचनान्तरित करने का प्रयास है जिसमें इतिहास की कल्पना का आधार है । इसकी कथावस्तु ऐतिहासिक दृष्टि से भारतीय इतिहास के पुनर्जागरण का दौर प्रस्तुत करती है । 'पीढ़ियाँ' नागर जी का अन्तिम उपन्यास है जो करवट का विस्तार है । इस उपन्यास में नागर जी ने अधिक से अधिक पीढ़िया अंकित की है, जो भारत का चित्र प्रस्तुत करती है ।

नागर जी की कहानियाँ पाठकीय संवेदना को स्पर्श करती हुई मानस को हिल्लोलित करती है। समाज की समस्याओं के विस्तृत रूप मानवीय संघर्षों , राष्ट्रीय और विश्वव्यापी परिवर्तनों काप्रभाव यथातथ्य रूप में चित्रित किया गया है। कहानी कला के उत्कर्ष काल में लेखक की बौद्धिक चेतना ने समाज के गुणों–अवगुणों का स्वतन्त्र लेखा जोखा प्रस्तुत किया है और सामाजिक सदस्यता पर चोट करने वाली हर रूढ़ि , अन्धविश्वास पर व्यंग्य किया है । उनकी कहानियों को सामाजिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक, आंचलिक तथा हास्यव्यंग्य रूप में विभाजित किया जा सकता है। लखनऊ नगर की पृष्ठभूमि इन कहानियों की अप्रतिम विशेषता है । 'कादर मियाँ की भौजी', शकीला की माँ, जन्तर मन्तर, मरघट के कुत्ते, हाजी कुल्फी वाला, खटकिन भाभी, कयामत का दिन, मल्का टूरिया का बेटा, मुल्लर की महतारी आदि कहानियों में निम्न मध्यवर्गीय समाज का चित्रण है । 'सूखी–नदियाँ, मोती की सात चलनियाँ, माँ–बाप और बच्चे , बंदिनी, दो आस्थाये, सिकन्दर हार गया, गिरहकट, सती का दूसरा ब्याह में भारतीय समाज का प्रतिबिम्ब अंकित है। राजनीतिक पृष्ठभूमि पर आधारित कहानियों में एटमबम, चौदह अप्रैल, एक था गाँधी, जय पराजय, देश सेवा शाह मदारों की , लखनवी होली आदि प्रमुख है। नागर जी ने मनोविश्लेषणात्मक कहानियाँ भी लिखी है । आदमी जाना अनजाना, क्लार्क ऋषि का शाप, नाश और निर्माण , बेबी की प्रेम कहानी, राजा, रानी और संतान, मन के संकेत आदि

कहानियों में नागर जी ने काल्पनिक अनुभूतियों को विश्लेषणात्मक रूप से मनोवैज्ञानिक ढाँचे में आबद्ध किया है। लखनऊ का हर रंग उनके उपन्यासों एवं कहानियों में बिखरा पडा है। नागर जी ने कथा साहित्य को एक स्वस्थ दृष्टि प्रदान की है। उनकी कहानियों में एक नवीन कथ्य तथा शिल्प दिखाई देता है।

चतुर्थ अध्याय में नागर जी सामाजिक चेतना पर आधारित उपन्यासों का समाजशास्त्रीय विश्लेषण किया गया है । व्यक्ति , परिवार, वर्गगत, जातिगत संघर्ष, सामाजिक व्यवस्था, आर्थिक विषमता जैसी सामाजिक समस्यायें उठाई गयी है। समाजशास्त्रीय मान्यताओं के अनुसार दैहिक आवश्यकताओं तथा काम संबंधों की पूर्ति के लिए परिवार संस्था का उदय हुआ। परिवार पति पत्नी, बच्चों और आगामी पीढी के संगठन का नाम है। संयुक्त परिवार व्यवस्था टूटती चली जा रही है। नागर जी ने अपने उपन्यासों में परिवार के कई रूप चित्रित किये है। 'महाकाल' उपन्यास में नागर जी पुरूष की सामन्ती मान्यता पर तीव्र प्रहार करते हुए दयनीय पारिवारिक स्थिति को प्रस्तुत किया है । 'सेठ बाँकेमल' में परिवार का विशेष उल्लेख नहीं मिलता। 'बूँद और समुद्र' उपन्यास में व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों को चित्रित किया गया है। लेखक ने लखनऊ के एक मुहल्ले के जीवन के माध्यम से मानो पूरे देश के तत्कालीन स्वरूप को उद्घाटित किया है। लेखक ने आज के मनुष्य के भीतर उठते हुए भाव एवं विचारगत परिवर्तनों, विघटित मूल्यों और सम्बन्धों तथा राजनीतिक दलों विभीषिकाओं से त्रस्त होती मानवता को पहचाना है। बूँद और समुद्र का प्रत्येक पात्र बूँद है जिसका समाजरूपी विशाल समुद्र में अपना स्थान है। नागर जी ने सशक्त पात्रों की सर्जना करके आज के समाज की सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं का चित्रण किया है। इस उपन्यास में संयुक्त परिवार के साथ-साथ एकल परिवार को भी चित्रित किया गया है।

'अमृत और विष' भारतीय समाज व्यवस्था को पुरानी एवं नई पीढ़ी के नैतिक आदर्शों, संस्कारों, धार्मिक विचारों आदि के संघर्ष के साथ चित्रित किया है। जातिप्रथा

एवं संयुक्त परिवार हिन्दू सामाजिक संरचना के महत्वपूर्ण आधार रहे है। इस उपन्यास मे नागर जी ने संयुक्त परिवार के प्रति लोगों का असन्तोष एवं अनास्था व्यक्त की है। इन परिवारों में नियंत्रण की शिथिलता एवं सदस्यों में पारिवारिक निष्ठा का अभाव है। 'नाच्यौ बहुत गोपाल' में उन सभी स्थितियों, विचारों और मान्याताओं से अलग समाज के निम्न कहे जाने वाले उपेक्षित वर्ग की सामाजिक स्थिति का मूल्यांकन किया गया है। नागर जी ने समाज द्वारा उपेक्षित मेहतर जाति और उसके परिवार को उपन्यास का विषय बनाकर विशेष सम्मान दिया है। भारतीय सामाजिक संगठन का मुख्य आधार वर्णव्यवस्था ही है। वर्णव्यवस्था के रूढिवादी और परम्परागत रूप ने समाज में ऊँच-नीच, जाति भेद, छूआछूत जैसी अनेक बुराइयों को जन्म दिया है। वे वर्ण को जन्मना न मानते हुए कर्मणा और जीवनदृष्टि से सम्बद्ध मानते है । संयुक्त तथा एकल परिवारों के टूटने का बहुत बड़ा कारण अवैध सम्बन्ध है। 'बिखरे तिनके' उपन्यास में इन अवैध सम्बन्धों को नागर जी ने उजागर किया है। इस उपन्यास में परिवारों की स्वार्थी नीतियों को भी प्रस्तुत किया गया है । इस उपन्यास में विधवा विवाह तथा अन्तर्जातीय विवाह और उनसे उत्पन्न समस्याओं को भी प्रस्तुत किया गया है। 'अग्निगर्भा,' में आज की सबसे जीवन्त, भयानक समस्या दहेज को चित्रित किया गया है।

सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत वर्ण तथा जाति व्यवस्था को भी अपने उपन्यासों में इन्होंने व्यक्त किया है । 'महाकाल' में हिन्दू-मुसलमान सभी जाति धर्मों के लोग दिखाई देते है। 'महाकाल' यदि ध्वंसोन्मुख समाज की यथार्थवादी और शैल्पिक सजगता का प्रतीक है तो 'सेठ बाँकेमल' हास्य और व्यंग्य की धूरी पर घूमता हुआ एक ऐसा उपन्यास है, जिसमें जिन्दगी के यथार्थ रंग घुल गये है। 'बूंद और समुद्र' नागर जी के अध्ययन, अगाध ज्ञान एवं साहित्यिक प्रतिभा का प्रतिफलन है, इस रचना की भावभूमि सामाजिक और वैयक्तिक जीवन से सम्पृक्त है। नागर जी ने परम्परागत वर्ण व्यवस्था पर आधारित जाति-पांति के

भेद को सामाजिक विकृति मानते हुए उसका विरोध किया है । 'अमृत और विष' सामाजिक जीवन के प्रत्येक पहलू के असत् पक्ष का उद्घाटन कर सत के प्रति आस्था, विश्वास और सत्य का संदेश देता है। लेखक की आस्था और विश्वास एवं समाज के कुरूप के प्रति विद्रोह के परिप्रेक्ष्य में सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, औद्योगिक क्षेत्रों में घुमड़ने वाले विष के प्रतिकार की कहानी है । 'नाच्यौ बहुत गोपाल' में नागर जी ने वर्णव्यवस्था पर तीक्ष्ण प्रहार किया है । वर्णव्यवस्था के विषय में उनका अपना दृष्टिकोण है। वे वर्ण को जन्मना न मानते हुए कर्मणा और जीवनदृष्टि से सम्बद्ध मानते है । इस उपन्यास में नागर जी ने विशेष रूप से वर्णव्यवस्था के जड़-संस्कारों का उच्च वर्ण के थोथे अभिमान और पाखण्ड पर प्रहार किया है ।

किसी भी देश की संस्कृति, राष्ट्रीयता, सामाजिक गतिविधियाँ, राजनीतिक प्रभाव, समाज की समृद्धि और निर्धनता, मनुष्य की अस्तित्व चेतना उपन्यासों की विषयवस्तु होती है । पुरातन मूल्यों, जर्जर रूढ़ियों और आधुनिक सभ्यता के तथाकथित अधिकारों के मध्य नारी एक समस्या बन गई है । स्त्री-पुरूष के संबंध सामाजिक संस्कारों के कारण परम्परित मानदण्डों और परिवर्तित मूल्यों के आधार पर प्रतिष्ठित है। नागर जी नारी को पुरूष की तरह ही समाज की एक स्वतंत्र इकाई मानते थे। सदियों से चली आ रही परम्पराओं के कारण पीड़ित नारी की कराहटों में सामाजिक चेतना को स्वतः अभिव्यक्ति दी है । नागर जी के समसामयिक सामाजिक उपन्यासों में नारी समस्याओं की अभिव्यक्ति हुई है। नवचेतना का सर्वाधिक प्रभाव भारतीय नारी पर पड़ा और वह परम्परागत आदर्शों का खोल उतार कर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिये आतुर हो उठी। नारी की वास्तविक पीड़ा एक ही है, किन्तु उसकी स्थिति तथा पीडा एक ही है, किन्तु उसकी स्थिति तथा उसकी समस्यायें प्रत्येक उपन्यास में बदलती रहती है।

विवाह संस्था का पारिवारिक जीवन की सुदृढ़ता की दृष्टि से विशेष महत्व है। युग परिवर्तन के कारण आज का समाज विवाह जैसे पवित्र संस्कार को निरर्थक घोषित कर रहा है। पश्चिमी सभ्यता एवं आधुनिक शिक्षा ने विवाह संस्था की जड़ें हिला दी है। नागर जी ने विवाह को स्त्री पुरूष के चिरन्तन सम्बन्ध के रूप में स्वीकार किया है। अन्तर्जातीय विवाह आधुनिक सामाजिक चेतना का एक महत्वपूर्ण पहलू है । बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक चरण में इस प्रकार के वैवाहिक संबंध सामाजिक दृष्टि से पाप समझे जाते थे, परन्तु अब और जातिगत संकीर्णतायें समाप्त हो रही है। वर्तमान सामाजिक संदर्भ में अन्तर्जातीय विवाह की स्थिति पर नागर जी ने समाज के परम्परा पोषक वर्गों के मत को प्रस्तुत किया है।

नागर जी का कथा साहित्य बीसवीं सदी के भारतीय समाज के जीवन स्तर का लेखा जोखा प्रस्तुत करता है । नागर जी मुख्य रूप से सामाजिक उपन्यासकार है किन्तु राजनीतिक स्थिति से उत्पन्न विसंगतियाँ जीवन स्तर के परिवर्तनों को प्रभावित करती है। उन्होंने अपने सामाजिक उपन्यासों में उन सामाजिक समस्याओं का सविस्तार चित्र उपस्थित किया है जो समाजशास्त्रीय अध्ययन की अपेक्षा रखते है या जिनमें समाजशास्त्रियों की रूचि देखी जा सकती है। उनकी कृतियों में आज के समाज के भयानक, विद्रूप, कठोर रूप की अभिव्यक्ति मिलती है ।

पंचम अध्याय में नागर जी के ऐतिहासिक उपन्यासों का समाजशास्त्रीय विश्लेषण करते हुए इतिहास शब्द की व्युत्पत्ति इतिहास और कल्पना, ऐतिहासिक तथ्यों के सामाजिक आधार, दृष्टि आदि पर विचार किया गया है। उपन्यासकार इतिहास की वास्तविकता का तथा इतिहासकार उपन्यास की वैयक्तिता एवं कल्पना का, उपन्यासकार अपनी काल्पनिक सर्जना की वास्तविकता का आभास देने के लिए, जिन यथार्थनुकारी साधनों का उपयोग करता है, उनमें इतिहास की प्रामाणिक यथातथ्यता या वास्तविकता विशेष सहायक हो सकती है। जिस प्रकार ऐतिहासिक उपन्यास की रचना प्रेरणा में इतिहास का सहयोग अनिवार्य

होता है, उसी प्रकार इन ऐतिहासिक उपन्यासों में भी कल्पना का अंश विद्यमान रहता है। नागर जी मूलतः साहित्यकार है, किन्तु उन्हें इतिहास और पुरातत्व के क्षेत्र में रूचि थी। नागर जी का इतिहास प्रेम किसी एक कालखण्ड तक ही सीमित न होकर भारत के प्राचीन इतिहास से होता हुआ भारत के आधुनिक इतिहास तक पहुँचाता है । 'शतरंज के मोहरे' 'सात घूँघट वाला मुखड़ा', 'सुहाग के नूपुर', 'एकदा नैभिषारण्ये', 'मानस का हंस', 'खंजन नयन' आदि नागर जी के ऐतिहासिक अन्यास हैं। 'शतरंज के मोहरे' में नागर जी ने सन् 1857 की क्रान्ति से पहले के अवध का बहुत ही यथार्थ एवं कलात्मक चित्र प्रस्तुत किया है। नवाबी परिवेश में व्याप्त षड्यन्त्र , फरेब भरे प्रेम तथा अमानवीय कृत्यों से कसमसाते परिवेश का बड़ा ही जीवन्त चित्र लेखक ने प्रस्तुत किया है । भ्रष्टाचार और अनाचार की चरम रिणति नवाबों के नैतिक पतन में दिखाई देती है । इन उपन्यासों में सामाजिक आधार, धर्म और जाति, समाज में नारी की स्थिति , शोषक और शोषित वर्ग, भिखारी वर्ग आदि विभिन्न पहलुओं को उजागर किया गया है तथा तत्कालीन युग की सभी समस्याओं का सफल अंकन भी हुआ है। 'सुहाग के नूपुर' में दक्षिण भारत की प्राचीन पृष्ठभूमि को कल्पना के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। इस उपन्यास का मुख्य प्रतिपाद्य वेश्या बनाम कुलवधू जनित नारी पीड़ा है जिसे नागर जी की कल्पना शक्ति की सामाजिक अभिव्यक्ति इस उपन्यास को सर्वकालीन बनाने में सक्षम है । नागर जी ने नारी के दोनों रूपों को समान भाव से उभारा है । एक तरफ नगरवधू की पीड़ा है, दूसरी ओर उससे उत्पन्न कुलवधुओं की पीड़ा की अभिव्यक्ति भी समान रूप से चलती रहती है। इस सामाजिक व्यवस्था में कराहती नारी की स्थिति बड़ी दयनीय है। नागर जी ने बहुत ही व्यंग्यपूर्ण शैली में पुरूष की स्थिति पर तीव्र कटाक्ष किया है। उन्होंने वेश्या वर्ग से अक्षरशः सहानुभूति रखते हुए भी नगरवधू की महिमा को सर्वग्राह्य बतलाया है । नागर जी ने एक समाजशास्त्री की भांति स्त्री पुरूष के संबंधों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है । उन्होंने सामंती समाज रचना के माध्यम से अन्तर्विरोधों से युक्त सामाजिक मूल्यों एवं मान्यताओं को उजागर किया है।

'सात घूँघट वाला मुखड़ा' में इतिहास से अधिक कल्पना है। इसमें प्रयुक्त इतिहास प्रमाणिक होते हुए भी किवदंतियों से भरा हुआ है। नागर जी के बेगम समरू को बेहद कामुक और कामपीड़िता के रूप में चित्रित किया है। किवदंतियों पर आधारित इतिहास में भी नागर जी ने अपनी कल्पना शक्ति द्वारा कथा में परिवर्तन कर नया रंग भरा है । उपन्यासकार ने कथानक को रोचक बनाने के लिए बेगम समरू के जीवन से सम्बन्धित ऐतिहासिक घटनाओं में किंचित फेर बदल किया है । नागर जी ने समाज में फैले अविश्वास, नारी- अपहरण, चोरी-फरेब, मक्कारी आदि दुष्कर्मों को चित्रित किया है । इस उपन्यास में पतनोन्मुख समाज का चित्रण है । पुरूष विलास से जर्जर थी । स्त्रियाँ अधूरी महत्वाकांक्षाओं में घुटने के लिए अभिशप्त । नागर जी के पास कथाकार दृष्टि से साथ ही साथ एक जागरूक समाजशास्त्री की तथ्यसंग्रही पैनी दृष्टि भी है ।'करवट' में भारतीय समाज के एक घटना बहुल इतिहास को रोचक कथा में रचनान्तरित करने का प्रयास है , जिसमें इतिहास ही कल्पना का आधार है । यहाँ भी नागर जी ने उन स्रोतों का उपयोग किया है, जिनके बल पर किसी समय का समाजशास्त्र ठीक-ठीक लक्ष्य किया जा सकता है । पतनोन्मुख अंग्रेजी समाज के दौर में भारतीय सामाजिक जीवन को जो नये धक्के लगते हैं और जिस प्रकार का मोहभंग होता है, वह भी इस उपन्यास में सहज रूप से अंकित है । तीन-तीन पीढियों की जीवनगाथा के बहाने यह उपन्यास एक बड़े कालफलक पर भारतीय समाज के मूल्य परिवर्तन को मूर्त करता है । परम्परा और आधुनिकता के टकराव में ही यह जीवन गाथा की व्यापकता और समग्रता को अभिव्यक्त करती है । इस उपन्यास का शीर्षक परिवर्तन सूचक है । यह उपन्यास नागर जी के समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण को समझने में सहायक है इसकी रचनापद्धति भी औपन्यासिक समाजशास्त्र की दृष्टि से संगत है।

'पीढियाँ' नागर जी का अन्तिम ऐतिहासिक घटनाक्रम पर आधारित उपन्यास है । यह करवट का विस्तार है । करवट की घटना सामाजिक, सांस्कृतिक परिवर्तन और

नवजागरण का संकेत देती है । पीढ़ियाँ मूलतः राजनीतिक वस्तु पर आधारित। हिन्दू-मुस्लिम संबंधों को इतिहास के दायरे में जांचना पीढ़िया के लेखक का उद्देश्य जान पड़ता है।

नागर जी आधुनिक कथा साहित्य के ऐसे महत्वपूर्ण लेखक है जिनके पास इतिहास, संस्कृति, पुरातत्व, दर्शन, कला आदि की विशिष्ट समझ है । वे घटनाओं के देशकाल को मूर्त करने की दिशा में सतत् प्रयत्नशील है । समाजशास्त्रीय दृष्टि से देखा जाय तो नागर जी की दृष्टि एकांकी नहीं है। उन्होंने इतिहास रचना के मूल में कार्यरत राजनीतिक चेतना और परिस्थितियों के दबाव को भी लक्षित किया है ।

षष्ठम अध्याय में नागर जी के पौराणिक-सांस्कृतिक उपन्यासों का समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से विवेचन प्रस्तुत किया गया है । नागर जी का सम्पूर्ण कथा साहित्य भारत की प्राचीन संस्कृतिक से जुड़ा हुआ है । उनके उपन्यासों में सास्कृतिक संस्पर्श इतना गहरा होकर आया है कि उनकी रचनायें इतिहास, पुराण, संस्कृति , धर्म और दर्शन की छवि बनकर पाठकीय संवेदना को अभिभूत करती है। संस्कृति विचार आदर्श-भावना और संस्कार प्रवाह का एक सुसंगठित और सुस्थिर संस्थान है जो मानव को सहज ही पूर्वजों से प्राप्त होता है । सच्ची संस्कृति भूत, भविष्य और वर्तमान को एक सूत्र में बांधती है । इतिहास संस्कृति का सहोदर है । नागर जी द्वारा रचित पौराणिक - सांस्कृतिक उपन्यासों में एकदा नैभिषारण्यें, "मानस का हंस" , और खंजन नयन आदि प्रमुख है। नागर जी ने सांस्कृतिक दृष्टि से अपने उपन्यासों में उन घटनाओं का सजीव चित्रण किया है, जिनकी जड़ अतीत में सोयी हुई है। एकदा नैभिषारण्ये पौराणिक संदर्भों से युक्त , ऐतिहासिक घटनाक्रम में राजनीतिक और सामाजिक पृष्ठभूमि को प्रस्तुत करता है । लेखक की व्यापक एकदेशीयता ने एक विशेष भूखण्ड को समक्ष रख के भी सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति को ही दृष्टि में रखा है और उसे मानवता बोध की आधुनिक संवेदनशीलता से सम्पुष्ट किया है । विभिन्न धर्मों की संघर्षी स्थितियों ने नैभिषारण्ये के महासत्र की पृष्ठभूमि भार्गव ऋषि सोमाहुति और कण्व वंश परम्परा के नारद देवव्रत के स्वप्नों के भावजगत द्वारा तैयार की जाती

है। नागर जी आधुनिक युग के जागरूक साहित्यकार है उन्होंने प्राचीन और आधुनिक संस्कृति मार्ग को पाटने का प्रयत्न किया है । उनके पौराणिक उपन्यासों के मूल में पौराणिक संस्कृति को आधुनिक दृष्टि से देखने की प्रेरणा ही है । यह उपन्यास लेखक के परिपक्व प्रबुद्ध मानस मंथन का अमूल्य रत्न है । इसकी कथाकांति में जो भास्वरता है, वह जीवन के सांस्कृतिक पहलू को उजागर करती है।

'मानस का हंस' नागर जी की प्रौढ़ , परिष्कृत एवं ख्यातिलब्ध रचना है। गोस्वामी तुलसीदास की प्रमाणिक जीवनी को आधार बनाकर यह उपन्यास लिखा गया है तुलसीदास बिखरती हुई संस्कृति और आस्था को समेटने वाले महान मानव के रूप में अमर है, अतः उनके मध्यकालीन स्वरूप का सामंजस्य वर्तमान चेतना में बिठाने के लिये नागर जी ने तुलसीदास के समाजसुधारक रूप के साथ-साथ ड्रामा प्रोड्यूसर और कथावाचक का रूप भी दर्शाया है । नागर जी ने काव्यात्मक और कलात्मक शिल्प सौष्ठव द्वारा उसी दार्शनिक व्याख्या को कल्पना के रंगों से उपन्यास में बांधा है । इस उपन्यास में तत्कालीन वर्णव्यवस्था, सामाजिक स्थितियाँ, सामाजिक व्यवस्था का आधार आदि को भी नागर जी ने समग्रता के साथ प्रस्तुत किया है ।'मानस का हंस' में अनेक सामाजिक तथ्य है जो एक अतीत की रूपरेखा को प्रस्तुत करते है। नागर जी ने तुलसी के माध्यम से अपने वर्ण एवं जातिविषयंक मूल्य बोध को स्पष्ट किया है ।'खंजन नयन' में नागर जी ने उस सम्पूर्ण समाज को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करने की कोशिश की है , जैसे मध्यकालीन कवियों को भोगना पड़ा था।'खंजन - नयन' के सूरदास परिस्थितियों के थपेड़ों से परिचालित, मानवीय सबलताओं और दुर्बलताओं से युक्त संवेदनशील मानव है । इस उपन्यास में नागर जी ने जाति और वर्णव्यवस्था सम्बन्धी मूल्यों के परिवर्तन को दिखाया है । जातीय विधान नाना सामाजिक विकृतियों को जन्म देता है, इसलिए नागर जी वर्ण और जाति व्यवस्था

विषयक प्राचीन धारणा का प्रतिकार करते है। 'एकदा नैमिषारण्ये' और 'मानस का हंस' में लेखक ने वर्णाश्रम व्यवस्था के उच्च पद पर आसीन ब्राम्हण को नवीन संदर्भों में व्याख्यायित किया है तथा ब्राम्हण सम्बन्धी प्राचीन दृष्टिकोण का खण्डन किया है । 'मानस का हंस' में तत्कालीन समाज की स्थिति के साथ ही देश की आर्थिक एवं राजनीतिक परिदृश्य का भी चित्रण मिलता है । 'खंजन नयन' में तत्कालीन समाज की विसंगतियाँ, कुरीतियाँ और मिलावट की झलकियाँ पाठक को समसामयकि सामाजिक स्थितियों को समझने में बहुत सहायक होती है। सारा सन्त साहित्य जातिवाद को एक जबरदस्त चुनौती देता है। खंजन नयन मे नागर जी ने तत्कालीन वेश्या समाज की संस्कृति तथा उनके द्वारा लोगों के पथभ्रष्ट होने का चित्रण भी किया है ।

इन पौराणिक एवं सांस्कृतिक उपन्यासों में नागर जी ने वर्णव्यवस्था और जातिविधान के संबंध में अपनी धारणा व्यक्त की है । वे वर्ण को जन्मना न मानते हुए कर्मणा मानते है। सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में नागर जी का धार्मिक मूल्य बोध, ईश्वर विषयक मूल्य दृष्टि, जीवन के प्रति आस्था– जिजीविषा और मानवतावाद अभिव्यक्त हुआ है। कथावस्तु की रोचकता, प्रवाहमयता और संवेद्यता उपन्यासकार की सर्जनात्मक प्रतिभा को उजागर करती है। नागर जी प्राचीन सांस्कृतिक अन्वेषक के साथ ही पुरातत्व प्रेमी भी थे। 'एकदा नैमिषारण्ये' में पौराणिक युग के आख्यान के द्वारा बिश्वजनीन संस्कृतियों का मंथन किया गया है। लोकचेतना और लोकमंगल की समन्वयकारी भावना को 'मानस का हंस' उपन्यास में पुर्नसंगठित किया है ।

सप्तम् अध्याय में नागर जी की कहानियों का सामाजशास्त्रीय विश्लेषण किया गया है। इसके अन्तर्गत कहानी के स्वरूप , संवेदना, कहानी विषयक अवधारणायें, नागर जी की कहानियों का वर्गीकरण किया गया है। कहानी का सम्बन्ध भावभिव्यंजन से है, जो

भावनाओं को तीव्रता एवं प्रभाव के साथ प्रेषित कर सके । हिन्दी कहानी विधा की दृष्टि से अत्यन्त आधुनिक है । संवेदनशील कलाकार जीवन की विविध घटनाओं को चुनकर कहानी के रूप में अभिव्यक्ति देता है। इसमें सम्बद्ध घटना, पात्र , विचार परम्परा अथवा वैयक्तिक विशेषताओं का समावेश रोचक ढंग से हो जाता है । नागर जी की कहानियों का शिल्प परम्परित लीक से हटकर है । अधिकांश कहानियाँ आत्मकथात्मक तथा निबन्धात्मक रूप है अथवा संस्मरणात्मक शैली में रचित है। अधिकांश कहानियाँ यथार्थ विषमताओं पर किये गये हास्य व्यंग्य से युक्त है किन्तु उनकी गम्भीर कहानियों में सामाजिक विद्रूपता एवं विवशता प्रभाव पूर्ण ढंग से यथार्थ का अंकन करती है। उनकी सभी कहानियाँ चारों ओर के बिखरे हुए विविध वर्गीय समाज के सूत्रों से गुँथी हुई है। उनकी कहानियाँ सहज और सोद्देश्य है किन्तु जो परिपक्वता, वैचारिक उच्चता, गहन दार्शनिकता एवं सहज सम्प्रेषणीयता का गुण उनके उपन्यासों में है, वह कहानियों में नहीं आ पाया है। नागर जी ने भोगे हुए, जिये हुए अपने आस–पास के विविध अंशों को कहानीबद्ध किया है । वस्तुतः वे सामाजिक यथार्थवाद की कथाधारा के सशक्त लेखक है जिन्होंने भारत के स्वातन्त्र्य पूर्व और परवर्ती समाज के बदलते प्रतिमानों का सूक्ष्मता से विश्लेषण किया है और उसकी संगतियों विसंगतियों को पैने हास्य व्यंग्य से चित्रित किया है । सामाजिक यथार्थ के धरातल पर व्यक्ति की अन्तर्पीड़ा को मथकर उसे नवजीवन का संदेश देना नागर जी की कहानियों का मूल उद्देश्य है । विषय की दृष्टि से इनकी कहानियों को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है – सामाजिक, राजनैतिक, मनोवैज्ञानिक और आँचलिक कहानियाँ। नागर जी ने प्रत्येक वर्ग और वातावरण का सजीव चित्र खींचा है । दैनन्दिन छोटी रचनाओं को उन्होंने बारीकी से चुना है और व्यवहारिक व वैचारिक भूमि पर उन्हें जमाया है । उनकी कहानियों में वातावरण का बड़ा ही सजीव और रोचक चित्रण हुआ है। लखनऊ नगर की पृष्ठभूमि इन कहानियों की विशिष्टता है । समस्त अत्याचारों को व्यंग्यात्मक बाना पहनाकर

पीड़ित पात्रों की पीड़ा को स्वयं भोगते हुए उनका मानवीय रूप उभारा गया है । मध्यवर्गीय समाज से सम्बद्ध कहानियों के अन्तर्गत गोरखधंधे , धर्मसंकट, जुलाब की गोली, शहर का अंदेशा, दफीने की खुदाई आदि कहानियाँ आती है । राजनैतिक कहाानयों के माध्यम से नागर जी ने सत्ता और स्वार्थ की राजनीति पर प्रहार करते हुए राष्ट्रीय हित के संदर्भों को उभारा है। नागर जी द्वारा लिखित राजनीतिक विषय पर आधारित कहानियों में विशिष्ट चेतना , विशिष्ट राष्ट्रीयता तथा मानव की आत्मिक प्रवृत्तियों का सहज अंकन किया गया है। मनोवैज्ञानिक कहानियों में व्यक्ति मन का वैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है। नागर जी ने अपनी कहानियों में एक ओर सामाजिक समस्याओं राष्ट्रीय उलझनों, आदर्शों, रूढ़ियों परम्पराओं के चित्रण से आगे जाकर मानवतावाद के सर्वमान्य सिद्धान्त को प्रतिष्ठापित किया है, दूसरी ओर मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन की संवेदनशीलता, नारी की पीड़ा, हृदय की कोमलता एवं रोमानियत को भी बड़ी मार्मिकता से अंकित किया है।

नागर जी की प्रायः सभी कहानियाँ लखनऊ की पृष्ठभूमि पर आधारित है, लखनऊ का हर रंग उनकी कहानियों में परिलक्षित होता है जिसकी वजह से उनकी कहानियों में आंचलिकता की झलक मिलती है। लखनऊ का परिवेश नागर जी की समस्त चेतना का छाया हुआ है, उन्होंने बड़े ही धैर्य से लखनऊ की संस्कृति को शब्दों का जामा पहनाया है। एक दिल हजार दास्तां, नागर जी की अनुभूतियों की मार्मिक कथा है। वे एक ऐसे सर्जक कहानीकार थे, जो हरेक स्थिति में समाज से प्रतिबद्ध थे, उसकी हर समस्या के भोक्ता थे। उन्होंने ढेरों कहानियाँ लिखी है, जिसमें यथार्थ जीवन की मानव समाज , भारतीय संस्कारों से युक्त समाज की धड़कनों को स्पर्श किया गया है। नागर जी ने अपनी कहानियों में सामाजिक , राजनीतिक, आर्थिक, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओ, प्रसंगों पर आधारित कथाओं का सन्निवेश किया है। वर्षों से लखनऊ में रहने के कारण उन्होंने वहाँ के समाज के विविध रंगों-वर्णों को चित्रित किया है, जिसमें मुस्लिम संस्कृति

और जाति के साथ ही हिन्दुओं की वर्णव्यवस्था भी है। निम्न मध्यवर्ग की विवशताओं का बेबाक और हृदय –द्रावक चित्रण 'शकीला की माँ,' 'कादिर मियाँ की भौजी', 'हाजी कुल्फी वाला' आदि कहानियों में है। 'नवाब साहब,' 'पीपल परी' की दास्तान,' 'बनफशा बेगम के नूरे नजर,' 'नजीर मियाँ,' आदि हास्य–व्यंग्य पर आधारित कहानियाँ है। उन्होंने हिन्दु– मुस्लिम संस्कृति की पुरानी पीढ़ी में टकराहट और नई पीढ़ी में खुलापन एवं समाज की मनोवृति का बड़ा सुन्दर चित्रण 'मोती की सात चलनियाँ' नामक कहानी में किया है। भारतीयता की भावना ही इसका उद्देश्य है। 'हम फिदाए लखनऊ' संग्रह की कहानियाँ मनोरंजक होने के साथ साथ लखनऊ के पुराने और नये की जिन्दगी के किसी न किसी पहलू को उजागर करते है और इस संस्कृति में पले विशिष्ट चरित्रों को सामने लाते है। वे मानव जीवन के चितेरे थे । आर्थिक अभाव, दो पीढ़ियों का टकराव, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर वैयक्तिक संवेदनाओं का स्पर्श, नारी की विवशता और विद्रोह एवं गरिमा की छुवन, आधुनिक जीवन का असन्तुलन आदि स्थितियाँ उनकी कहानियों का आधार बनी है। 'गोरखधंधा' में एक बेकार गृहस्थ की हकीकत फटे टाट के अन्दर से झांकती है । 'नाश और निमाण' में शिक्षित युवती के हृदय का एकाकी मंथन है तो 'बंदिनी' एक विवश नारी की ममता और विद्रोह की कहानी है।

'दो आस्थाओं' में वर्तमान युग की दो पीढियों की टकराहट व्यक्त हुई है। इस कहानी का व्यथापूर्ण अन्त स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय जनजीवन की इन्द्रात्मक चेतना का यथार्थ रंग प्रस्तुत करता है। 'देश सेवा शाह मदारों की' में राजनीतिक व्यंग्य है। नागर जी ने कहानी को किसी निश्चित सांचे में न फिट करके अनेक रूपों में अभिव्यक्ति किया है । उनकी कहानियाँ कहीं ऐतिहासिक शैली में और कहीं वर्णनात्मक शैली में लिखी गयी है। नागर जी की कहानी कला में नूतन प्रयोगशीलता, रोचकता और तीव्रता के दर्शन होते है। उनका कथा साहित्य जीवन के अनुभूतिपूर्ण सत्यों के संस्मरणों की भांति सजीव है।

अमृतलाल नागर के कथा साहित्य का समाजशास्त्रीय विश्लेषण

(इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल० उपाधि के लिये प्रस्तुत)

शोध प्रबन्ध

निर्देशिका :
डा० मालती सिंह
प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

शोधकर्ता :
सरोज सिंह

हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद
जून १९९९

प्राक्कथन

आधुनिक गद्य साहित्य मे उपन्यास एव कहानी दोनो को विशिष्ट महत्व प्राप्त है। साहित्य को विविध महत्व प्राप्त है। साहित्य की विविध विधाओ मे उपन्यास ही एक मात्र ऐसी सशक्त विधा है, जिसमे समसामयिकता का आग्रह सर्वाधिक होता है। लेखक को अभिव्यक्ति की पूर्ण स्वतत्रता, जीवन दर्शन और जीवन के सभी अगो को प्रस्तुत करने का सर्वाधिक समय कथा–साहित्य मे होता है। हिन्दी कथा साहित्य मे प्रेमचन्द्र को एक प्रेरणादायक आकर्षक स्तम्भ के रूप मे माना जाता है। इन्ही की परम्परा के सशक्त कथाकार अमृतलाल नागर के कथा–साहित्य का समाजशास्त्रीय विश्लेषण करना ही प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का मुख्य विषय है । नागर जी के कथा साहित्य मे यथार्थ और कल्पना का रोचक सगठन ही इस विषय मे मेरी रूचि का मुख्य कारण है।

कहानी अपने पुराने रूप मे उपन्यास की अग्रजा है और नये रूप मे उसकी अनुजा। अमृतलाल नागर की कहानियाँ कथ्य, प्रयोजन, और सवेदना की दृष्टि से यथार्थवादी है। जीवन के अत्यन्त सच्चे सदर्भो को चुन लेना और उन्हे सम्पूर्ण सत्यता के साथ अभिव्यक्त करना इनकी कहानियो का इष्ट है । किन्तु नागर जी का उपन्यास साहित्य जितना जीवन्त एव प्रभावी है, इतना अन्य साहित्य नही । वे अपने सामाजिक उपन्यासो मे जिन्दगी के महत्वपूर्ण प्रश्नो व सवेदना के स्तर पर तो उभारते ही है, सास्कृतिक उपन्यासो मे भी वे समकालीन जीवन से सीधे जुड़ते है। इसी वैशिष्ट्य के कारण मेरी रूचि इस यशस्वी उपन्यासकार के उपन्यासो एव कहानियो मे हुई ।

अमृतलाल नागर के उपन्यासो एव कहानियो का अनुशीलन कई प्रकार से हुआ है किन्तु अभी तक आलोचना के किसी सिद्धान्त विषय को आधार बनाकर कोई विशिष्ट अध्ययन या विश्लेषण प्रस्तुत नही किया गया है। "साहित्य का समाजशास्त्रीय चिन्तन" आधुनिक समाज मे साहित्य की सत्ता और सार्थकता की पहचान के बौद्धिक प्रयत्न की देन है । साहित्य का समाजशास्त्र आधुनिक समाज मे साहित्य की वास्तविक स्थिति और भूमिका को यथार्थवादी ढग से समझने का प्रयत्न करता है। आधुनिक युग के आलोचको मे लूकाच, लूसिए गोल्डमान,

वाल्टर वेजामिन आदि विचारको ने साहित्यिक समाजशास्त्र की सम्यक् अवधारणा को विकसित कर सके है। हिन्दी मे डॉ0 बच्चन सिह, डॉ0 मैनेजर पाण्डेय, डॉ0 नगेन्द्र जैसे आलोचको ने साहित्य का समाजशास्त्र विषय पर स्वतत्र पुस्तके लिखी है। अमृतलाल नागर के कथा साहित्य का समाजशास्त्रीय विश्लेषण करते समय नागर जी के विचारो, उनकी कृतियो मे प्राप्त सामाजिक तथ्यो तथा उनके व्यापक परिप्रेक्ष्य को विशेष महत्व दिया गया है। इस शोध विषय को सात अध्यायो मे विभक्त किया गया है । पहले अध्याय मे साहित्य और समाजशास्त्र की परिभाषा एव विषयक्षेत्र को स्पष्ट करते हुए साहित्य के समाज शास्त्र की अवधारणा पर प्रकाश डाला गया है। दूसरे अध्याय में नागर जी के व्यक्तित्व, विचारधारा एव कृतित्व को समझने की चेष्ठा की गयी है। तृतीय अध्याय मे नागर जी के कथा–सृजन की समीक्षा की गयी है, जिसके अन्तर्गत समाज, सस्कृति , इतिहास, दर्शन और मानव जीवन के अनेक पहलू समाहित है । चौथे अध्याय मे नागर जी द्वारा रचित सामाजिक चेतना पर आधारित उपन्यासो का समाजशास्त्रीय विश्लेषण व्यक्ति, परिवार, वर्गगत, जातिगत सघर्ष, सामाजिक व्यवस्था, आर्थिक विषमता जैसी लाभान्वित समस्याओ आदि के परिप्रेक्ष्य मे किया गया है । पाचवे अध्याय मे नागर जी के ऐतिहासिक उपन्यासो का समाजशास्त्रीय विश्लेषण करते हुए इतिहास शब्द की व्युत्पत्ति, इतिहास और कल्पना ऐतिहासिक तथ्यो के सामाजिक आधार आदि पर विचार किया गया है। छठवे अध्याय मे नागर जी के पौराणिक – सास्कृतिक उपन्यासों का समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से विवेचन किया गया है। नागर जी का सम्पूर्ण कथा साहित्य भारत की प्राचीन सस्कृति से जुड़ा हुआ है। सातवे अध्याय मे नागर जी की कहानियो का समाजशास्त्रीय विश्लेषण करते हुए कहानी के स्वरूप , सवेदना, कहानी विषयक अवधारणाओ एव नागर जी की कहानियो का वर्गीकरण भी किया गया है।

यह शोधकार्य डॉ0 मालती सिंह के विद्वत्तापूर्ण कुशल निर्देशन, एव आर्शीवाद से पूर्ण हो सका। अत्यधिक व्यस्त होते हुए भी उन्होने मुझे पर्याप्त समय, सम्यक् दृष्टि, सत्परामर्श एव सहज स्नेह तथा वात्सल्य दिया, उस महत्व को आभार प्रदर्शन की औपचारिकता, द्वारा आँकना धृष्टता ही नहीं, कृतघ्नता भी होगी। अतः उनके प्रति मैं अपनी अपार श्रद्धा तथा आदर भाव अर्पित करती हूँ ।

मेरी प्रेरणापुज माता स्वर्गीया श्रीमती सीता देवी रही है, जिनके परोक्ष सत्प्रेरणा से मुझे संबल प्राप्त होता रहा, उनका सहज–स्नेह और वात्सल्य मेरे जीवन की बहुमूल्य निधि है। मेरे पूज्य पिता डॉ0 माता प्रसाद सिह, ससुर श्री सिद्धनाथ सिह एव सास फूलमती सिह का शुभाशीर्वाद, स्नेह और वात्सल्य मेरा मार्गदर्शक रहा है।

गृहजनो तथा अपने बच्चो पीयूष एव आकाक्षा के प्रति भी कम कृतज्ञ नही, जिनके अनगिनत स्नेह क्षणो को चुराकर मै इस शोधकार्य मे सलग्न रह सकी। आदरणीय डॉ0 श्री प्रकाश सिह (मेरे पति) के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना तो मात्र औपचारिकता ही होगी, क्योकि यदि कहूँ कि यह प्रयास मूलतः उन्ही की सतत् प्रेरणा एव प्रोत्साहन का फल है तो अत्युक्ति न होगी । भूगोल के अध्ययन–अध्यापन के साथ–साथ हिन्दी साहित्य मे उनकी अभिरूचि मेरी परम निधि है । इस साध्य और साधना की सुरभारती द्वारा जीवन के मध्यान्ह मे जो उपलब्धि मुझे हुई है, वह मेरा सौभाग्य और उनका सौहार्द ही है।

शोधकार्य को पूर्ण करने मे हिन्दी साहित्य सम्मेलन - प्रयाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय - वाराणसी, राष्ट्रीय पुस्तकालय– कलकत्ता के पुस्तकालयो से मुझे सर्वाधिक सहायता मिली है। इनके समस्त उदार एव कर्तव्यनिष्ठ अधिकारियो एव कर्मचारियो के स्नेहिल सहयोग के लिये मै उनकी चिर कृतज्ञ हूँ। इसके साथ ही इलाहाबाद विश्वविद्यालय के पुस्तकालय के कर्मठ कर्मचारियो के प्रति भी मै अपना हार्दिक आभार व्यक्त करती हूँ, जिनके उदार सहयोग के बिना यह शोध प्रबन्ध पूर्ण करना असंभव था ।

इस शोधकार्य के दौरान मेरे आत्मीय स्वजनो, मित्रो के स्नेहिल प्रेरणा एव सहयोग ने इस शोधकार्य को सरलतापूर्वक सम्पन्न करने की वेगवती शक्ति प्रदान की है । उनके प्रति मेरे हृदय मे जो असीम श्रद्धा , स्नेह तथा कृतज्ञ भाव है, वह शब्दो की क्षुद्र सीमा से परे है।

अत मे टकण कार्य के लिए श्री विनय कुमार को धन्यवाद देते हुए उनके प्रति भी मैं अपना आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होने शोधकार्य को अंतिम रूप देने मे अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है ।

सरोज सिंह

[सरोज सिंह]

अनुक्रमणिका

अध्याय – एक

समाजशास्त्रीय अवधारणा

साहित्य का स्वरूप –

"साहित्य" शब्द का मूल सस्कृत का "सहित" शब्द है। जो "धा"धातुके साथ "क्त" प्रत्यय के संयोग से "हित" शब्द निष्पन्न होता है। "हित" शब्द मे "स" जोडने से "सहित" शब्द बना। कुछ विद्वानो ने "साहित्य" मे से "सहित" को पृथक करते हुए हित–कारक रचना को साहित्य बताया है । कालान्तर मे साहित्य शब्द वाड् मय और काव्य दोनो के लिए पर्याय बन गया । साहित्य मे समग्र जीवन की "अभिव्यक्ति" और "ज्ञान चेतना का बोध" होने के कारण वैयाक्तिक प्रयासो मे नही समेटा जा सकता है । अतः आरम्भ से ही अभिव्यक्ति मे भिन्नता रही है । तदनुरूप ही साहित्य का स्वरूप, व्याख्याये और परिभाषाएँ भी भिन्न रही है। देशकाल, वातावरण और परिस्थितियो के परिवर्तन के साथ साहित्य की परिभाषाये भी परिवर्तित होती रही है।

संस्कृत काव्य शास्त्र मे यद्यपि काव्य और साहित्य को पर्याय माना गया है। साहित्य का स्वरूप स्पष्ट करने के लिए हमारे अनेक प्राचीन और अर्वाचीन आचार्यो ने साहित्य की विभिन्न परिभाषाये निश्चित की है जिनमें से कुछ यहाँ विचारणीय हैं।

आचार्य भामह (छठी–सातवी शती) ने अपने "काव्यलंकार में लिखा था– "शब्द और अर्थ मिलाकर काव्य (साहित्य) होता है"।

आचार्य दण्डी के विचार से "इष्ट अर्थ से विभूषित शब्द–समूह ही काव्य शरीर है।"

इसी प्रकार आचार्य वामन "गुण तथा अलंकार से संस्कारित शब्दार्थ" को साहित्य" मानते है।[1]

महाकवि विल्हण के अनुसार – "भाषाविशेष के ग्रंथ समूह को ही साहित्य कहते है।"[2]

---

1 डॉ0 गणपतिचन्द्र गुप्त साहित्यिक निबन्ध, लोकभारती प्रकाशन, दशम् सस्करण, 1989, पृष्ठ–4

2 विल्हण– विक्रमाक देव चरित 1/11

राजशेखर के अनुसार – 'शब्दार्थयोर्यवत्सह भावेन विद्या साहित्य विधा' अर्थात शब्द और अर्थ के उभय भाव से युक्त विधा साहित्य है।'[1]

कुन्तक के अनुसार – "साहित्य मनयो शोभा शालिताम् – प्रतिकाप्यसौ अन्यूनाना तिरिक्तत्पम् मनोहारिण्यवस्थितिः।" अर्थात् साहित्य वह है जिसमें शब्द और अर्थ दोनों की परस्पर स्पर्धामय मनोहारिणी श्लाघ्यनीय स्थिति है।"[2]

इस प्रकार संस्कृत साहित्य में साहित्य की स्वतन्त्र परिभाषायें सीमित संख्या में ही प्राप्त है, क्योंकि संस्कृत में काव्य और साहित्य को पर्याय मानकर, साहित्य शब्द का प्रयोग काव्य के ही अर्थ में किया गया है।

पाश्चात्य विद्वानों ने भी साहित्य की विभिन्न परिभाषायें की है जिनमें से कुछ यहाँ उल्लेखनीय है ।

मैथ्यू अर्नाल्ड के शब्दों में – "संसार में जो कुछ अच्छा सोचा और कहा गया, वही साहित्य है।"[3]

एक अन्य स्थल पर उन्होंने – "साहित्य को जीवन की व्याख्या या समीक्षा कहा है।" जो साहित्य के सम्बन्ध में अधिक प्रचलित धारणा है।

हडसन के अनुसार – "साहित्य युग की शक्ति का प्रवाह है, जिसमें काल विशेष की स्फूर्ति अभिव्यक्ति पाकर उन्मुक्त होती है। यही स्फूर्ति राजनैतिक आन्दोलनों, धार्मिक विचार–दर्शन और कला के रूप में भी प्रकट होती है।"[4]

इस प्रकार पाश्चात्य विद्वानों ने साहित्य शब्द को व्यापक अर्थ में ग्रहण किया है । उनके मत में ज्ञान का सर्वोत्तम स्वरूप मानव मस्तिष्क की सर्वोच्च साधना, जीवन–दर्शन की सहज व्याख्या संगीतात्मक रसार्द्रता आदि साहित्य रूपी ज्ञान राशि में विशेष उपलब्ध होती है।

---

1. राजशेखर – काव्यमीमांसा, पृष्ठ – 5
2. कुन्तक – वक्रोक्तिजीवितम् 1/17
3. मैथ्यू अर्नाल्ड – एसेज इन क्रिटिसिज्म , साहित्य : सिद्धान्त और समालोचना – देवी प्रसाद गुप्त , पृष्ठ – 47–48 से उद्धत ।
4. डब्लू.एच. हडसन – इन्ट्रोडक्शन टु द स्टडी ऑफ लिटरेचर ।

आ० महावीर प्रसाद द्विवेदी के अनुसार – "ज्ञानराशि के संचित कोश का ना‍म ही साहित्य है।"[1] द्विवेदी जी की परिभाषा साहित्य के बहुत व्यापक अर्थ का बोध कराती है। यह परिभाषा वांड्.मय शब्द के लिए विशिष्ट रूप से उपयुक्त प्रतीत होती है।

बाबू श्यामसुन्दर दास ने अंग्रेजी के लिटरेचर शब्द तथा संस्कृत के काव्य शब्द को दो अर्थों में ग्रहण किया है। एक स्थान पर उन्होंने कहा है कि – "अंग्रेजी के लिटरेचर शब्द की भांति हिन्दी का साहित्य शब्द भी अब दो अर्थों में प्रयुक्त होने लगा है। बोलचाल की भाषा में हम किसी भी छपी हुई पुस्तक को "साहित्य" की संज्ञा दे सकते हैं। यहाँ तक कि दवाइयों के साथ आने वाले छपे हुए पर्चे भी साहित्य कहलाते हैं किन्तु दूसरी ओर अधिक उपयुक्त अर्थ में साहित्य से उन्हीं पुस्तकों का बोध होता है जिनमें कला का समावेश है।"[2]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार – "प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है।"[3] इस प्रकार शुक्ल जी ने चित्तवृत्तियों की परम्परा को परखते हुए साहित्य परम्परा के साथ उनका सामंजस्य स्थापित किया है ।

प्रेमचन्द ने साहित्य की परिभाषा देते हुए कहा है कि – "साहित्य की बहुत सी परिभाषायें दी गई है, पर मेरे विचार से उसकी सर्वोत्तम परिभाषा जीवन की आलोचना है, चाहे वह निबन्ध के रूप में हों, चाहे कहानी के या काव्य के रूप में, उसे हमारे जीवन की आलोचना होनी चाहिए ।[4]

इस प्रकार साहित्य की उपर्युक्त परिभाषाओं में हमें विद्वानों के विभिन्न दृष्टिकोण और मत मिलते है । कहीं – साहित्य के बहिरंग पक्ष पर बल दिया गया है, किसी में उसके व्याख्यात्मक पक्ष का विश्लेषण किया गया तो किसी में व्युत्पत्तिमूलक सूत्र के आधार पर व्याख्या की गई है। किसी में अभिव्यक्ति पक्ष पर ही विचार किया गया है। इन परिभाषाओं से यह निष्कर्ष अवश्य

---

1. महावीर प्रसाद द्विवेदी – "साहित्य की महत्ता" शीर्षक निबन्ध से ।
2. श्यामसुन्दर दास (1965) – साहित्यलोचन, इण्डियन प्रेस पब्लिकेशन, पृष्ठ –35
3. रामचन्द्र शुक्ल – हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ–3
4. प्रेमचन्द्र – कुछ विचार, सरस्वती प्रेस, 1973 , पृष्ठ –6

ही निकलता है कि साहित्य शब्द बहुत व्यापक है. जिसकी सम्पूर्णता को ग्रहण कर परिभाषा करना कठिन है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मानव–जीवन और मानव अनुभूतियों की भांति "साहित्य" भी असीम है, इसे किसी सीमा में बाँधा नहीं जा सकता है ।

'समाज' शब्द का विश्लेषण –

समाजशास्त्र में 'समाज' (Society) एक अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं प्राथमिक अवधारणा है। समाजशास्त्र का विवेच्य विषय है 'समाज'। अतः 'समाज' शब्द का विश्लेषण अति आवश्यक है। व्यवहारिक रूप में 'समाज' शब्द का प्रयोग मानव–समूह के लिए किया जाता है । किन्तु इससे 'समाज' शब्द का वास्तविक अर्थ स्पष्ट नहीं हो पाता है। समाज शबद एक विशिष्ट अर्थ में होता है, जिसको स्पष्ट करने के लिए विद्वानों ने विविध परिभाषायें प्रस्तुत की है।

समाज सामाजिक संबंधों का समूह है । चूँकि सामाजिक संबंध अमूर्त है, अदृश्य है, अगोचर है, अतः समाज भी अमूर्त है, वह अनुभव का ही विषय है। राइट के अनुसार – "मनुष्यों के समूह को समाज नहीं कहा जाता, अपितु समूह के अन्तर्गत व्यक्तियों के सम्बन्धों की व्याख्या का नाम समाज है ।"[1]

इस तथ्य को गिन्सवर्ग ने इस ढंग से स्पष्ट किया है –"ऐसे व्यक्तियों के समुदाय को समाज कहा जाता है जो कतिपय संबंधों या बर्ताव की विधियों द्वारा परस्पर एकीभूत हुए हों, जो व्यक्ति इन संबंधों द्वारा सम्बद्ध नहीं होते या जिनके बर्ताव भिन्न होते है, वे इस समाज से पृथक होते है ।"[2]

गिडिंग्स के अनुसार – "समाज स्वयं एक संघ है, एक संगठन है, औपचारिक सम्बन्धों का योग है, जिसमें सहयोगी व्यक्ति परस्पर आवद्ध है ।"[3]

इसी प्रकार डॉ0 नगेन्द्र ने भी समाज की परिभाषा है, जो इस प्रकार है– "समाज से अभिप्राय सामुदायिक जीवन की ऐसी अनवरत एवं नियामक व्यवस्था से है, जिसका निर्माण

---

1. राइट – एलेमेंटस आफ सोशियोलॉजी, पृष्ठ –5

2. गिन्सवर्ग – सोशियोलॉजी – पृष्ठ –8

3 गिडिंग्स – प्रिंसिपुल्स ऑफ सोशियोलॉजी – पृष्ठ 11

व्यक्ति पारस्परिक हित तथा सुरक्षा के निमित्त जाने अनजाने कर लेते है।"[1]

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि समाज व्यक्तियों का समूह मात्र नहीं है , वरन् सामाजिक सम्बन्धों एवं समस्याओं का गहन जाल है। व्यक्ति अपनी विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अन्य व्यक्तियों के साथ अन्त:क्रिया करते और सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करते हैं। ये लोग विभिन्न प्रकार के सम्बन्धों के आधार पर एक-दूसरे के साथ व्यवहार करते हैं, कुछ क्रियायें और प्रतिक्रियायें करते हैं। यह सब कुछ निश्चित नियमो के आधार पर ही होता है। इनमें कुछ परस्परिक अपेक्षा (Mutual Expectations) सम्मिलित हैं। इन सबसे मिलकर बनने वाली व्यवस्था को ही समाज कहा गया है। समाज के लिए शारीरिक एवं मानसिक दोनों प्रकार की समानता, एकरूपता अनिवार्य है। इनके अतिरिक्त अन्योन्याश्रिता व सहयोग समाज के मुख्य तत्व है, इनके द्वारा ही एक सभ्य समाज का निर्माण सम्भव है। समाज की आकृति को समाजशास्त्र के माध्यम से भली-भांति समझकर ही व्यक्ति-व्यक्ति के जीवन को उन्नत करने और सामाजिक जीवन को सफल बनाने का प्रयत्न किया जा सकता है ।

समाजशास्त्र :

परिभाषा – मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । वह समाज में रहता है और उसमें रहते हुए अपने योग क्षेत्र के लिए सतत् प्रयत्नशील रहता है। उसका हित कल्याण तथा उन्नति समाज पर भी निर्भर है। यह समाज मनुष्य की ही सुख-दु:खमयी कथाओं, विजय एवं पराजय की उपकथाओं, निर्माण एबं विनाश विच्युति एबं विडम्बनाओं का एक वास्तविक और विस्तृत आलेख है। मानव जीवन से राम्बन्धित विज्ञानों का विवेच्य विषय मनुष्य न होकर मानव समाज ही है। सामाजिक संबंधों के विभिन्न पहलुओं, अंगों को लेकर विभिन्न सामाजिक विज्ञानों का जन्म एवं विकास हुआ ।

मानव जीवन के सामाजिक पक्ष का अध्ययन विवेचन करने वाले शास्त्र को समाजशास्त्र की संज्ञा से विभूषित किया जाता है । 'समाजशास्त्र' सामाजिक संबंधों का विज्ञान है। 'समाजशास्त्र' सामाजिक संबंधों का विज्ञान है, इसके समुचित अध्ययन से हमें समाज, सामाजिक जीवन और

---

1. डा0 नगेन्द्र

उसकी सामान्य समस्याओं का बोध होता है । 'समाजशास्त्र 'समाज' का ही विज्ञान या शास्त्र है। इसके द्वारा समाज या सामाजिक जीवन का अध्ययन किया जाता है । इस नवीन विज्ञान को जन्म देने का श्रेय फ्रांस के प्रसिद्ध विद्वान 'आगस्ट काम्टे' (Auguste Comte) को है। कान्टे ने सर्वप्रथम सन् 1938 में इस नवीन शास्त्र को 'समाजशास्त्र' (Sociology) नाम दिया । इस कारण इन्हें 'समाजशास्त्र का जनक' (Father of Sociology) कहा जाता है। एक विज्ञान के रूप में समाजशास्त्र को प्रतिष्ठा और स्वीकृति अमेरिका की देन है और वह एक परजीवी शास्त्र के रूप में भारत में आयातित है । पर अगर ध्यान से देखा जाय तो भारतीय समाज के लिए समाजशास्त्र का महत्व कम नहीं है, क्योंकि आज ऐसी अनेक समस्याओं का जन्म हो गया है जो भारत की प्रगति एवं उसके भविष्य को चुनौती देती है। इन समस्याओं के बीच ही भारत ने स्वतंत्रता प्राप्त की और इनके बीच ही आधुनिक भारत नये विकास के लिए संघर्ष कर रहा है। अतः यह अनिवार्य सा हो गया है कि निरन्तर परिवर्तित होती हुई परिस्थितियों में उसकी विभिन्न सामाजिक समस्याओं का ज्ञान हमें उपलब्ध हो और यह कार्य समाजशास्त्र के अध्ययन से ही सम्भव हो सकता है । एक पृथक विज्ञान के रूप में समाजशास्त्र का जन्म उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुआ। किन्तु इसके चिन्ह, स्पष्ट – अस्पष्ट तथा वैज्ञानिक – अवैज्ञानिक रूप में अत्यन्त प्राचीन काल से मिलते हैं ।

सामाजिक सम्बन्धों और समस्याओं का वैज्ञानिक आधार पर क्रमबद्ध अध्ययन करने का सर्वप्रथम श्रेय 'आगस्ट काम्टे' को ही है । फ्रेंच दार्शनिक काम्टे ने यह अनुभव किया कि सामाजिक जीवन और उसमें सम्बन्धित आधारभूत सिद्धान्तों एवं नियमों के अध्ययन के लिए पृथक् विज्ञान की आवश्यकता है और उन्होंने इसे "सामाजिक भौतिकी" (Social Physics) की संज्ञा दी । तत्पश्चात् बीसवीं शताब्दी के दौरान समाजशास्त्र का तीव्र गति से विकास विशेष रूप से संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, फ्रांस, जर्मनी तथा यूरोपीय देशों में दृष्टिगत होता है।

सोशियोलॉजी 'सोशियो' और 'लॉजी' को मिला कर बना है। 'सोशियो' का शाब्दिक अर्थ है– समाज विषयक तथा 'लॉजी' का अर्थ है ज्ञान अथवा विज्ञान। इस प्रकार सोशियोलॉजी का शाब्दिक अर्थ है – समाज से सम्बन्धित विज्ञान, जो कि समाज के विषय में वैज्ञानिक अध्ययन करता है। परन्तु यह शाब्दिक अर्थ समाजशास्त्र को वास्तविक प्रकृति को स्पष्ट करने में असमर्थ है। वस्तुतः लैटिन भाषा के 'सोशियस' तथा ग्रीक भाषा के 'लोगस' के सम्मिलन से ही इस शब्द का निर्माण हुआ है । शाब्दिक दृष्टिकोण से समाजशास्त्र उस विज्ञान का सूचक है जो समाज का क्रमबद्ध तथा

संगठित अध्ययन करता है । किन्तु इन सभी से आलोच्य विज्ञान की वास्तविक प्रवृत्ति स्पष्ट नहीं हो पाती है। अतः यह अनिवार्य सा हो जाता है कि इस संबंध में विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रस्तुत परिभाषाओं का विवेचन किया जाए ।

ब्लेकमार और गिलिन के अनुसार – "समाजशास्त्र , मानव जाति के एक दूसरे के सम्पर्क में आने से उत्पन्न होने वाली सामाजिक घटनाओं का अध्ययन करता है ।"[1]

फेयर बैंक्स के अनुसार – "समाजशास्त्र (एक ऐसा) नाम है जिसका प्रयोग (कुछ अंशों में) किंचित पदार्थों के अपरिपक्व ढेर के लिए किया जाता है, जिसमें समाज के ज्ञान का समावेश होता है।"[2]

इन समाजशास्त्रियों ने, समाज के विज्ञान को समाजशास्त्र की संज्ञा दी है। यह सम्भव है कि इन विद्वानों ने समाज शब्द को भिन्न अर्थों में ग्रहण किया हो । 'गिलिन' के अपनी परिभाषा में सामाजिक सम्बन्धों एवं घटनाओं पर बल दिया है और जीवित प्राणियों के पारस्परिक संयोग – सम्मिलन से उत्पन्न अन्तः क्रियाओं के समुचित विश्लेषण को ही समाजशास्त्र का विषय माना है।

समाज सामाजिक सम्बन्धों का जटिल जाल है । इस आधार पर अपनी परिभाषा प्रस्तुत करते हुए मैकाइवर और पेज ने लिखा है – "यहाँ पर इतना लिखना पर्याप्त होगा कि समाजशास्त्र सामाजिक संबंधों के विषय में है (और) सामाजिक सम्बन्धों के जाल को हम समाज कहते है।"[3]

इस तरह की परिभाषा 'ग्रीन'ने भी दी है – "इस प्रकार समाजशास्त्र मनुष्य का उसके समस्त सामाजिक सम्बन्धों के रूप में , समन्वय करने वाला और सामान्य अनुभाव निकालने वाला विज्ञान है।"[4]

समाजशास्त्र मानव जीवन के विभिन्न पक्षों – आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक आदि का विवेचन अध्ययन करता है। समाज एक व्यवस्था है और उस व्यवस्था के अन्तर्गत विविध प्रकार के रीति–रिवाज, सहयोग, असहयोग आदि तत्व पाये जाते हैं, जो कि किसी न किसी रूप में

---

1. ब्लेकमार और गिलिन – आउट लाइन्स ऑफ सोशियोलॉजी , पृष्ठ–14
2. फेयर बैंक्स – इन्ट्रोडक्शन टु सोशियोलॉजी– पृष्ठ –1
3. आर.एम. मैकाइवर और पी.एच. पेज – सोसाइटी एन इन्ट्रोडक्टरी एनालिसिस, पृष्ठ–5
4. ग्रीन– "सोशियोलॉजी, एन एनालिसिस ऑफ लाइफ इन मार्डन सोसायटी, पृष्ठ 1

सामाजिक संबंधों पर ही आधारित है । समाजशास्त्र इन्हीं सामाजिक सम्बन्धों का विश्लेषण करता है। समाजशास्त्र के विवेच्य विषय को स्पष्ट करते हुए 'सोरोकिन' ने लिखा है– "समाजशास्त्र सामाजिक सांस्कृतिक घटनाओं के सामान्य रूपों, प्रारूपों और अनेक प्रकार के अन्तः संबंधों का सामान्य विज्ञान है।"[1]

इसी प्रकार का परिभाषा 'मैक्सबेवर' ने भी प्रस्तुत की है – "समाजशास्त्र वह विज्ञान है जो कि सामाजिक क्रिया का अर्थपूर्ण (व्याख्यात्मक) बोध करने का प्रयत्न करता है जिससे कि इसकी (सामाजिक क्रिया की) गतिविधि तथा परिणामों का कारण सहित व्याख्या प्रस्तुत की जा सके ।"[2] मैक्सबेवर ने समाजशास्त्र में सामाजिक क्रियाओं को समझने पर विशेष जोर दिया है। मैक्सबेवर के अनुसार कोई भी क्रिया तभी सामाजिक क्रिया हो सकती है जब वह अन्य सामाजिक प्राणियों द्वारा प्रभावित हो और उसी के अनुसार उसकी गतिविधि निर्धारित हो । समाजशास्त्र इन्हीं सामाजिक क्रियाओं का मनन और विस्तृत विवेचन एवं विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

उपरोक्त समस्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि समाजशास्त्र सामाजिक सम्बन्धों का ही विवेचन करता है । इस तथ्य को विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न शब्दावली में प्रस्तुत किया है। कभी उसे सामाजिक क्रिया का नाम दिया जाता है और कभी उसे अन्तः सम्बन्धों से सम्बद्ध किया जाता है। अतः संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि सामाजिक संरचना, सामाजिक संस्थायें, प्रकार्य सामाजिक सम्बन्ध, प्राथमिक समूह, सामाजिक वर्ग, समुदाय, संघ और सामाजिक क्रियायें ही समाजशास्त्र के विषय है ।

समाज की इकाई के रूप में व्यक्ति का अस्तित्व तभी तक है , जब तक वह दूसरी इकाइयों के साथ संबंधों के द्वारा बंधा हुआ है। संबंधों की लड़ी से अलग होते ही एक सामाजिक इकाई के रूप में उसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है । इस प्रकार बहुत से व्यक्तियों और समूहों द्वारा एक–दूसरे से संबंधित रहने के कारण संबंधों का जो जाल बनता है, उसी को मैकाइवर ने समाज कहा है। यह संबंधों का जाल जिस रूप में होता है, समाज का स्वरूप वैसा ही बन जाता है। इसका तात्पर्य है कि जब कभी भी संबंधों की प्रकृति में परिवर्तन होता है, समाज के स्वरूप में भी परिवर्तन परिलक्षित होता है । यथा – प्राचीन काल में गुरू और शिष्य के बीच के संबंध

---

1. पी.ए. सोरोकिन – सासायटी कल्चर एण्ड पर्सनालिटी, पृष्ठ –16
2. मैक्सबेवर – सोशल एण्ड इकानामिक आर्गनाइजेशन, पृष्ठ –80

थे, वे आज नहीं रहे । 19वीं शताब्दी में मिलमालिकों और मजदूरों के बीच जो संबंध थे, उनमें आज बहुत अधिक परिवर्तन हो गया है। इस प्रकार सामाजिक इकाइयों के बीच संबंधों के परिवर्तन के समानान्तर समाज के स्वरूप में भी परिवर्तन हो जाता है।

प्रश्न यह उठता है कि सामाजिक संबंध क्यों बनते हैं और कैसे बनते है। पहले प्रश्न के उत्तर में यही कहा जा सकता है कि व्यक्ति की आवश्यकतायें संख्या में इतनी अधिक है कि उन्हें वह अकेले पूरा नहीं कर सकता । इसके लिए दूसरों पर निर्भर रहना ही पड़ता है। अपनी जैविकी, सांस्कृतिक, आर्थिक तथा सुरक्षा संबंधी आवश्यकताओं के कारण व्यक्ति को समाज से जुड़ना पड़ता है । यही परिस्थितियों विभिन्न व्यक्तियों को परस्पर संबंध स्थापित करने की प्रेरणा देती है। प्रश्न यह उठता है कि संबंध कैसे बनते है? हम जानते हैं कि हमारे संबंध सभी लोगों से एक जैसे नहीं होते । हम किस व्यक्ति से किस प्रकार के सम्बन्ध स्थापित करेंगे, यह हमारे सामाजिक मूल्यों पर निर्भर होता है । सामाजिक मूल्यों के अनुसार ही हम किसी स्त्री से माँ का संबंध रखते हैं, तो किसी से पत्नी का संबंध, किसी से पिता, भाई, पति, पुत्र का संबंध होता है और किसी से मित्रता का संबंध । इस प्रकार सामाजिक संबंधों का निर्माण इस बात पर निर्भर होता है कि हमारे सामाजिक मूल्य किस व्यक्ति से हमें कैसा संबंध स्थापित करने की अनुभूति देते हैं। सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन के समानान्तर सामाजिक संबंधों की प्रकृति भी बदलने लगती है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि –

(क) समाजशास्त्र समाज का अध्ययन है ।

(ख) समाज को समझने के लिए सामाजिक संबंधों की बनावट को समझना आवश्यक है।तथा

(ग) सामाजिक संबंधों की प्रकृतिक को सामाजिक मूल्यों के अध्ययन द्वारा ही समझा जा सकता है ।

सिलिन का विचार है कि समाजशास्त्र और समाज को समझने के लिए सामाजिक संबधों का अध्ययन करना जरूरी है और यह कार्य सामाजिक अन्तर्क्रियाओं को समझे बिना नहीं किया जा सकता। दो या दो से अधिक व्यक्ति अथवा समूह जब जागरूक होकर सम्पर्क में आते हैं और एक दूसरे के व्यवहारों को प्रभावित करते हैं, तब इस दशा का नाम ही अन्तर्क्रिया है। सामाजिक संबंधों का निर्माण इस अन्तर्क्रिया द्वारा ही होता है । ऐसे सम्बन्ध जिनमें यह अन्तर्क्रिया नहीं पाई जाती है, समाजशास्त्र में अध्ययन का विषय नहीं है।

जॉनसन का कथन है कि "समाजशास्त्र सामाजिक समूहों का विज्ञान है, सामाजिक समूह सामाजिक अन्तर्क्रियाओं की ही एक व्याख्या है।" इस परिभाषा के द्वारा जॉनसन ने यह स्पष्ट किया है कि समाजशास्त्र को केवल सामाजिक संबंधों का अध्ययन कह देने से ही हमारा काम नहीं चल सकता। इसका कारण यह है कि सामाजिक संबंध बहुत साधारण भी हो सकते हैं। जैसे- दो अपरिचित व्यक्तियों द्वारा एक दूसरे की सहायता करना । यह संबंध सहयोगपूर्ण भी हो सकते है और विरोधपूर्ण भी । इस स्थिति में यदि सामाजिक संबंधों के अध्ययन को ही "समाजशास्त्र" कह दिया जाय तो हम किसी निश्चित निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सकते । इसलिए यही सही है कि समाजशास्त्र को सामाजिक समूहों का विज्ञान कहें । सामाजिक समूहों से जॉनसन का तात्पर्य व्यक्तियों से नहीं है बल्कि व्यक्तियों के बीच उत्पन्न होने वाली अन्तर्क्रियाओं की व्यवस्था से है । स्वयं जॉनसन के शब्दों में – "समाजशास्त्र के अन्दर मनुष्यों में हमारी रूचि केवल वहीं तक है जहाँ तक वे सामाजिक अन्तर्क्रियाओं की व्यवस्था में भाग लेते है ।"[1]

इस प्रकार जॉनसन के अनुसर समाजशास्त्र में उन्हीं सामाजिक संबंधों का अध्ययन किया जाता है जो सामाजिक अन्तर्क्रियाओं के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं। इन सभी परिभाषाओं के आधार पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि "समाजशास्त्र वह विज्ञान है जो सामाजिक संबंधों का व्यवस्थित अध्ययन करता है तथा सामाजिक संबंधों के विवेचन के लिए सामाजिक क्रिया, सामाजिक अन्तर्क्रिया और सामाजिक मूल्यों के अध्ययन को आवश्यक मानता है ।"

<u>समाजशास्त्र : विषय क्षेत्र</u>

समाजशास्त्र एक प्रगतिशील विज्ञान है। नवीन अनुसंधानों एवं विचारकों के चिन्तन- मनन द्वारा नवीन समस्याओं का उदय होता है और विज्ञान का क्षेत्र निरन्तर गति से परिवर्द्धित होता रहता है। इस प्रकार उसे सीमाबद्ध करना सम्भव नहीं है। इसी तथ्य की ओर संकेत करते हुए "कालबर्दन" ने लिखा है – "समाजशास्त्र इतना लचीला विज्ञान है कि यह निर्धारित कर सकना कठिन है कि कहाँ इसकी सीमायें प्रारम्भ होती है और कहाँ वे समाप्त होती है, कहाँ सामाजिक मनोविज्ञान समाजशास्त्र बन जाता है और कहाँ समाजशास्त्र सामाजिक मनोविज्ञान कहाँ आर्थिक सिद्धान्त समाजशास्त्रीय सिद्धान्त

---

1. हेनरी जॉनसन – "सोशियोलॉजी" पृष्ठ – 4, 8

वाद (वाद) बन जाते हैं, और कहीं जीवनशास्त्र विषय समाजशास्त्रीय सिद्धान्त।"[1]

अपने व्यापक रूप में समाजशास्त्र समाज-व्यवस्था (Social System) का अध्ययन करने वाला विज्ञान है। समाज व्यवस्था में सामाजिक प्रक्रिया, सामाजिक संबंध, सामाजिक नियंत्रण, सामाजिक परिवर्तन, सामाजिक संस्थाएँ तथा इनसे सम्बन्धित प्रभाव एवं परिस्थितियाँ आती है। अन्य शब्दों में "समाजशास्त्र वह विज्ञान है जो समाज व्यवस्था से सम्बन्धित विभिन्न पक्षों का अध्ययन करता है ।

उपर्युक्त सभी परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि समाजशास्त्र सम्पूर्ण समाज का एक समग्र इकाई के रूप में अध्ययन करने वाला विज्ञान है। इसमें सामाजिक सम्बन्धों का व्यवस्थित अध्ययन किया जाता है । सामाजिक सम्बन्धों को ठीक से समझने की दृष्टि से सामाजिक क्रिया, सामाजिक अन्तःक्रिया एवं सामाजिक मूल्यों का अध्ययन पर इस शास्त्र में विशेष जोर दिया जाता है ।

इंकल्स कहते है कि "समाजशास्त्र परिवर्तनशील समाज का अध्ययन करता है, इसलिए समाजशास्त्र के अध्ययन की न तो कोई सीमा निर्धारित की जा सकती है और न ही इसके अध्ययन क्षेत्र को बिल्कुल स्पष्ट रूप से परिभाषित किया जा सकता है ।"[2] क्षेत्र का तात्पर्य यह है कि वह विज्ञान कहाँ तक फैला हुआ है। अन्य शब्दों में क्षेत्र का अर्थ उन सम्भावित सीमाओं से है जिनके अन्तर्गत किसी विषय या विज्ञान का अध्ययन किया जा सकता है । समाजशास्त्र के विषय-क्षेत्र के सम्बन्ध में विद्वानों के मतों को मुख्यतः दो भागों में बाँटा जा सकता है । समाजशास्त्र के विषय-क्षेत्र के सम्बन्ध में विद्वानों के मतों को मुख्यतः दो भागों में बाँटा जा सकता है : (1) स्वरूपात्मक अथवा विशिष्टात्मक सम्प्रदाय (Formal or specialistic or Particularistic School) तथा (2) समन्वयात्मक सम्प्रदाय (Synthetic School)
प्रथम मत या विचारधारा के अनुसार समाजशास्त्र एक विशेष विज्ञान है और द्वितीय विचारधारा के अनुसार समाजशास्त्र एक सामान्य विज्ञान है।

---

1. सत्यकेतु विघालंकार, समाजशास्त्र, पृष्ठ-66 से उद्धृत
2. ऐलेक्स इंकल्स-पृष्ठ-1, समाजशास्त्र क्या है,
   (उद्धृत- एम.एल. गुप्ता एवं डी.डी. शर्मा- समाजशास्त्र, 1987 साहित्य भवन, द्वितीय संस्करण ।

(1) स्वरूपात्मक या विशिष्टात्मक सम्प्रदाय (Formal or Specialistic School)
इस सम्प्रदाय के समर्थकों में जार्ज सिमल, टानीज, रिचर्ड, पार्क तथा वीरकान्ट आदि है। इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक जर्मन समाजशास्त्री जार्ज सिमैल है। इनता मत है कि समाजशास्त्र अभी एक नया विज्ञान है । इस सम्प्रदाय के मतानुसार समाजशास्त्र एक विशिष्ट एवं स्वतंत्र विज्ञान है। समाजशास्त्र का एक विशिष्ट क्षेत्र है जो कि अन्य सामाजिक विज्ञानों के क्षेत्र से पृथक् है, भिनन है। अन्य विज्ञानों की भाँति इसका भी स्वतन्त्र असितत्व है। इस सम्प्रदाय के अनुयायी वसतु के सवयप (फार्म) तथा अन्तर्वस्तु (कण्टेण्ट) में अन्तर मानते हैं। वस्तु के आकार तथा उसमें विद्यमान पदार्थ दो भिन्न वस्तुयें हैं। यह दोनों एक दूसरे से पृथक् है।

(2) समन्वयात्मक (Synthetic) सम्प्रदाय – इस सम्प्रदाय के समर्थकों के मतानुसार समाजशास्त्र सामाजिक विज्ञानों का समन्वय है और सामान्य विज्ञान के रूप में सामाजिक संबंधों के सामान्य स्वरूप का अध्ययन करता है । समाजशास्त्र के अन्तर्गत वे समस्त घटनायें आती हैं जो कि सामान्यतः सामाजिक जीवन में विद्यमान है, जिन्हें उनकी सामान्य प्रकृति के कारण अन्य सामाजिक विज्ञान अपनी परिधि में नहीं समेट पाए । इस विचारधारा के मुख्य समर्थक हैं – दुर्खीम, हॉव हाउस, सोरोकिन, जिन्सवर्ग, इत्यादि । सोरोकिन के मतानुसार समाजशास्त्र उन घटनाओं का अध्ययन करता है, जो समस्त मानवीय अन्तर्क्रियाओं में समान है ।

इस प्रकार समाजशास्त्र को, जो कि एक प्रगतिशील विज्ञान है, किसी सीमा में बाँधा नहीं जा सकता। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से अध्ययन की गई घटना समाजशास्त्र की विषय–सामग्री है। इसके साथ ही समाजशास्त्र में दो आधारभूत धारणायें है – सामाजिक संरचना एवं सामाजिक व्यवस्था ।

सामाजिक संरचना –

सामाजिक संरचना एक केन्द्रीय अवधारणा है। इसके जन्मदाता हर्बर्ट स्पेंसर इसको स्पष्ट करने में जैविकीय सादृश्यताओं, सावयविक संरचना और उद्विकास से बहुत अधिक प्रभावित थे। समाज एक अखण्ड व्यवस्था नहीं है , उसमें अनेक अंग होते है। वे विभिन्न अंग व्यवस्थित ढंग से संयुक्त होकर एक ढाँचे या रूपरेखा की रचना करते हैं। इसी को सामाजिक संरचना कहते हैं ।

<u>सामाजिक व्यवस्था</u> –

सामाजिक व्यवस्था समाज के ढाँचे के प्रकार्यात्मक पक्ष की ओर संकेत करती है। समाज के निर्मायक अंग अपने-अपने निर्धारित प्रकार्यों के आधार पर परस्पर संबंधित रहते हुए जिस सन्तुलन को जन्म देते हैं, उसे सामाजिक व्यवस्था के नाम से सम्बोधित किया जाता है । यह समाज की आन्तरिक प्रक्रियाओं का परिचायक है ।

<u>पर्यावरण तथा समाज</u> –

पर्यावरण तथा समाज का सम्बन्ध घनिष्ट होता है। प्रत्येक जीव अपने पर्यावरण की उपज है। पर्यावरण शब्द 'परि + 'आवरण' से मिलकर बना है, जिनका क्रमशः अर्थ है, 'चारो ओर' तथा 'ढका हुआ ' इस अर्थ में प्राणी के चारों ओर जो कुछ भी भौतिक और अभौतिक वस्तुएँ है, वह उसका पर्यावरण है ।

जिस्बर्ट के अनुसार – "पर्यावरण वह सब कुछ है जो किसी वस्तु को चारों ओर से घेरे हुए हैं और उसे प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित कर रहा है।"[1] मनुष्य के लिए उसके पर्यावरण का महत्व अधिक होता है । वह पर्यावरण में जन्म लेकर उसमें बढ़ता है तथा सामाजिक विरासत में भाग लेता है ।

मैकाइवर तथा **पेज** ने लिखा है कि "मनुष्य एक पर्यावरण में जन्म लेता है, उसमें बढ़ता तथा प्रौढ़ होता है। उसका सारा शरीर उसके जीवन की रचना आदि सब कुछ उसके भूत, जीवन तथा भूत पर्यावरण की उत्पत्ति है । पर्यावरण तो जीवन के बीज कोष्ठ में भी उपस्थित रहता है। हमारे शरीर की क्षमतायें और गुण हमारे सम्पूर्ण पर्यावरण से सम्बन्धित है।"[2] **मैकाइवर** एवं **पेज** यह भी मानते है कि – पर्यावरण मानव के अनुभव में एक सम्पूर्ण जटिलता (A Complex totality in experience) है । भौगोलिक एवं सामाजिक पर्यावरण को एकदम पृथक नहीं किया जा सकता है ।

डॉ0 नगेन्द्र ने लिखा है – "पर्यावरण" अपेक्षाकृत सामान्य अर्थात् अपारिभाषित शब्द है जो साधारण रूप में भौगोलिक ऐतिहासिक शब्द है जो साधारण रूप में भौगोलिक, ऐतिहासिक परिस्थितियों का ही घोतन करता है।"[3] इस तरह "पर्यावरण" वह सामाजिक प्रक्रिया है जो हमारे समाज को भौगोलिक

---

1. जिस्बर्ठ : फण्डामेंन्टस् ऑफ सोशियोलॉजी

2. मैकाइवर और पेज – सोसाइटी पृष्ठ – 73,74
3. डॉ0 नगेन्द्र – "साहित्य का समाजशास्त्र". पृष्ठ –9

ऐतिहासिक, आर्थिक एवं धार्मिक अनेक रूपों में प्रभावित करती है ।

समाजशास्त्र एक विस्तृत शास्त्र है । समाजशास्त्र का यह दावा है कि अन्य शास्त्र सामाजिक जीवन के किसी एक पहलू के साथ प्रतिबद्ध है, जबकि समाजशास्त्र, सामाजिक जीवन का उसके समग्र रूप में अध्ययन करने के कारण सभी सामाजिक–शास्त्रों के क्षेत्र में उसका प्रवेश है। तद्नुसार उसमें अनेक शाखाओं का प्रस्फुटन सहत भाव से हो जाता है।

<u>साहित्य का समाजशास्त्र</u> –

साहित्य का समाजशास्त्र साहित्य संबन्धी एक नवीनतम विचारधारा है, जिसके अन्तर्गत साहित्य निर्माण की सामाजिक प्रक्रियाओं, परिवेशों और समाज में लेखकों की स्थिति आदि के संबंध में विचार किया जाता है। "साहित्य का समाजशास्त्र" से तात्पर्य है "साहित्य" की समाजशास्त्रीय आधारों पर व्याख्या या आलोचना। समाजशास्त्रियों ने साहित्य को किन–किन दृष्टियों से देखने का उपक्रम किया है, उसके विवेचन के पूर्व साहित्य के समाजशास्त्र के इतिहास पर दृष्टिपात करना समीचीन होगा। अधिकतर विचारक "साहित्य के समाजशास्त्र" के विकास का आरम्भ 17वीं शताब्दी में स्वीकार करते है। 17वीं शताब्दी के पूर्व तक साहित्य को कल्पना, धर्म एवं अलौकि प्रतिभा का फल माना जाता रहा और भौतिक मूल्यों के संदर्भ में साहित्य के अध्ययन को बहुत कम महत्व मिल सका । 17वीं शताब्दी के लेखकों ने इस तथ्य को प्रतिपादित किया कि साहित्य अपने परिवेश की उपज है।

अठारहवीं शताब्दी में "विको" ने अपने ग्रंथ "न्यू साइंस (1725) में स्पष्टतः इस तथ्य को प्रतिपादित किया कि सामाजिक सृष्टि अलौकिक शक्तियों का परिणाम न होकर मानवीय है, अतः उसकी संस्थाओं तथा कला का विश्लेषण भौतिक परिवेश में होना चाहिए । विको ने विश्व और इतिहास के सामाजिक पक्षों को भलीभाँति समझ लिया था। उन्होंने यह समझ लिया था कि विश्व का सामाजिक रूप अधिकतर मनुष्य की रचना है, किसी अलौकिक सत्ता की नहीं । अतः उसकी संस्थाओं और साथ ही कलाओं का विश्लेषण लौकिक शब्दावली में ही किया जा सकता है।"[1]

साहित्य की अवधारणा के परिवर्तन और विकास में सामाजिक विकास की प्रक्रिया की महत्वपूर्ण भूमिका की होती है । साहित्य के समाजशास्त्रीय चिंतन का आरम्भ समाज से साहित्य के

---

1. उद्धृत – निर्मला जैन – साहित्य का समाजशास्त्रीय चिंतन, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय , दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण, 1986

सम्बन्ध की खोज के साथ हुआ था। इस चिंतन के प्रारम्भिक विचारकों में फ्रेंच क्रांतिकारी महिला दार्शनिक मादाम-द-स्तेल (1766-1817) का महत्व सबसे पहले स्वीकार किया गया है। इनके साथ ही हर्डर (1744-1830) का नाम भी आदर के साथ लिया जाता है । हर्डर की ही तरह मादाम-द-स्तेल ने साहित्य का संबंध जलवायु, भूगोल और सामाजिक संस्थानों से सामान्यतः अव्यवस्थित ढंग से जोड़ा है। वे साहित्य और समाज पर अपनी पुस्तक का आरंभ इस दावे के साथ करती हैं कि उनका उद्देश्य साहित्य पर धर्म, रीति-रिवाज, और कानून के प्रभाव का परीक्षण करना है क्योंकि साहित्य की प्रकृति को प्रभावित करने वाले सामाजिक और राजनीतिक प्रभावों का बहुधा विश्लेषण नहीं किया गया है।"[1]

अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में दो प्रमुख विचारकों "एडम् स्मिथ" (1723-90) और "एडम फरग्यूसन" (1723-1816) ने साहित्य को यथार्थवादी मूल्यों पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया। जर्मन विचारक हीगेल (1770-1831) की दृष्टि में साहित्य समाज की अभिव्यक्ति है । एलनस्विंग बुड की रचनाओं की मान्यता है कि "अठारहवीं शताब्दी तक विचारक भौतिकवादी मान्यताओं से मुक्ति प्राप्त नहीं कर सके ओर न वे किसी ऐसी पद्वति को ही विकसित कर सके जो कला और सामाजिक संरचना के मध्य सम्बन्धों के विश्लेषण में सहायक हो सके ।"[2]

इनके पश्चात् इस क्षेत्र में फ्रांसीसी विचारक "तेन" ने साहित्य के समाजशास्त्र के वैज्ञानिक निरूपण की दिशा में पहल की । तेन ने वस्तुतः मादाम-द-स्ताल की विचारधारा को आगे बढ़ाया और उसे पुनर्व्यवस्था दी। तेन के विचारों की स्पष्टता और सुसंगतता ने यूरोपीय विचारकों को आकृष्ट किया है। तेन का यह सिद्धान्त प्रजाति, काल, पर्यावरण के त्रिकोण पर आधारित है। प्रजाति को तेन वंशानुक्रम, शारीरिक संरचना आदि से संबंधित मानते है और काल को युग-चेतना से संबंधित । इसी प्रकार पर्यावरण का संबंध वे जलवायु तथा सामाजिक परिवेश से जोड़ते हैं। ये तीनों तत्व एक ही से जुड़े है, अलग नहीं है।

दार्शनिक, इतिहासकार, राजनीतिज्ञ और निबंधकार "ईपॉलीन तेन" को सामान्यतः साहित्य के समाजशास्त्र का प्रवर्तक माना जाता है । हालाँकि बाहर तेन व्यापक रूप से उपेक्षित और विस्मृत रहे, फिर भी साहित्य और समाज पर उनके अधिकांश कार्य की प्रकृति सत्यभासी। होने के बावजूद

---

1. मादाम-द-स्ताल-द ला लितरात्युर (1800, पेरिस मिनार्ड, 1959, खण्ड-1 , पृष्ठ-3
2. विश्वम्भर दयाल गुप्ता- "साहित्य का समाजशास्त्र, पृष्ठ-20

उसके द्वारा साहित्य के किसी भी समाजशास्त्र के सामने आने वाली मूलभूत और स्थायी समस्याओं की जानकारी मिलती है ।"[1]

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रमुख विचारकों में तेन के पश्चात् कार्ल मार्क्स (1818–1883) एवं फ्रेंडरिक एंगेल्स (1820–1895) ने कला को भौतिक एवं आर्थिक कारकों से सम्बन्धित कर नई दिशा प्रदान की ।

हिन्दी आलोचक डॉ0 देवराज ने प्रतिपादित किया है कि "समाजशास्त्रीय आलोचना को आलोचक की एक प्रमुख दृष्टि या प्रणाली के रूप में अभिहित करने का अधिकांश श्रेय मार्क्सवाद को है ।"[2]

लेनिन, जी0बी0 प्लेखानोव, ए0के0 लू ाचरस्की, **मैक्सिम गोर्की,** हावर्ड फास्ट, लुकाच, **लूसिएं गोल्डमान** आदि के नाम मार्क्सवादी चिंतन के विकास में विशेष महत्व रखते हैं।

इस प्रकार उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक साहित्यिक आलोचना साहित्यिक कृति पर केन्द्रित होने की अपेक्षा वाह्य कारको यथा– प्रजातिकाल, पर्यावरण एवं वर्गशक्तियों से संबंधित रही। ऐतिहासिक, सामाजिक पृष्ठभूमि एवं लेखक का जीवन साहित्य विश्लेषण के महत्वपूर्ण आधार बने। जनता की रूचि को साहित्य के स्वरूप एवं विषयवस्तु के निर्धारण में महत्व मिला।

"साहित्य के समाजशास्त्र" के उदय का एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य भी है। मार्क्सवादी समाजशास्त्र के प्रचार प्रसार के समानान्तर और कुछ हद तक इसकी प्रतिक्रिया में भी इसे साम्यवाद विरोधी खेमे की ओर से खड़ा किया गया है ताकि मार्क्सवादी समाजशास्त्र का पूँजीवाद की ओर से एक अच्छा विकल्प दिया जा सके । सहित्य का समाजशास्त्र इस मार्क्सवादी समाजशास्त्र से कई अंशों में प्रभाव ग्रहण करता हुआ भी अपना स्वरूप अलग खड़ा करता है और एक प्रकार से मार्क्सवादी समाजशास्त्र का विरोध पक्ष ही प्रस्तुत करता है। इस नये समाजशास्त्र ने इस बीसवीं शती उत्तरार्द्ध तक आते आते अपना पर्याप्त विकास कर लिया है और साहित्य एवं कला की विवेचना सम्बन्धी अनेक पुस्तकों प्रकाश में आ गयी है। इन नये समाजशास्त्रीय आलोचकों में डंकन, एस्कारपिट,

---

1. निर्मला जैन – सा0 का समाजशास्त्रीय चिंतन, पृष्ठ – 21
2. डॉ0 देवराज : "आलोचना", पत्रिका 1951, पृष्ठ – 39

हवाकों, हैरीलेबिन, माल्कम ब्रडेबेरी. डाइना, लारेंसन, जोसेफ, रूचेक आदि का नाम विशेष उल्लेखनीय है जिनकी पुस्तकों में साहित्य के इस समाजशास्त्र को स्वरूप और आकार प्राप्त हुआ है। साहित्य का यह समाजशास्त्रीय अध्ययन साहित्य और समाज के सम्बन्धों पर आधारित है और दोनों के परस्पर संबंधों और प्रभावों का अध्ययन प्रस्तुत करता है। आज का लेखक समाज की व्यवस्था और उसकी विभिन्न स्थितियों, विसंगतियों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता।

साहित्य के इतिहास लेखन का जो संबंध समाज के इतिहास लेखन से है, लगभग वही संबंध साहित्य के समाजशास्त्र का समाजशास्त्र से हैं। साहित्य के इतिहास– लेखन के विकास के लिए समाज के इतिहास– लेखन का विकास जरूरी है और साहित्य की समाजशास्त्रीय दृष्टि के विकास के लिए समाजशास्त्र का । साहित्य के समाजशास्त्र के विश्लेषण में प्रायः तीन पद्धतियों का उल्लेख पश्चिमी आलोचकों ने किया है। पहली पद्धति में घटकों की परिकल्पना या स्थापना की जाती और उनके द्वारा साहित्य को जाँचा– परखा जाता है। दूसरी पद्धति में साहित्य में समाज की संरचनाओं पर विचार किया जाता है और दोनों को एक –दूसरे के समानान्तर रखकर विवेचित किया जाता हे। तीसरी पद्धति वह है जिसमें समाज की अन्य संस्थाओं की भांति साहित्य को भी संख्या मानकर उस पर विचार किया जाता है। साहित्य की सामाजिक दृष्टि समाज से साहित्य के विभिन्न प्रकार के सम्बन्धों की खोज करती है। लेकिन साहित्य कोई स्थिर वस्तु नहीं है। वह परिवर्तन शील और विकासशील होता है। परिवर्तन और विकास की प्रक्रिया साहित्य की परम्परा के भीतर चलती है, और वह समाज की विकास–प्रक्रिया का संबंध दो परस्पर संबद्ध विकासशील प्रक्रियाओं का आपसी संबंध है। इसलिए एक साहित्यिक कृति का समाज के साथ का संबंध भी बदलता रहता है। समाज से साहित्य के बदलते संबंध की पहचान के लिए सामाजिक दृष्टि काफी नहीं है, ऐतिहासिक दृष्टि भी जरूरी है। समाज तथा साहित्य के पारस्परिक संबंधों की वस्तुपरक व्याख्या "तेन" ने प्रस्तुत की है। उनके साहित्य के समाजशास्त्र के चार मुख्य पक्ष है :–

1. साहित्य के भौतिक सामाजिक मूलाधार की खोज
2. लेखक के महत्व का विश्लेषण
3. साहित्य में समाज के प्रतिबिंबन की व्याख्या,
4. साहित्य का पाठक से संबंध ।

तेन के साहित्य के समाजशास्त्र का प्रस्थान बिन्दु है – साहित्य के मूलाधार की खोज।"[1]

साहित्य के समाजशास्त्र के विकास में आलोचनात्मक समाजशास्त्र का महत्वपूर्ण योगदान है। फैंकफुर्त समुदाय के समाजशास्त्रीय चिंतन को ही आलोचनात्मक समाजशास्त्र भी कहा जाता है। आलोचनात्मक समाजशास्त्रियों की मुख्य देन हैं संस्कृति के समाजशास्त्र का विकास । यह काम मुख्य रूप से अडोर्नो, हर्बर्ट मारकुस और लिओ लावेंथल ने किया है ।

बीसवीं शताब्दी में साहित्य का समाजशास्त्र , एक पृथक् शाखा के रूप में अस्तित्व ग्रहण करके अपने स्वरूप एव प्रकृति निर्धारण हेतु प्रयत्नशील हुआ। इधर एक ओर साहित्यिक मूल्यांकन वाह्य कारकों से हटकर कृति और उसकी संरचना के अध्ययन पर केन्द्रित हो रहा है, दूसरी ओर साहित्य की स्वयत्तता को सापेक्ष बताते हुए भीतर और बाहर की वास्तविकता के बहुआयामी अध्ययन पर बल दिया जा रहा है। बींसवी शताब्दी में साहित्य के समाजशास्त्र को व्यापक क्षेत्र प्रदान करने वालों – "लूसिएं गोल्डमान, लियो लावेंथल तथा रेमण्ड विलियम्स का विशिष्ट योगदान है ।

साहित्य के समाजशास्त्र की उन्नीसवीं सदी की परम्परा को बीसवीं सदी में विकसित करने, उसकी दृष्टि और पद्धति को समकालीन बनाने में लावेंथल का योगदान अविस्मरणीय है। उनके प्रयत्न से साहित्य के समाजशास्त्र का क्षेत्र व्यापक बना है और उसमें विविधता आई है। तेन के बाद और गोल्डमान के पहले के काल के लावेंथल सर्वाधिक महत्वपूर्ण साहित्य के समाजशास्त्री है। उनके चिंतन की एक बड़ी विशेषता यह है कि उसमें साहित्य के इतिहास और समाजशास्त्र की वह एकता है जो तेन के यहाँ भी मिलती है। उनके चिंतन में जो समग्रता है वह बाद के समाजशास्त्रियों में नहीं मिलती।[2]

साहित्य के समाजशास्त्र को सुव्यवस्थित और विश्वसनीय बनाने वालों में लूसिएं गोल्डमान का नाम उल्लेखनीय है। साहित्य के समाजशास्त्री के रूप में उनको विशेष ख्याति फ्रांसीसी भाषा में प्रकाशित मुख्यतः दो कृतियों से मिली "अव्यक्त ईश्वर (1956) और "उपन्यास के समाजशास्त्र की एक दिशा" (1964) । साहित्य के समाजशास्त्र की दृष्टि से उनके दो निबन्ध महत्वपूर्ण है – (1) आधुनिक युग

---

1. डॉ0 मैनेजर पाण्डेय–साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, पृष्ठ– 123–124
2. डॉ0 मैनेजर पाण्डेय : साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, पृष्ठ–144

में सांस्कृतिक सृजन (1916) और दो – "साहित्य के समाजशास्त्र की पद्धति" (1980) । गोल्डमान सांस्कृतिक सर्जना के क्षेत्र में विशिष्टता को कम महत्व देते थे। वह विशिष्टता गोल्डमान की भी विशेषता लगती है। गोल्डमान केवल साहित्य के समाजशास्त्री नहीं है, वे दर्शन, समाजशास्त्र और मनोविज्ञान की विवेक यात्रा करते हुए साहित्य चिंतन की ओर आए ।[1] गोल्डमान ने साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन को "कृति" और उसमें प्रतिबिम्ब संरचनाओं के विश्लेषण पर केन्द्रित करते हुए "उत्पत्तिमूलक संरचनावाद" की अवधारणा को प्रस्तुत किया है। कृति को केवल कृतिकार के संदर्भ में देखने की अपेक्षा एक सामाजिक वर्ग की विश्वदृष्टि की समग्रता में देखने की मान्यता का निरूपण किया, जो कृतिकार के दृष्टिकोण एवं मानव संरचनाओं के निर्माण में सहायक होती है। गोल्डमान ने समाज से संस्कृति के ऐतिहासिक, सामाजिक और सौन्दर्य बोधीय संबंधों की खोज की दृष्टि विकसित की है। इससे भी अधिक महत्व की बात यह है कि उन्होंने केवल पद्धति का सिद्धान्त ही निर्मित नहीं किया है उसे व्यावहारिक विवेचन से प्रामाणिक भी बनाया है। विश्वदृष्टि की धारणा गोल्डमान के साहित्य के समाजशास्त्र की बुनियाद है। उनके अनुसार एक वर्ग या समूह की जीवन जगत् के बारे में सुसंगत दृष्टि ही विश्वदृष्टि है।

बीसवी शताब्दी में अमेरिका तथा अन्य यूरोपीय देशों में साहित्य के समाजशास्त्र को व्यापक समर्थन व लोकप्रियता प्राप्त हुई है। अमेरिकन समाजशास्त्री "सोरोकिन" अपने ग्रंथ "सोशल एण्ड कल्चरल डायनेमिक्स" के प्रथम खण्ड फ्लक्चुएशन्स ऑफ फार्म्स ऑफ आर्ट (1937) में समाजशास्त्री, कला , इतिहासकार और ऐतिहासिक दार्शनिक दृष्टिकोण का समन्वय करते हुए कला को सामाजिक सांस्कृतिक परिवर्तन के सामान्य सैद्धान्तिक परीक्षण की विधि मानते है। इसी परम्परा में रेनेवेलेक और वारेन ऑस्टिन अपने ग्रन्थ "थियरी ऑफ लिटरेचर" में साहित्य के संस्थात्मक स्वरूप को स्वीकार करते हुए कृतिकार व्यवसाय और साहित्य की संस्थाओं का समाजशास्त्र, साहित्यिक कृति का आर्थिक आधार लेखक की सामाजिक स्थिति एव परिधि कृति में निहित अन्तर्वस्तु तथा साहित्य के प्रयोजन को अध्ययन योग्य मानते है।"[2]

रूसी लेखक प्लेखानोव के साहित्याध्ययन ने मार्क्सवाद के आरंभिक साहित्यिक समाजशास्त्र की कमजोरियाँ उभारकर दिखाइ हे। उन्होंने कला तथा साहित्य के स्पष्टतः समाजशास्त्रीय आधारों

---

1. डॉ0 मैनेजर पाण्डेय : साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, पृष्ठ – 144
2. रेनेवेलेक और वारेन ऑस्टिन – "थियरी ऑफ लिटरेचर पृष्ठ–90

की सहज ही घोषणा की, पर इस क्रम में बहक कर उनका झुकाव अनगढ़ यांत्रिक अंतः सम्बन्धों की ओर होने लगा । एक मार्क्सवादी होने के लिहाज से उनका नजरिया आश्चर्यजनक रूप से ग्रहणशील था, क्योंकि उन्होंने केवल मार्क्स ही नहीं, काण्ट तथा तेन से भी बहुत कुछ ग्रहण किया। मार्क्स से उन्होंने कला के सामाजिक प्रकार्य का विचार लिया । "कला का आरम्भ तब होता है जब मानव अपने अंदर कुछ विशेष भावनाओं और विचारों का पुनरानुभव करके उन्हें एक विशेष आलंकारिक अभिव्यक्ति देता है। ये भावनायें और विचार पहले उसमें अपने चारों ओर घिरे यथार्थ के प्रभाव से जागे थे।"[1]

"साहित्य का समाजशास्त्र" समाजशास्त्र को नवविकसित शाखा के रूप में बीसवीं शताब्दी में निरन्तर विकास की ओर अग्रसर है। अमेरिकी और यूरोपीय देशों में ज्ञान की इस शाखा ने अपने अस्तित्व को स्थापित किया है । भारतवर्ष में अभी यह विषय नया है, फिर भी इसके अध्ययन के प्रति लोगों में रूचि बढ़ो है । भारतीय साहित्य की अपनी एक समृद्ध परम्परा रही है। साहित्यिक आलोचकों ने काव्यशास्त्रीय, सामाजिक, सांस्कृतिक दार्शनिक , ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक आधार पर साहित्य- सर्जन प्रक्रिया को बोधगम्य बनाने का प्रयास किया है। समाजशास्त्रीय परिपेक्ष्य में अध्ययन की प्रवृत्ति भी उदित हुई है।

भारत में साहित्यानुशीलन की परम्परा बहुत पुरानी है, लेकिन साहित्य चिंतन की सामाजिक दृष्टि का विकास आधुनिक युग की देन है । साहित्यानुशीलन की इस सामाजिक दृष्टि के दो रूप है। एक के अंतर्गत साहित्य में समाज की अभिव्यक्ति की खोज होती है। इसके पीछे मान्यता यह है कि साहित्य में किसी समाज के कालविशेष की ऐतिहासिक स्थितियों, समस्याओं, जीवन के अनुभवों और विचारों को अभिव्यक्ति होती है। उसमें सामाजिक यथार्थ और सामाजिक चेतना का संबंध मिलता है। इस सबसे साहित्य का स्वरूप बनता है। समाज और साहित्य के इस संबंध बोध के माध्यम से साहित्य के सामाजिक उद्भव और विकास का स्वरूप स्पष्ट होता है और सामाजिक परिवर्तन के साथ साहित्य के परिवतन की स्थितियों की पहचान भी होती है। साहित्यानुशीलन की सामाजिक दृष्टि के दूसरे रूप में साहित्य को एक प्रेरक शक्ति माना जाता है । इस धारणा के अनुसार समाज के परिवर्तन और विकास को प्रभावित करने वाली शक्ति है। वह सामाजिक चेतना के निर्माण और

---

1. डॉ0 निर्मला जैन - "साहित्य का समाजशास्त्रीय चिंतन, पृष्ठ-42

विकास में सहायक है । साहित्य की यह सामाजिक दृष्टि आधुनिक हिन्दी साहित्य के विकास के साथ भारतेन्दु युग में सामने आती है।

आधुनिक काल में इस नयी दृष्टि की पहली अभिव्यक्ति "बालकृष्ण भट्ट" के निबन्ध "साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है" में मिलती है। यह निबंध जुलाई 1881 के "हिन्दी प्रदीप" मं प्रकाशित हुआ था। बालकृष्ण भट्ट साहित्य के विकास और परिवर्तन को जातीय जीवन और भाषा के विकास व परिवर्तन के साथ सम्बद्ध मानते हैं। इसी तरह आ0 महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा लिखित "साहित्य की महत्ता" में "ज्ञानराशि के संचित कोष ही का नाम साहित्य है ।" साहित्य की यह धारणा समाज से साहित्य के अधिक व्यापक सम्बन्ध की ओर संकेत करती है। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने साहित्य को जातीय जीवन का प्रतिबिम्ब बताते हुए लिखा है कि "जाति विशेष के उत्कर्षापकर्ष का, उसके ऊँच-नीच भावों का, उसके धार्मिक विचारों और सामाजिक संगठन का, उसकी ऐतिहासिक घटनाओं और राजनीतिक स्थितियों का प्रतिबिम्ब देखने को यदि कहीं मिल सकता है तो उसके ग्रन्थ साहित्य में मिल सकता है। सामाजिक शक्ति या सजीवता, सामाजिक अशक्ति या निर्जीवता और सामाजिक सभ्यता तथा असभ्यता का निर्णायक एकमात्र साहित्य ही है ।" इस कथन में समाज से साहित्य के सम्बन्ध की व्यापकता सामने आती है। इसमें साहित्य जातीय जीवन की समग्रता अभिव्यंजक और उसके विकास की अवस्था का घोतक माना गया है ।[1]

साहित्य की सामाजिक दृष्टि का अधिक सुसंगत विकास आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के चिंतन में मिलता है । उन्होंने "हिन्दी साहित्य का इतिहास" में ऐसी धारणा प्रस्तुत की है जो उसके सामाजिक ऐतिहासिक स्वरूप की ओर संकेत करती है और साहित्य के विकासशील स्वरूप को सामाजिक विकास की परिणति के रूप में सामने लाती है। उन्होंने लिखा है – "जब कि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है।"[2]

---

1 डॉ0 मैनेजर पाण्डेय : साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, पृष्ठ 58

2. आ0 रामचन्द्र शुक्ल – हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ-1

बालकृष्ण भट्ट, महावीर प्रसाद द्विवेदी और आ0 रामचन्द्र शुक्ल साहित्य के समाजशास्त्री नहीं है लेकिन उनके चिंतन से हिन्दी साहित्य का समाजशास्त्रीय विवेचन करने वाला कोई भी व्यक्ति महत्वपूर्ण सूत्र और संकेत पा सकता है ।

मुक्तिबोध जी ने साहित्य में समाज की अभिव्यक्ति और उस अभिव्यक्ति की पुनर्रचना करने वाली दृष्टि के स्वरूप पर भी विचार किया है। मुक्तिबोध ने साहित्यिक कृति के स्वरूप की पहचान के साथ–साथ उसके समाजशास्त्रीय विश्लेषण की पद्धति पर भी विचार किया है। उन्होंने लिखा है कि – "साहित्य का अध्ययन एक प्रकार से मानव सत्ता का अध्ययन है, अतएव जो लोग केवल ऊपरी तौर पर साहित्य पर ऐतिहासिक विहंगावलोकन अथवा समाजशास्त्रीय निरीक्षण कर चुकने में ही अपनी इति कर्तव्यता समझते है वे एक पक्षीय अतिरेक करते है। ऐसे व्यक्ति साहित्य के ऐतिहासिक अथवा समाजशास्त्रीय परिवेश की बात करके चुप हो जाते है। आवश्यकता तो इस बात की है कि आलोचना में ऐतिहासिक समाजशास्त्रीय तथा मनोवैज्ञानिक – सौंदर्यात्मक विवेचना की सम्पूर्ण एकात्मता रहे ।"[1]

साहित्य की सामाजिक दृष्टि समाज से साहित्य के विभिन्न प्रकार के संबंधों की खोज करती है । लेकिन साहित्य कोई स्थिर वस्तु नहीं है। वह परिवर्तनशील और विकासशील होता है। परिवर्तन और विकास की प्रक्रिया साहित्य की परम्परा के भीतर चलती है और वह समाज की विकास प्रक्रिया से प्रभावित होती है। डॉ0 श्यामसुन्दर दास की विचारधारा "एच0तेन" की विचारधारा के निकट है। श्यामसुन्दर दास इस तथ्य को स्वीकार करते है कि कृति की स्थिरता में जाति , स्थिति और काल का प्रभाव महत्वपूर्ण हैं।"[2] उनकी दृष्टि में साहित्यकार जाति और स्थिति का निर्माण भी करते है। बाबु गुलाब राय "साहित्यकार को समाज का मुख और मस्तिष्क दोनों ही मानते है। साहितय के माध्यम से समाज के हृदय तक पहुँचना सम्भव है।" समाज कवि और लेखक को बनाता है, तो लेखक और कवि समाज को । डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी के विचारों में भी आधुनिक समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण के अंकुर मिलते है। द्विवेदी जी के अनुसार – "साहित्य उन सारी बातों का सजीव विवरण होता है जिसे मनुष्य ने देखा है, अनुभव किया है, सोचा है और समझा है। जीवन के जो पहलू हमें नजदीक से और स्थायी रूप से प्रभावित करते हैं, उनके

---

1. मुक्तिबोध – कामायनी एक अध्ययन, परिशिष्ट, पृष्ठ–1
2. श्यामसुन्दर दास – साहित्यालोचन, पृष्ठ – 41

विषय में मनुष्य के अनुभवों को समझने का एकमात्र साधन साहित्य है।[1]

डॉ0 नामवर सिंह, डॉ0 रामविलास शर्मा, डॉ0 रांगेय राघव, गजानन माधव मुक्तिबोध, डॉ0 शिव कुमार मिश्र आदि के विचारों में साहित्य के समाजशास्त्र को समर्थन और प्रतिष्ठा देने वाली अनेक स्थापनायें उपलब्ध है। ये विचारक समाजवादी यथार्थवाद की अवधारणा को साहित्यिक आलोचना का प्रमुख आधार मानते है । डॉ0 नामवर सिंह – "साहित्य में रूपनिधान की अपेक्षा विषयवस्तु के महत्व को स्वीकार करते है ।[2] साहित्य और समाज के मध्य की कड़ी के रूप में स्थित लेखक का व्यक्तित्व विशेष महत्वपूर्ण है । साहित्य रचना की प्रक्रिया में समाज, लेखक और साहित्य परस्पर एक दूसरे को इस तरह प्रभावित करते है कि इनमें से प्रत्येक क्रमशः परिवर्तित और विकसित होता रहता है – समाज से लेखक, लेखक से साहित्य और साहित्य से पुनः समाज।"[3] इस प्रकार पाश्चात्य विद्वानों से लेकर भारतीय विद्वानों तक में साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन के आधारसूत्र विद्यमान है।

ज्ञान की इस नव विकसित शाखा की संभावित सीमाऐं क्या है? उसके अध्ययन का विषय क्या हो? समाजशास्त्री, साहित्य से किस सामग्री का उपयोग अपने अध्ययन में करें, इत्यादि प्रश्न ऐसे है जिनका कोइ अन्तिम उत्तर देना सम्भव नहीं है। विशेषकरर उस स्थिति में जबकि समाजशास्त्र का अध्ययन न केवल समाजशास्त्री ही बल्कि साहित्यकार, साहित्य समीक्षक आलोचक भी कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में विषयवस्तु एवं अध्ययन क्षेत्र का निर्धारण साहित्य के समाजशास्त्री के लिए एक कठिन कार्य है ।

"साहित्य के समाजशास्त्र" का मुख्य आधार साहित्य है। सामान्य रूप से यह बात सत्य प्रतीत होती है । परन्तु क्या सम्पूर्ण वाड्.मय समाजशास्त्री के लिये प्रयोजनीय है या मात्र कृति? यह एक विचारणीय प्रश्न है, क्योकि साहित्य शब्द का व्यापक व संकुचित अर्थों में प्रयोग होता रहा है। साहित्यिक समाजशास्त्री का प्रयोजनीय विषय वही साहित्य है, जो मानव की

---

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी – साहित्य का साथी, पृष्ठ –4
2. डॉ0 नामवर सिंह – "साहित्य और समाज के बीच की कड़ी लेखक का व्यक्तित्व, पृष्ठ – 38
3. डॉ0 नामवर सिंह – "कलात्मक सौन्दर्य का आधार, इतिहास और आलोचना, पृष्ठ– 19

मानव की सौन्दर्यात्मक एवं अभिव्यक्तिमूलक आवश्यकताओं तथा कलात्मक अभिरूचियों की सन्तुष्टि हेतु सृजित हाता है , चाहे वह पद्य हा या गद्य, चाहे श्रव्य हो या दृश्य । मानवीय संवेदनाओं से प्रेरित साहित्यकार की रागात्मक अभिव्यक्ति, जो मानवीय हित सम्पादन हेतु सृजित है, साहित्य कहलाने की अधिकारी है। जीवन के शाश्वत मूल्यों, मानव संस्कृति को स्थिरता प्रदान करने तथा सामाजिकता की ओर प्रेरित करने वाला साहित्य – समाजशास्त्री के लिए अध्ययन की वस्तु है। इसमें सम्पूर्ण अन्य साहित्यिक विधायें – काव्य, नाटक, गद्य उपन्यास, कहानी आदि शामिल है। डॉ0 मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं – "पिछले सौ वर्षों की संस्कृति का भौतिकवादी व्याख्या के आधार पर कलाओं का जो समाजशास्त्र विकसित हुआ है, उसका एक रूप है – "साहित्य का समाजशास्त्र"। उसे कोई साहित्य का समाजशास्त्र कहे, या साहित्यिक समाजशास्त्र कहे या समाजशास्त्रीय आलोचना कहें, कोई खास फर्क नहीं पड़ता । मुख्य बात यह है कि उसका लक्ष्य साहित्य की आलोचना की व्याख्या करना है।"[1]

अन्ततः साहित्य की समाजशास्त्रीय व्याख्या करते हुए डॉ0 दशरथ ओझा के शब्दों में कहा जा सकता है कि – "हमे साहित्य से समाज का, सामाजिक विचारधारा का, वादों का सम्बन्ध मानते है, किन्तु अनुवर्ती रूप में । साहित्य की अपनी सत्ता के अन्तर्गत उसके निर्माण में इसका स्थान है। ये उसके उपादान और हेतु हुआ करते हैं, नियामक और अधिकारी नहीं। साहित्य की अपनी सत्ता है, यद्यपि वह सत्ता जीवन सापेक्ष है। जीवन निरपेक्ष कला के लिए भ्रान्ति है, जीवन सापेक्ष कला के लिए कला सिद्धान्त है।"[2]

साहित्य का समाजशास्त्र एव उसकी अध्ययन पद्धति किसी मतवाद या राजनीतिक झुकाव अथवा पूर्वाग्रह की अवधारणा से प्रभावित न होकर निरपेक्ष एवं वस्तुनिष्ठ अध्ययन की पद्धति है जो कार्यकारण संबंध के आधार पर वैज्ञानिक अध्ययन की ओर उन्मुख है। वह अनुभव सापेक्ष की अपेक्षा तथ्य सापेक्ष है। इस प्रकार उसकी प्रकृति वैज्ञानिक है । वह साहित्य के सम्बन्ध में रूढ़िवादी परम्पराओं एवं मान्यताओं का अनुसरण न कर उन्हें तथ्यों के आधार पर मूल्यांकन करने का प्रयास करती है।

---

1. डॉ0 मैनेजर पाण्डेय– साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, पृष्ठ–5
2. डॉ0 दशरथ ओझा – "साहित्य और समाज", पृष्ठ –17

साहित्यिक विधाएँ और उपन्यास का समाजशास्त्र –

साहित्यिक विधाओं का प्रयोजन है रचनाओं का संप्रेषण और सौन्दर्य बोध । वे लेखक, पाठक और आलोचक के बीच स्वीकृत ऐतिहासिक मान्यताओं के रूप में क्रियाशील होती हैं, इसलिये रचनाओं के अर्थ बोध में सहायक बनती है।[1] साहित्य के रूपों के समाजशास्त्र के निर्माता का वैचारिक आधार तैयार करते हुए बहुत पहले जार्ज लुकाच ने कहा था कि, "साहित्य में सच ही मूलतः सामाजिक होता है। वह सर्जक कलाकार और पाठक समुदाय के बीच वास्तविक संबंध का सच्चा सूत्र है । "[2] इस प्रकार साहित्य में रूप ही ऐसा तत्व है जो सामाजिक और सौन्दर्य बोधीय दोनों होता है । लुकाच की यह मान्यता सन् 1910 के उनके लंबे निबंध "आधुनिक नाटक का समाजशास्त्र" में है । उनकी इस मान्यता का पूरा विकास "उपन्यास का सिद्धांत" नामक प्रसिद्ध पुस्तक में है । उन दिनों जार्ज लुकाच, सिम्मेल और मैक्स बेपर जैसे समाजशास्त्रियों के चिंतन से प्रभावित होकर कला और साहित्य की समस्याओं पर विचार कर रहे थे । यद्यपि सिम्मेल की रूप की धारणा कांट की मान्यताओं से प्रभावित है, लेकिन उसमें ऐतिहासिकता का समावेश सिम्मेलन की अपनी देन है। जार्ज लुकाच ने ठीक ही लिखा है कि साहित्य में रूप सामाजिक होता है और सौन्दर्यबोधीय भी। साहित्य का वहीं समाजशास्त्र प्रामाणिक और विश्वसनीय हो सकता है जो साहित्य के रूप में इन दोनों पक्षों को उजागर करें । इनमें से किसी एक पक्ष तक सीमित रहने वाली आलोचना अंततः अधूरी ही होगी । साहित्य के रूप के महत्व की ठीक ढंग से व्याख्या करके उसके सामाजिक और सौन्दर्यबोधीय पक्षों को उजागत करते हुए साहित्य के समाजशास्त्र को अधिक विश्वसनीय बनाया जा सकता है । सामाजिक विकास से साहित्य रूप के विकास के स्पष्ट संबंध का सबसे बड़ा प्रमाण है आधुनिक युग में उपन्यास का उदय।

साहित्यिक विधाओं में उपन्यास के आविर्भाव की चर्चा करते हुए सुप्रसिद्ध पश्चात्य समीक्षक राल्फ फाक्स ने अपनी चर्चित पुस्तक "नावेल एण्ड द पीपुल" में लिखा है कि "उपन्यास विश्व की कल्पना– प्रसूत संस्कृति के बुर्जुआ अथवा पूँजीवादी सभ्यता की सबसे बड़ी देन है।"[3] यह कथन उपन्यास की महत्ता को तो प्रतिपादित करता है, किन्तु उपन्यास की उत्पत्ति के विषय में कोई स्पष्ट संकेत नही देता ।

---

1. डॉ0 मैनेजर पाण्डेय – साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, पृष्ठ– 217
2. डॉ0 मैनेजर पाण्डेय: साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, पुष्ठ– 208
3. राल्फ फॉक्स – द नावेल एण्ड द पीपुल

हेगेल ने आधुनिक युग में उपन्यास के उदय की विशिष्टता को लक्षित करते हुए ठीक ही कहा था कि उपन्यास आधुनिक युग में महाकाव्य का विकल्प है, वह मध्यवर्ग का महाकाव्य है, ौर आधुनिक युग की चेतना का प्रतिनिधि साहित्य रूप है। हेगेल की मान्यता है कि प्रत्येक युग की विशिष्ट मानसिकता होती है, एक विशिष्ट विश्वदृष्टि होती है और उस मानसिकता तथा विश्वदृष्टि के अनुरूप कला रूप का विकास होता है । उपन्यास में आधुनिक युग की गद्यात्मक चेतना प्रकट होती है और उसमें आधुनिक पूँजीवादी समाज के जीवन में समग्रता के लोप और बिखराव की स्थितियाँ व्यक्त होती है ।"[1]

आज उपन्यास शब्द अपनी विशिष्ट अर्थवत्ता के कारण नये अर्थ की व्यंजना करता है। आज का भारतीय उपन्यास अपनी पुरानी मान्यताओं को किन्हीं अर्थों तक बरकरार रखते हुए इतना कुछ परिवर्तित हो चुका है कि उसके स्वरूप का निश्चित निर्धारण करना अथवा उसे सर्वस्वीकृत रूप में परिभाषित करना अत्यन्त दुष्कर कार्य है । फिर भी उसके स्वरूप को समझने के लिए विभिन्न विद्वानों ने उसकी अपने अपने ढंग से परिभाषायें की है । डॉ0 त्रिभुवन सिंह ने उपन्यास को आधुनिक मानवीय जीवन का प्रतिबिम्ब स्वीकार करते हुए लिखा है – "उपन्यास आधुनिक समाज की विषमताओं, विभिन्नताओं, समस्याओं तथा मानव की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को सफल अभिव्यक्ति देने के लिए अस्तित्व में आया है, जिसके लिए प्रबन्ध काव्य , महाकाव्य, गीत , नाटक तथा कहानियाँ असमर्थ सिद्ध हो चुकी थी।"[2] इस प्रकार डॉ0 त्रिभुवन सिंह साहित्य की अन्यान्य विधाओं को आधुनिक जीवन की स्थितियों को अभिव्यक्ति देने में असमर्थ मानते है, और उनकी मान्यता है कि यह केवल औपन्यासिक कृतियों में ही सम्भव हो सकता है ।

आ0 नन्ददुलारे बाजपेयी ने उपन्यास को आधुनिक युग की देन माना है तथा उसके विकास को गद्य के विकास के साथ जोड़कर देखा है। उनकी मान्यता है कि – "यूरोप में गद्य उपन्यासों के पूर्व कुछ प्रेमाख्यानक कवितायें प्रचलित थी, उन्हें ही आधुनिक उपन्यास की जननी कहा जा सकता है।"[3]

---

1. "डायना टी. लॉरेन्सन एण्ड एलेन स्वींग वुड , द सोशियोलॉजी ऑफ लिटरेचर " पृष्ठ–30"
2. डॉ0 त्रिभुवन सिंह – "हिन्दी उपन्यास शिल्प और प्रयोग, पृष्ठ–11
3. डॉ0 नन्द दुलारे बाजपेयी – आधुनिक साहित्य , पुष्ठ – 171

शिवदान सिंह चौहान ने हिन्दी उपन्यास को "साहित्य का एक नया और संश्लिष्ट रूप विधान बतलाया है. जिसका क्षेत्र और संभावनायें असीम है।"[1]

उपन्यास की चर्चा करते हुए डॉ0 एस0एन0 गणेशन ने लिखा है – "उपन्यास मनुष्य के सामाजिक वैयक्तिक अथवा दोनो प्रकार के जीवन का रोमांचक साहित्यिक प्रतिरूप है जो प्रायः एक कथा सूत्र के आधार पर निर्मित होता है ।"[2]

हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार – "हिन्दी साहित्य का सबसे नया और शक्तिशाली रूप उपन्यासों में प्रकट हुआ ।"[3]

उपर्युक्त परिभाषाओं से यह विदित होता है कि उपन्यास मनुष्य के जीवन की व्यापकता को व्यक्त करता है, उपन्यास एक ऐसी विधा है जिसमें चिन्ताकर्षक रूप से मनुष्य की वैविध्यपूर्ण प्रकृति, उसके बुद्धि–विलास, तथा भाव समृद्धियों की अभिव्यक्ति प्रस्तुत की जाती है। उपन्यासकार एक सामाजिक प्राणी होने के नाते समाज के सम्पूर्ण यथार्थ को अपने अनुभव सर्जनात्मक क्षमता के आधार पर प्रस्तुत कर देता है। ऐसी कला जिसे उपन्यास कहते है, केवल समाज में ही उत्पन्न हो सकती है । जहाँ आर्थिक विषमताएँ व्यक्ति को सोचने के लिए बाध्य करती है।

उपन्यास आधुनिक साहित्य की अपेक्षाकृत नवीन विधा है, हिन्दी उपन्यास पर अंग्रेजी तथा बंगला के उपन्यासकारों का भी प्रभाव पड़ा है । उपन्यास विधा के उदय के कारणों का विस्तृत अध्ययन करने पर इसके उदय में मुख्य रूप से तीन कारक परिस्थितियाँ कार्यरत थी– लोक–जीवन, मध्यवर्ग, और पाठक । कोई भी उपन्यासकार लोक जीवन से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता, क्योंकि उपन्यासकार समाज में रहता है, समाज की वास्तविकता को ही भोगता है, तब कहीं वह कुछ लिखने या कहने में समर्थ होता है ।

हिन्दी का पहला उपन्यास "परीक्षागुरू" 1882 ई0 में प्रकट हुआ। हिन्दी उपन्यास साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचन्द का उदय एक युग प्रवर्तक के रूप में होता है । उन्होंने हिन्दी उपन्यास साहित्य को एक नई दिशा दी , उसके लिए एक नवीन भूमि का निर्माण किया। उन्होंने अपने

---

1. डॉ0 शिवदान सिंह चौहान – हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष, पृष्ठ –141
3. एस.एन. गणेशन – हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन , पृष्ठ 29
3. हजारी प्रसाद द्विवेदी – हिन्दी साहित्य, पृष्ठ–412

पूर्व के उपन्यासों और उपन्यासकारों से जो कुछ भी विरासत के रूप में ग्रहण किया, उसे सम्पन्न, समृद्ध तथा प्रौढ़ रूप देकर हिन्दी जगत के समक्ष प्रस्तुत किया। डॉ0 रामविलास शर्मा के शब्दों में – "प्रेमचन्द हिन्दुस्तान की नई राष्ट्रीय और जनवादी चेतना के प्रतिनिधि साहित्यकार थे। जब उन्होंने लिखना शुरू किया था। तब संसार पर पहले महायुद्ध के बादल मंडरा रहे थे, जब मौत ने उनके हाथों से कलम छीन ली , दूसरे महायुद्ध की तैयारियाँ हो रही थी । इस बीच विश्व मानव संस्कृति में बहुत से परिवर्तन हुए । इन परिवर्तनों से हिन्दुस्तान भी प्रभावित हुआ और उसने उन परिवर्तनों में सहायता भी की ।[1]

आज का पाठक उपन्यास के माध्यम से जीवन के विस्तार को पा लेता है और मन से मानवीय अनुभूति के विस्तृत क्षेत्र में सहभागी हो जाता है । आज के उपन्यास और उसके पाठकों के आपसी तन्मयता को दखते हुए श्री महेन्द्र चतुर्वेदी लिखते है कि – "उपन्यास पाठक के मानसिक क्षितिज को जो विस्तार देता है, मानव स्वभाव को गहराई से समझने की जो सामर्थ्य देता है, उसकी उपेक्षा कैसे की जा सकती है? सत्य तो यह है कि उपन्यास का पाठक अपनी प्रेरणा मूलतः इसीलिए पाता है कि उसे पाठ में रस मिलता है, परन्तु वह मानसिक परितोष का, विवेक जगाने का तथा मानव स्वभाव के शास्त्र सत्य को समझने का साधन भी हो सकता है ओर होता है – इसी में उसकी महत्ता है ।"[2]

उपन्यास आज के साहित्य रूपों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण विधा है। एक अर्थ में वह साहित्य की केन्द्रीय विधा है । उपन्यास ही आज के यथार्थ को उसकी बहुरंगी विविधता में मूर्त कर सकता है । आज के समाज की सम्पूर्ण स्थिति का, उसकी समग्र व्यापकता, गहराई, वैविध्य, विरोध, विसंगति, विद्रूप, आस्था एवं अनास्था का मूर्तरूप उपन्यासों में ही देखा जा सकता है।

<u>उपन्यास का समाजशास्त्र</u> –

उपन्यास और समाजशास्त्र एक ही युग के समान भौतिक और वैचारिक परिवेश की उपज है । मिशैल जेराफा ने लिखा है कि – "उपन्यास ऐसी कला है जिसमें मनुष्य सामाजिक और ऐतिहासिक दृष्टि से निरूपित होकर सामने आता है।"[3] जेराफा के इस कथन के अभिप्राय

---

1. डॉ0 रामविलास शर्मा – प्रेमचन्द्र और उनका युग, पृष्ठ–3
2. महेन्द्र चतुर्वेदी – हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण, भूमिका, पृष्ठ–51
3. डॉ0 मैनेजर पाण्डेय : साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका से उद्धत , पृष्ठ–227

पर ध्यान देते ही यह बात समझ में आ जाएगी कि साहित्य के समाजशास्त्रियों के बीच उपन्यास अधिक लोकप्रिय क्यों है । इससे यह भी समझने में सुविधा होगी कि कला के दूसरे रूपों और साहित्य की दूसरी विधाओं की तुलना में उपन्यास समाजशास्त्रीय विश्लेषण के अधिक अनुकूल क्यों है। अपने समय, समाज और इतिहास की प्रक्रिया से परिभाषित मनुष्य ही उपन्यास रचना का लक्ष्य है, और समाजशास्त्रीय अन्वेषण का भी। एक उसकी कलात्मक पुनर्रचना का माध्यम है तो दूसरा उसके बौद्धिक विश्लेषण का साधन । समाजशास्त्र में मनुष्य की सामाजिकता की पहचान के अनेक रास्ते हैं। उनमें से जो रास्ता साहित्य संसार से होकर जाता है, वह सबसे सुगम और विश्वसनीय तब होता है, जब वह उपन्यास के रचना संसार से गुजरता है, क्योंकि वहाँ न तो कविता की तरह आत्मपरकता की फिसलन होती है, और न नाटक के यथार्थ का मायालोक होता है। उपन्यास की कला में मौजूद मनुष्य के समाजसम्बद्ध और इतिहास सापेक्ष रूप को आसानी से पहचाना जा सकता है । वहाँ कल्पना के रची बसी जिंदगी की वास्तविकता को आसानी से पाया जा सकता है । इसीलिए साहित्य का समाजशास्त्री सबसे पहले और सबसे अधिक उपन्यास की ओर मुड़ता है । उपन्यास के समाजशास्त्र के विशेष विकसित होने का भी यही कारण है ।[1]

अपने समय और समाज के निरीक्षण, परीक्षण और अन्वेषण की आधुनिक दृष्टि का एक रूप उपन्यास में मिलता है ओर दूसरा समाजशास्त्र में, रिचर्ड होगार्ठ के शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि – "उपन्यास में साहित्यिक कल्पना और समाजशास्त्रीय कल्पना की जो रचनात्मक एकता मिलती है, उसी की खोज और पहचान उपन्यास के समाजशास्त्र का मुख्य लक्ष्य है।"[2]

पश्चिम में साहित्य के समाजशास्त्र के विकास के आरंभिक काल से ही उपन्यास के सामाजिक आधार, अर्थ और अभिप्राय की खोज होती आ रही है। उपन्यास के उदय काल से उसके रूप और अंतर्वस्तु का ऐतिहासिक, सामाजिक स्वरूप साहित्य विचारकों को आकर्षित करता रहा है। मादाम स्तेल और हेगेल के चिंतन से उपन्यास के सामाजिक आधार और अभिप्राय पर विचार

---

1. डॉ0 मैनेजर पाण्डेय – साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, पृष्ठ–227
2. डॉ0 मैनेजर पाण्डेय – साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, पृष्ठ–228

की जो परम्परा शुरू हुई थी, वह उपन्यास के विकास के साथ-साथ विकसित हुई है। विगत चार सदियों में पश्चिम में उपन्यास की कला में निरन्तर निखार आया है, उसकी रचना दृष्टियां में विविधता आई है और कलात्मक प्रयोगों की अनेक परम्पराऐं विकसित हुई है। इन सबके समानांतर उपन्यास की समाजशास्त्रीय व्याख्या के लिए आवश्यक दृष्टियों और पद्धतियों की खोज भी होती रही है । इसी प्रक्रिया में उपन्यास के समाजशास्त्रीय विश्लेषण की अवधारणाओं और पद्धतियों का विकास हुआ है। उपन्यास की समाजशास्त्रीय व्याख्या की अनेक दृष्टियाँ और पद्धतियाँ है । सबसे पुराना दृष्टिकोण विधेयवाद का है, जिसका नया रूप अनुभववाद में दिखाई देता है। इसमें एक ओर उपन्यास के सामाजिक अस्तित्व को निर्धारित करने वाली भौतिक परिस्थितियों का विश्लेषण होता है तो दूसरी ओर उपन्यास के पाठकीय ग्रहण का विवेचन किया जाता है । उपन्यास के समाजशास्त्र का एक और रूप मार्क्सवादी विश्लेषण में मिलता है, जिसमें अंतर्वस्तु ओर रूप में निहित सामाजिक यथार्थ, चेतना विचारधारा आदि की खोज होती है। कुछ समाजशास्त्रियों ने संरचनावाद की पद्धति के सहारे उपन्यास का समाजशास्त्र विकसित करने का प्रयास किया है। गोल्डमान ने मार्क्सवाद और संरचनावाद के बीच एकता स्थापित करते हुए उत्पत्तिमूलक संरचनावाद की पद्धति से एक नए ढंग का उपन्यास का समाजशास्त्र विकसित किया है । जैसे यूरोप में उपन्यास के विकास से दुनिया भर में उपन्यास का विकास किसी न किसी रूप में प्रभावित हुआ है, वैसे ही उपन्यास के समाजशास्त्रीय विश्लेषण की यूरोपीय परम्परा में विकसित अवधारणाओं और पद्धतियों का प्रभाव दूसरे देशों के उपन्यासों के समाजशास्त्रीय विश्लेषण पर पड़ा है। अब उपन्यास की विधा के साथ उसको रचना और आलोचना से जुड़ी अवधारणायें भी विश्वव्यापी बन गयी है।

उपन्यास मध्ययुगीनता के विरूद्ध आधुनिकता के विद्रोह की अभिव्यक्ति करने वाला साहित्य रूप है । उपन्यास अपने पाठकों को जीवनमूल्यों के बीच चुनाव का संकेत देता है, उनकी सहानुभूतियों का विस्तार करता है और जीवन को कला भी सिखाता है। इस तरह उसका एक नैतिक आयाम है। प्रायः उपन्यास के समाजशास्त्र में उपन्यासकार की वर्गचेतना, विचारधारा, या विश्वदृष्टि के सहारे उपन्यास का सामाजिक अभिप्राय जानने की कोशिश होती है। मिखाइल बाख्तिन के अनुसार उपन्यास की केन्द्रीय विशेषता है उसकी संवादधर्मिता । साहित्य के दूसरे रूपों की तुलना में उपन्यास की संवादधर्मिता में अनेकता होती है। उन्होंने लिखा है कि उपन्यास में सामाजिक वानी की विविधता

और वैयक्तिक स्वरों की विविधता का कलात्मक गठन होता है।[1] इसलिए आज यह आवश्यक हो गया है कि हम उपन्यास – साहित्य का मूल्यांकन समाजशास्त्रीय दृष्टि से करें। आज समाज का जितना गहरा सरोकार उपन्यास विधा का है, उतना साहित्य की किसी अन्य विधा से नहीं। इसलिए आज साहित्य चिन्तकों के बीच उपन्यास साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन को विशेष महत्व दिया जा रहा है ।

---

1. डॉ0 मैनेजर पाण्डेय – साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका , पृष्ठ – 249

अध्याय : दो

अमृतलाल नागर : व्यक्तित्व और परिवेश

<u>नागर जी का पारिवारिक जीवन</u> –

उपन्यास विधा को समुन्नत एव समृद्ध बनाने वालो की श्रृखला मे अमृतलाल नागर का नाम उल्लेखनीय है, जिन्होने अपनी लेखनी से आधुनिक कथा – साहित्य को समृद्ध बनाया है और अपने व्यक्तित्व की विलक्षण छाप हिन्दी कथा–साहित्य मे अकित की है। जीवन के असीम अनुभवो को स्वय जीते हुए ज्यो का त्यो कलम मे बॉध लेना नागर जी की नैसर्गिक प्रतिमा का वैशिष्ट्रय है । लेखक का जीवन वृत्त उसके व्यक्तित्व – निर्माण का वाह्य उपादान है और जीवनदर्शन आभ्यन्तर उपादान । जीवनी, उसका बहिरंग है और जीवन दर्शन अन्तरग है।

अमृतलाल नागर का जन्म 17 अगस्त, सन् 1916 को उत्तर प्रदेश के आगरा नगर के गोकुलपुरा मुहल्ले में एक प्रतिष्ठित नागर ब्राहमण परिवार में हुआ। उनके पूर्वजो का मूल निवास गुजरात में था लगभग ढाई सौ वर्ष पूर्व इनका कोई पूर्व पुरूष उत्तर प्रदेश में आकर बस गया । जहॉ तक उनके पूर्वजो के उत्तर प्रदेश आकर बसने का प्रश्न है, निश्चित तिथि ज्ञात नही । किन्तु कहा जाता है कि शाह आलम फर्रूखशियर के शासनकाल मे नागरो के अष्टकुल गुजरात से उत्तर प्रदेश के प्रयाग नगर मे आकर बस थे। वैसे उत्तर प्रदेश के विभिन्न नगरों मे नागर ब्राहमणो के बहुत से परिवार हो गये है। सन् 1895 ई0 मे नागर जी के पितामह स्वर्गीय शिवराम जी इलाहाबाद बैक के एजेण्ट होकर लखनऊ के निवासी हुए । उन्होने उत्तर प्रदेश के कई नगरों – मुरादाबाद, सीतापुर, लखनऊ आदि मे बैक की शाखाऐं स्थापित कर उन्नति करके बैक का मैनेजर पद प्राप्त किया । नागर जी के पिता का नाम स्वर्गीय श्री राजाराम शर्मा एव माता का नाम विद्यावती था। पिता जी के अत्यधिक स्नेह के कारण राजाराम जी को उचित शिक्षा नही मिल सकी। अतः उनकी डाक्टर बनने की कल्पना साकार न हो पायी और इण्टरमीडिएट की परीक्षा उत्तीर्ण होने के बाद वे पोस्ट आफिस मे क्लर्क हो गये। प्रकाशचन्द्र मिश्र जी ने लिखा है कि इस स्थिति का वर्णन करते हुए नागर जी कहते है – क्लर्क बने सो बने । हॉ उनका क्रोध बढ गया, लेकिन घर ही मे। मॉ–बाप पर क्रोध कर नही सकते

थे , लेकिन नौकरों पर, मेरी माँ या मुझ पर जोर से क्रोधित होकर घर भर को धर्रा देते थे"[1]

उनके पिता रंगमंच के शौकीन होने के कारण अभिनय कला में भी दक्ष थे एवं कुशल तबलावादक भी थे । इनके पिता एक माहिर मिस्त्री और फुटबाल के खिलाड़ी भी थे । धर्मयुग के "बालजगत" के अन्तर्गत नागर जी ने अपने पिता के क्रोध एवं उच्च आदर्शों तथा संस्कारो के विषय में लिखा है – "एक बार पिता जी के जालो दस्तखत बनाकर स्कूल में अर्जी भेजने पर उन्हें पिता द्वारा बहुत मार पड़ी ।" तू जालिया बनेगा कहते जाएं और मारते जांए । उस मार से मेरा अन्तर हिल उठा था और फिर यह आदत सदा के लिए छूट गयी । अब सोचता हूँ , वह मार बहुत भली थी"।[2]

नागर जी के पिता गाँधीवादी विचारधारा के समर्थक थे । इस विषय में नागर जी ने स्वयं कहा है – "आन्दोलन के दिनों में मुझे और मेरी माँ को चरखा कातने का चस्का लग गया था । मेरे पिता जी इस कार्य से काफी प्रसन्न थे। उन्होंने मेरी माता के लिए स्वयं एक चरखा बनाया था। टूटी हुई हालत में वह हल्का फुल्का चरखा मैंने अब तक अपने पास सुरक्षित रख छोड़ा है ।[3]

नागर जी पर अपने पिता के उच्चादर्शों का विशेष प्रभाव पड़ा । जीवन के प्रारम्भिक दिनों में जिस आचार–विचार का बीज उनके संस्कारों में पनपता रहा, वह आगे चलकर उनके साहित्यिक जीवन में पूरी तरह से पल्लवित हुआ।

नागर जी तीन भाई थे। श्री अमृतलाल नागर, श्री रतनलाल नागर और श्री मदनलाल नागर जैसे तीन सुयोग्य पुत्रों को पाकर राजाराम जी की सामाजिक प्रतिष्ठा में चार–चाँद लग गया । तीन भाइयों में ज्येष्ठ श्री अमृतलाल नागर गाँधीवादी मान्यताओं के प्रति समर्पित मानवतावादी विचारक और हिन्दी के ख्यातिलब्ध प्रतिष्ठित कथाकार थे । मझले भाई

---

1. डॉ0 प्रकाशचन्द्र अमृतलाल नागर का उपन्यास साहित्य, पृष्ठ–36
2. धर्मयुग "बालजगत" । अप्रैल, 1973, पृष्ठ–25
3. डॉ0 प्रकाश चन्द्र मिश्र: नागर: उपन्यास कला, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ–37 से उद्धत ।

श्री रतनलाल नागर डाइरेक्टर के रूप में फिल्म जगत से सम्बद्ध थे, किन्तु दुर्भाग्यवश सन् 1966 में उनकी मृत्यु हो गयी थी। अकादमी पुरस्कार से सम्मानित कनिष्ठ भ्राता श्री मदनलाल जी एक विख्यात चित्रकार और लखनऊ विश्वविद्यालय में ललित कला के आचार्य एवं अध्यक्ष है।[1]

नागर जी के साहित्यिक व्यक्तित्व की पूर्णता का श्रेय उनकी सहधर्मिणी श्रीमती प्रतिभा नागर जी को है, उनका विवाह अल्पायु में 31 जनवरी 1931 को हुआ था। नागर जी के शब्दों में उनकी पत्नी 75 प्रतिशत अमृतलाल नागर हैं । डॉ0 कुसुम वार्ष्णेय को दिये गये "इण्टरव्यू" में श्रीमती नागर के शब्द नागर जी की बात को पूर्णतः सार्थक करते है। "शुरू में इन्हें देखकर मुझे भी लिखने का शौक हुआ था, पर यह सोचकर मैंने वह छोड़ दिया कि मेरा लेखिका बनना उतना जरूरी नहीं है जितना इनके लेखन में मेरा सहयोग। धन-वैभव से मुझे कभी मोह नहीं रहा। मेरी तो हमेशा यही अभिलाषा रही कि ये अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के लेखक बनें । इसिलए अनेक बार आर्थिक संघर्षों में मैंने सहर्ष झेला है।"[2]

सचमुच प्रतिभा जी सच्चे मायने में उनकी सहधर्मि-णी और प्रेरक शक्ति रहीं हैं। जिन्दगी की कंटकाकीर्ण राहों में एक सच्चे दोस्त की भूमिका अदा की। परिवेश की अंधेरी घाटियों में अपनी प्रतिभा का दीपालोक प्रज्जवलित किया । नागर जी को साहित्य सघन के शिखर पर पहुँचाने का श्रेय, गौरव प्रतिभा जी को है। नागर जी के नाम भेजे गये एक पन्त में प्रतिभा जी की प्रेरणा किरण चमक उठी है – "पत्र पढ़कर मैं सोचती रही कि वास्तव में पति-पत्नी का सम्बन्ध उतना घनिष्ठ नहीं, जितना एक सच्चे मित्र का। मैं उस दिन की कल्पना करती हूँ , जब हम एक दूसरे का हाथ बनकर काम करेंगे और हर काम में तुम्हे मेरे बिना, मुझे तुम्हारे बिना अटक हो .... इस वर्ष तुम बत्तीसवें वर्ष में प्रवेश करोगें , मेरी शुभकामनायें हैं कि यह वर्ष तुम्हारी आशायें पूरी करें।"[3] प्रतिभा जी एक आदर्श गृहिणी ही नहीं, सक्रिय सामाजिक कार्यकर्ताओं के रूप में भी चर्चित रही है। डॉ0 रामविलास शर्मा जी ने उनके घर के वातावरण को पंचायती

---

1. डॉ0 आनन्दप्रकाश त्रिपाठी: अमृतलाल नागर के उपन्यास, आनन्द प्रकाशन, फैजाबाद, 1981 , प्रथम संस्करण, पृष्ठ-2
2. धर्मयुग, 20 अगस्त, 1972 , पृष्ठ-53
3. धर्मयुग, 9 नवम्बर, 1980 , पृष्ठ-27

कहा है और श्रीमती नागर को नागर जी के जीवन में अडिग शिला के समान बतलाया है।"[1]

नागर दम्पत्ति की सक्रियता, रूचियों एवं संस्कारों का प्रभाव इनके पुत्र, पुत्रियों एवं नाती-पोतों पर भी पूर्णरूपेण पड़ा है। इनके बड़े पुत्र कुमुद नागर आकाशवाणी दिल्ली में ड्रामा प्रोड्यूसर रंगकर्मी, नाटक एवं बाल-साहित्य के लेखक है। दूसरे पुत्र शरद नागर औषधि रसायन-शास्त्र में शोधकार्य करने के बावजूद शौकिया नाट्यकर्मी एवं रंगमंच समीक्षक है। पिता के साहित्यिक जीवन के प्रति आस्थावान शरद जी समर्पित भाव से उनके साहित्य सृजन हेतु सामग्री संकलन करने में लगे रहते हैं। ये "रंगभारती" नामक पत्रिका के संपादक भी है। नागर जी की ज्येष्ठ पुत्री श्रीमती अचला नागर आकाशवाणी, मथुरा की रेडियों नाटक लेखिका एवं कलाकार हैं। इन्होंने अनेक रेखाचित्र भी लिखे हैं। छोटी पुत्री आरती नागर भी एम0ए0 करने के उपरान्त रंगमंच एवं रेडियों नाट्य लेखिका के रूप में ख्याति अर्जित कर रही है। एक प्रतिभा सम्पन्न कलाकार पिता की सन्तान होने के कारण उनके व्यक्तित्व में कला प्रेम का मणिकांचन संयोग हो गया है। स्पष्टः नागरजी का सम्पूर्ण पारिवारिक वातावरण साहित्य और कला की एक प्रयोगशाला है, जिसमें इन कलाकारों की रंगबिरंगी कलाकृतियाँ अपना सौन्दर्य बिखेर रहीं है।

पिता की मृत्यु के उपरांत नागर जी को उचित शिक्षा का प्रबन्ध न हो पाने के कारण वे केवल इंटर तक ही पढ़ सके। सर्वप्रथम उन्होंने सन् 1935 में एक बीमा कम्पनी में डिस्पैचर के पद पर कार्य किया, परन्तु अपनी स्वतंत्र तथा उदात्त प्रकृति के कारण अफसर से न बन सकी और अठ्ठाहरवें दिन ही इस नौकरी से इस्तीफा दे दिया। इसके पश्चात् उन्होंने पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश किया। सन् 1934 में "यूथ्स यूनियन क्लब" चौक से पहली बार द्वैमासिक पत्रिका "सुनीति" का संपादन किया। इसके बाद सन् 1935-36 में "सिनेमा समाचार" नामक एक पाक्षिक पत्रिका का सपादन किया। सन् 1937 में उन्होंने साप्ताहिक "चकल्लस" नामक एक हास्य पत्रिका भी निकाली। "चकल्लस" अपने समय की एक लोकप्रिय पत्रिका थी। "हिन्दी टाइम्स" के भूतपूर्व संपादक स्व0 श्री नरोत्तम नागर भी उन दिनों नागर जी के साथ थे।[2] तत्कालीन राजनीतिक

---

1. नीर-क्षीर - डॉ0 रामविलास शर्मा - नागर जी का व्यक्तित्व, अगस्त, 1966, पृष्ठ-23
2. डॉ0 प्रकाशचन्द्र मिश्र: अमृतलाल नागर का उपन्यास साहित्य, साहित्य भारती,

परिस्थितियों की वजह से नागर जी को "चकल्लस" का प्रकाशन बंद कर देना पडा। अर्थाभाव एवं कागज की समस्या ही मूल कारण थी । सन् 1945 में नया साहित्य और सन् 1953 में मासिक पत्र "प्रसाद" का भी सम्पादन उन्होंने किया, किन्तु नागर जी के स्वतंत्र लेखन की ओर झुकने के कारण यह पत्रिका भी नहीं चल सकी । सन् 1940 में नागर जी भी फिल्म सिनेरियों लेखक के रूप में बम्बई चले गये । सिनेमा जगत में व्याप्त भ्रष्टाचार के कारण नागर जी का मन वहाँ से उचट गया। इस सम्बन्ध में उन्होंने अपनी मानसिक पीड़ा और वितृष्णा को व्यक्त करते हुए लिखा है – सन् 1940 में मेरे फिल्म क्षेत्र में प्रवेश करने का समय युगसंधि का था। पुरानी थिएट्रिकल कम्पनियों के अभिनेता, बाजारू गानेवालियाँ और लेखक मुंशीगण सेठों के मुसाहब थे। कहानियाँ , धूम- धड़ाके और मार–पीट को ही बना करती थी। भोंडापन और भोगविलास की धूम थी। कुछ स्टूडियोंज में सेठों ने अपने लिए विलास कक्ष भी बना रखे थे........ प्रेमचन्द जी निराश होकर लौट आये थे । उग्र जैसे तैसे निभाकर लौट आये थे। सुदर्शन अलबत्ता जमे हुए थे और उन दिनों बम्बई में ही थे। कवि पर प्रदीप जी ने नई–नई चमक पाई थी– पढ़े–लिखे सुसंस्कृत अभिनेताओं, टेक्नीशियनों और लेखकों की बढ़ती भीड़ के कारण पुराने लोगों में जलन और खुड़पेंच का माद्दा पैदा हो गया था।"[1]

फिल्म जगत की, अपनी रूचि के प्रतिकूल , घृणित स्थिति को देखकर नागर जी का रचनाकार मर्माहत हो उठा। अपनी तड़प एवं पीड़ा को व्यक्त करते हुए नागर जी कहते है– "मेरे समय से लेकर अब तक फिल्म व्यवसाय में कहानी की समझ रखने वाले लोग प्रायः नहीं के बराबर है । यह हमारे देश के फिल्म व्यवसाय का सबसे बड़ा दुर्भाग्य है। अभिनय की बारीकियों को समझने वाले बहुत कम है, और इसी का परिणाम है कि हमारे फिल्म, हमारे जीवन से दूर हो गये है। ...... गरीबों की समस्याओं, इतिहास, पुराण आदि सब बिटामिन फिल्मों में डाले जाते हैं, पर सब इस नुस्खे की भट्ठी पर सेंक–सेंक कर जला दिए जाते है । उनका सत् निकल जाता है। नतीजा यह हुआ

---

1 सीमान्त प्रहरी , अमृतलाल नागर अंक,. 15 अगस्त, 1966, पृष्ठ–11

कि फिल्म में कहानी कला अपना रसानुपात और संतुलन – यहाँ तक कि अपना रूप भी खो बैठती है । फिल्मों में गीत बनते है, स्टार बनते हैं, फकत कहानी नहीं बनती । हमें यह कदापि नहीं भूलना चाहिए कि चाहे उपन्यास हो या रंगमंच , रेडियों अथवा फिल्मी नाटक, सबका आधार कहानी है।[1]

फिल्म जगत बम्बई से सम्बन्ध विच्छेद करने के पश्चात् नागर जी स्वतंत्र साहित्य चिंतन एवं लेखन में प्रवृत्त हुए । किन्तु पत्नी के निधन (22 मई, 85) के बाद उन्होंने जो अकेलापन झेला, वह अन्तिम दिनों के उनके रचनात्मक अनुभव में भी बार-बार शामिल था। विगत कई वर्षों तक नागर जी उत्तर प्रदेश संस्थान के विभिन्न दयित्वों को संभालते हुए नयी साहित्यिक प्रतिभाओं को प्रोत्साहित करने का पुण्य कार्य करते रहे थे। नागर जी के कृतित्व को हिन्दी संसार ने अनेकों बार सम्मानित किया है। उन्हें "काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने 'बूँद और समुद्र' उपन्यास के लिए बटुक प्रसाद पुरस्कार, एवं सुधाकर रजत पदक से सम्मानित किया। 'सुहाग के नूपुर' के लिए उत्तर प्रदेश सरकार ने उन्हें प्रेमचन्द्र पुरस्कार देकर गौरवान्वित किया। 'अमृत और विष' पर नागर जी को सन् 1967 में साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला । इस सर्जनात्मक व्यक्तित्व की आत्मा 23 फरवरी 1990 शिवरात्रि के दिन परमात्मा में विलीन हो गयी । सम्पूर्ण साहित्य जगत् में रिक्तता छा गयी ।

अभिरूचियाँ

किसी भी मनुष्य के व्यक्तित्व की परख उसके अन्तस् और वाह्य रूपाकार द्वारा होती है । किसी कलाकार और सामान्य मनुष्य के व्यक्तित्व में आकाश-पाताल का अन्तर होता है। रूचियाँ मनुष्य के जीवन का अहम हिस्सा होती है। रूचियों का क्षेत्र भी पृथक पृथक होता है। नागर जी एक साहित्य कलाकार थे। वे केवल उपन्यासकार अथवा कहानी लेखक ही नहीं , वरन् इतिहास तथा पुरातत्व के भी मर्मज्ञ थे। इतिहास और पुरातत्व के अतिरिक्त संगीत और रंगमंच में उनकी पर्याप्त दिलचस्पी थी। गंगाप्रसाद मिश्र ने लिखा

---

1. सीमान्त प्रहरी, अमृतलाल नागर अंक, अगस्त, 1966, पृष्ठ- 12,13

है "साहित्य, संगीत, कला, इतिहास, पुरातत्व किसी भी विषय पर उनसे बात होती तो बडा आनन्द आता । अध्ययन तो उनका बड़ा विस्तृत था ही परन्तु उनके विचार पुस्तकीय ज्ञान तक सीमित न रहते थे। प्रत्येक विषय पर वह गम्भीर चिंतन-मनन करके अपनी राय बनाते थे ।"[1]

नागर जी में एक समाजशास्त्री और विचारक का रूप भी विद्यमान था। भांति-भांति के अनुभवों को एकत्र करना उन्हें प्रिय लगता था। उन्होंने वेश्याओं के जीवन की भी कुछ अंतरंग झाँकियाँ अपनी ये कोठेवालियाँ, पुस्तक में दी हैं, जो वस्तुतः वेश्याओं के लिए गये उनके इण्टरव्यू से संबंधित है । अपनी इन रूचियों के बारे में लिखते हुए वे स्वतः कहते थे – "लिखने-पढ़ने के समय तो बात ही न्यारी है, यों भी चाह बच्चों के साथ खेलूं या नाटकों की रिहर्सल कराऊँ , चाहे पुरातत्व की झोंक में टीले खण्डहर झाँकू या गली कूंचों में बड़ी-बूढ़ियों से, बूढ़ों – तजुर्बेकारों से इण्टरव्यू लेता घूमूँ, कमोवेश हर काम में अपना प्राण स्पर्श कराने का अब अभ्यस्त हो गया हूँ, इसी की मस्ती है, बदमस्ती तनिक भी नहीं ।"[2]

नागर जी की विविधमुखी रूचियाँ उनके व्यक्तित्व की दीप्त वर्तिकायें है। नागर जी ऊँचे , गौरवर्णी, तेजस्वी मगर सरल व्यक्ति थे- चेहरे में केवल आँखें ही आँखे है, एकदम घनी काली पुतलियाँ, इन आँखों में बस एक ही भाव छलकता है, ढाई आखर प्रेम वाला। घृणा, क्रोध, उदासी आदि के भाव उनके ओठें पर हैं। आँखे तटस्थ रहती है जब ओठों पर इन अस्थायी भावों की क्रीड़ा समाप्त हो जाती है, तब आँखे फिर मुखर हो उठती है ।"[3]

चश्मे में झाँकती उनकी आँखे असीम स्नेह और ममत्व से बोझिल थी । श्वेत खद्दर का कुर्ता, पायजामा और कभी धोती उनका प्रिय परिधान था। घर में सफेद धोती को लूँगी की तरह लपेट लेते थे। पैर में खड़ाऊँ , उनकी पवित्रता का आभास कराता है, सादा जीवन, उच्च विचार नागर जी का आदर्श था। तड़क-भड़क कपड़ों और भारी-

---

1. उत्तर प्रदेश , अमृतलाल नागर स्मृति अंक, अप्रैल, 1990, सूचना एंव जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश का प्रकाशन, पृष्ठ-31
2. नीर-क्षीर: अमृतलाल नागर अंक-पृष्ठ-5, अगस्त 1966
3. नीर-क्षीर: अमृतलाल नागर अंक, अगस्त, 1966, पृष्ठ-23

भरकम आभूषणों से उन्हें सख्त नफरत था। नागर जी के जीवन में एक संतुलन – लेखन परिवार और समाज के दायित्वों के बीच डॉ0 समर बहादुर सिंह ने लेख में लिखा है "उनकी सादगी, सहजता और स्नेह सभी पर जादू–सा डाल देता । उनकी याददाश्त गजब की थी, लगता जैसे चलते फिरते ज्ञान–कोष हों। उनकी बातें भी बड़ी लच्छेदार होती। जब बतियाते तो लगता जैसे कोई किस्सा सुना रहे हों। भाषा और भाव दोनों पर उनका अदभुत अधिकार था।"[1]

नागर जी को पान, भाँग और मिठाई बहुत प्रिय था। वे अपने साथ एक पान का डिब्बा अवश्य रखते थे। उनका चिंतन भांग की तरंग में विशेष रूप से स्फुटित होता है और वे रचनाप्रक्रिया में डूब जाते थे। वे रूस जाने पर भी भाँग का पाउडर बनवाकर साथ ले गये थे । नागर जी की रचनाओं में भांग प्रेमी पात्रों का रोचक वर्णन हुआ है। नागर जी का भांग प्रेम भगवान शिव के प्रति उनकी भक्ति, प्रबल आस्था, और विश्वास का परिचायक है। इसी आस्था को लेकर वे जीवन रण में संघर्ष करते रहते थे। उन्होंने लिखा भी है – "लिखने पढ़ने के समय तो बात ही न्यारी है, यों भी चाहे बच्चों के साथ खेलूँ या नाटकों का रिहर्सल कराऊँ , चाहे पुरातत्व की झोंक में टीले खडहर झाँकू। कमोवेश हर काम में अपना प्राण स्पर्श करने का अब अभ्यस्त हो गया हूँ। इसी की मस्ती है, बदमस्ती तनिक भी नहीं।"[2]

नागर जी को इतिहास से विशेष मोह था। भारतीय इतिहास में अवध के इतिहास को नई दृष्टि से नयी भूमि पर लाकर देखा है, ऐतिहासिक पौराणिक आकर्षण के कारण इन्होंने भारत को बहुत–बहुत पीछे जाकर देखा है और अतीतकालीन पृष्ठभूमि के आधुनिक रूप की जड़ों को खोज निकाला है । भारतीय संस्कृति के पुजारी होने के कारण ही इनके पास पुरातात्विक अवशेषों का दुलर्भ संग्रह है।

---

1. उत्तर प्रदेश , अमृतलाल नागर स्मृति अंक, अप्रैल 1990, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश का प्रकाशन, पृष्ठ–12
2. नीर–क्षीर, अमृतलाल नागर अंक , अगस्त, 1966, पृष्ठ–5

इनके घर का विशाल कक्ष अनुपम चित्रों, पुस्तकों पाषाणमूर्तियों के संकलन से सज्जित है। बारादरीनुमा इस विशाल कक्ष में प्रवेश करते ही प्रथम दृष्टि में यह एक अनुपम संग्रहालय ही प्रतीत होता है।[1]

नागर जी घुमक्कड़ , मनमौजी और मिलनसार प्रकृति के व्यक्ति थे, उनका घुमक्कड़पन उद्देश्यबद्ध रहा है। उन्होंने हर एक कण और हर पल को जिया है, भोगा है, अनुभवसंचित किया है। विभिन्न वर्गों , क्षेत्रों, जातियों और बोलियों के व्यक्तियों से मिलने–जुलने का उन्हें बेहद शौक रहा है। जीवन के बारीक से बारीक तंतु को ग्रहण कर मानवीय मनोवृतियों का ताना–बाना बुन दिया है। उन्होंने लिखा है – "विभिन्न वातावरणों को देखना, घूमना, भटकना, बहुश्रुत एवं बहुपठित होना भी मेरे बहुत काम आता है। यह मेरा अनुभवजन्य मत है कि मैदान मे लड़ने वाले सिपाही को चुस्त दुरूस्त रखने के लिए जिस प्रकार नित्य कवायद बहुत आवश्यक है। उसी प्रकार लेखक के लिए उपरोक्त अभ्यास भी नितांत आवश्यक है। केवल साहित्यिक वातावरण ही में रहने वाला कथालेखक मेरे विचार से घाटे में रहता है, उसे विविध वातावरणों से अपना सीधा सम्पर्क निस्संकोच स्थापित करना चाहिए।"[2]

नागर जी स्वभाव से स्वाभिमानी थे। सर्वेक्षण कार्यों एवं इण्टरव्यू के माध्यम से उन्होंने जीवन को बड़े निकट से देखा है। इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण उनकी ये कोठेवालियाँ, गदर के फूल, एकदा नैमिषारण्ये और नाच्यौ बहुत गोपाल में देखा जा सकता है । नाच्यौ बहुत गोपाल के निवेदन में नागर जी ने लिखा है – ढ़ाई तीन वर्ष जिस समस्या और उसके चरित्रों की तलाश में भटका, जगह–जगह इण्टरव्यू लेते हुए जिन मनोधाराओं में बहा, जिस चिंतन–प्रक्रिया के सहारे मुझे समवयस्क, और समानधर्मा लेखक पत्रकार श्री अंशधर शर्मा और विशेष रूप से श्रीमती निर्गुनिया मिली– वह सारी मनोलीला उपन्यास के अन्तिम वाक्य के साथ ही सिमट गयी ।"[3]

---

1. डॉ0 सुरेश वत्रा: अमृतलाल नागर: व्यक्तित्व, कृतित्व और सिद्धान्त, पृष्ठ–8
2. नया जीवन, मई–जून, 1962
3. अमृतलाल नागर: नाच्यौ बहुत गोपाल, पृष्ठ–7 निवेदन

नागर जी विनोद प्रिय थे। हास्य और व्यंग्य उनके साहित्य में रची बसी भावधारा है। किस्से कहानियाँ और गप्प सुनाना उनके शौक थे। वे गप्पों और किस्से के बादशाह थे। इसका प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष संकेत नागर जी के साहित्य में देखा जा सकता है। वास्तव में नागर जी का सहज और मुखर व्यक्तित्व सदाबहार था। उनमें आत्म प्रदर्शन की भावना लेशमात्र भी नहीं है। वे स्वयं भी लिखते है – "सब मिलाकर यूँ तो खुशरंग है पर अपने में बदरंग भी नजर आता हूँ। मैं पत्थर पर उकेरी गई ऐसी मूर्ति हूँ जो कहीं–कहीं अनगढ़ और टूट गई हो, ऐसी कि बुरी न लगे ......देखते ही किसी को भी विश्वास हो जाएगा कि आदमी भला और शरीफ है, लेकिन आइने के सामने ...... जो मुख, देखा आपना, मुझसे बुरा न कोय ।"[1]

अपने रूचि वैविध्य और मुक्तमना जैसी विशेषताओं के साथ ही नागर जी को संगीत और रंगमंच से भी विशेष लगाव था। इसके पीछे उनके पारिवारिक संदर्भ भी कार्यरत थे , और उनकी निजी रूचियाँ और वृत्तियाँ भी । लेखन कार्य के प्रति निष्ठा और रूचि के कारण ही नागर जी की रूचि पत्रकारिता की ओर भी थी यह इसी रूचि का परिणाम था कि उन्होंने अपने पत्रकार रूप को भी उन्मुक्त होने दिया था।.

नागर जी का अमिट व्यक्तित्व एक प्रतिभा सम्पन्न, ईमानदार, महत्वाकांक्षी, जिजीविषावादी, आस्थावादी और संघर्षों में पलने वाले कर्मनिष्ठ कलाकार का व्यक्तित्व था। वे एक प्रयोगधर्मा लेखक थे। गद्य की विविध विधाओं कहानी, उपन्यास और नाटक के क्षेत्र में उन्होंने अनेक प्रयोग किये थे । एक कुशल रगमंच निर्देशक के रूप में वे रेडियों–रूपकों और नाटकों का मंचन करवाने में पूर्ण सफल हुए थे। उनके व्यक्तित्व की उपर्युक्त विशेषता की धुरी थी उनकी कर्मनिष्ठा । उनकी आस्था और महत्वाकांक्षा उनके निम्नांकित कथन स स्पष्ट हो जाती है – "मैंने खुरदुरे सादा पत्थर को तराश–तराशकर अपनी जो जीवन–मूर्ति बनायी है, वह अपनी और आलोचकों की नजरों में काफी अच्छी ही रही है। उसे और भी सुन्दर बना सकता हूँ – केवल पढ़ी–लिखी बातों से नहीं, अब तो अपनी भी एक अनुभव ज्ञान सीढ़ी बन गयी है, जहाँ तक बनेगा, उस पर चढ़ता ही जाऊँगा।

---

1. नीर–क्षीर : अमृतलाल नागर अंक, पृष्ठ–5 अगस्त 1966

जब तक बनेगा। अपना दम बढ़ाता ही रहूँगा और जब दम ही न रहेगा, तब फिर चिन्ता कैसी? मन:तोष के लिए क्या यह सोचना उचित न होगा कि मेरी आकांक्षायें यदि दमदार हैं तो उसका परिचय लेकर आगे बढ़ने वाले दमदार लोग भी सामने आ जायेंगे । [1]

नागर जी की समस्त उपलब्धियाँ उनकी अपनी थी । उन्होंने बड़े संघर्ष के साथ साहित्य और समाज में अपने लिए महत्वपूर्ण जगह बनायी थी। इसलिए उनके व्यक्तित्व से स्वाभिमान की ज्योति फूटती थी। इस सम्बन्ध में उनका आत्मकथन द्रष्टव्य है– मैंने .आजीवन लेखनो ही की कमाई खाई है और उसके लिए राम और अपनी मेहनत को छोड़कर किसी का एहसानमंद नहीं हूँ। सन् 70 में मुझे पद्मश्री देने का प्रस्ताव भी आया था. जिसे मैंने सविनय नकार दिया।"[2]

आस्था, लगन और कर्मनिष्ठा को नागर जी ने प्रमुखता दी और इन सभी विशिष्टताओं ने उन्हें कथा–साहित्य–जगत में शीर्ष स्थान प्रदान किया। आज का विष–अमृतमय यथार्थ जीवन नागर जी के उपन्यासों में सजीव हो उठा है। हेमिंग्वे की निष्ठा, निराला की दृढ़ता, शरत् बाबू की संवेदनशीलता और प्रेमचन्द्र की मानवतावादी जीवन दृष्टि के समन्वित तत्वों से संघटित नागर जी का व्यक्तित्व सचमुच अप्रतिभा और हर किसी के लिए स्पृहणीय है ।

मनुष्य का व्यक्तित्व जीवन के असीमित तन्तुओं का संगुफन होता है। व्यक्ति की रूचियों, संस्कार, विवेक, लगन और प्रतिभा किसी एक निश्चित लक्ष्य का चुनाव करके उसकी सिद्धि में गतिशील हों, उसके व्यक्तित्व की यही दृढ़ता उसके विचारों, संस्कारोंद्व वातावरण एवं वाह्य रूप अनुभव को प्रभावित करती हैं। यही दृढ़ता उसके लक्ष्य में सहायक होती है और उसके जीवन की उपलब्धियों को सफलता तथा सार्थकता देती है। नागर जी की स्वच्छन्द प्रवृत्ति ने उन्हें जीवन को देखने , परखने और गाहण करने की क्षमता दी और उनकी संवेदनशील प्रतिभा ने उसे साहित्य के निकर्ष पर कस कर परिमार्जित कर समाज को वापिस लौटा दिया, इस लेखन प्रक्रिया को गतिमान करने में अन्त: प्रेरणायें और बर्हिप्रेरणा ये दोनों ही सहायक होती है।[3]

---

1. कादम्बिनी, नवम्बर, 1980, पृष्ठ– 57, 58
2. दस्तावेज, अंक–2, जनवरी 1979, पृष्ठ–11 पर प्रकाशित नागर जी का पत्र
3. डॉ0 सुदेश बत्रा : अमृतलाल नागर: व्यक्तित्व, कृतित्व और सिद्धान्त 1979, पृष्ठ–13

नागर जी बहुभाषाविद् थे। हिन्दी, गुजराती , मराठी, तमिल, अंग्रेजी और उर्दू पर उनका अधिकार था। उनकी मातृभाषा गुजराती थी, किन्तु अपने को अहिन्दीभाषी कहलाना उन्हें कतई पसन्द नहीं था। हिन्दी को भी वे मातृभाषा ही मानते थे और इसी भाव से उन्होंने उसे अपनी साहित्य–साधना की भाषा भी बनाया। गंगाप्रसाद मिश्र ने लिखा है– "नागर जी की सबसे बड़ी विशेषता उनकी आमफहम भाषा थी, जिसके कारण पाठकों के एक बहुसंख्य वर्ग तक उनकी पहुँच थी । इस टकसाली भाषा में क्षेत्रीय बोलियों की चाशनी वह मिलाते थे उससे न केवल रचनाओं की स्वाभाविकता बढ़ जाती थी, उनके पात्र अपने जीवन्त रूप में पाठक के सामने मूर्तिमान हो जाते थे।"[1]

व्यावहारिक जीवन में अत्यन्त मधुर और कोमल तथा सद्भावपूर्ण होते हुए भी नागर जी प्रकृति से स्पष्टवादी थे । वे निष्पक्षता के कायल थे, उनकी स्पष्टवादी प्रकृति, सामाजिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार पर प्रहार करते समय उनके उपन्यासों में कई स्थान पर अभिव्यक्त हुई है।

नागर जी चिर प्राचीन होते हुए भी चिर नवीन थे। वे एक ओर देश के गौरवमय अतीत की ओर झुकते थे और पूरी शक्ति के साथ पारम्परिक सांस्कृतिक मूल्यों का मंथन कर जीवन के लिए अपेक्षित रस ग्रहण करते थे तो दूसरी ओर उनकी तत्वभेदी दृष्टि आधुनिक वैज्ञानिक उपलब्धियों में जीवन के लिए सार्थक तत्व ढूँढ़ती थी। इस प्रकार वे परम्परा और आधुनिकता दोनों ही भूमियों पर अतिवादों का परित्याग करते हुए सामंजस्य का मार्ग प्रशस्त करते थे। उनके वैचारिक संतुलन का यही एक मात्र कारण था। उन्होंने लिखा भी है – "अहिंसाधर्मी हूँ। मार्क्सवादी साहित्य का भी गहरा प्रभाव है। उसने एक

---

1. गंगा प्रसाद मिश्र का निबंध : एक प्यार इंसान एक समर्पित साहित्यकार, उत्तर प्रदेश, अप्रैल, 1990, अमृतलाल नागर स्मृति अंक, पृष्ठ–31

जगह मेरे अहिंसा धर्म या कहूँ कि मानव धर्म को पाश्चात्य दृष्टि से परिपुष्ट किया है ।"[1]

परम्परा और आधुनिकता का यह विचित्र संगम नागर जी की राष्ट्रभावना, देश प्रेम और राष्ट्रीय चेतना तथा अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना को एक साथ पोषण देने में सक्षम है । उनके समग्र व्यक्तित्व को विश्लेषित करते हुए डॉ0 सत्यपाल चुघ कहते है – "जीवन संग्राम के जीवन्त योद्धा, उदार अलमस्त मानव रूढ़िमुक्त , शैव आस्तिक, घमक्कड़ बहुपठित, बहुबोली पारखी, बहुभाषाविज्ञ, जागरूक, इतिहासज्ञ, पुराणप्रेमी, पूर्वाग्रहमुक्त प्रगतिशील विचारक. अनुसंधित्सु, क्षेत्रीय शोधकार्य. अनुवादक, संधी सम्पादक, कुशल अभिलेता, सफल रंगमंच निर्देशक, प्रवीण सिनेरियों लेखक, अपूर्व शैलीकार, बालसाहित्य प्रणेता और असंख्य लेखों- निबन्धों संस्मरणों , रेडियों नाटकों, कहानियों तथा उपन्यासों के रचयिता आदि सब मिलाकर जो व्यक्ति बनता है, उसका नाम है – अमृतलाल नागर।"[2]

साहित्य–सृजन के प्रेरणा–स्रोत

किसी लेखक की सृजन की अवस्था किसी समाधि अवस्था से कम नहीं होती, ऐसी अवस्था को अनायास ही नहीं जाना जा सकता । वैसे रचना प्रक्रिया का आरम्भ बिन्दु है – सृजन प्रेरणा अथवा सृजनेच्छा। साहित्य, मन और परिवेश तीनों साहित्य–सृजनप्रक्रिया के अनिवार्य घटक हैं। साहित्य सृजन–सृजनप्रक्रिया के अनिवार्य घटक है । साहित्य सृजन अर्न्तः प्रेरणा से उद्‌भूत होता है। सृजनात्मक शक्ति सबमें होती है, किन्तु तीव्र संवेदनशीलता अभिव्यक्त होकर व्यक्ति को सृजनशील बना देती है। परिवेश का प्रभाव मन पट पड़ता है और भावों, विचारों का तीवब आलोड़न–विलोड़न लेखन के लिए प्रेरणा बन जाता है। यहिी सृजन–प्रक्रिया का मूल है ।

---

1. नीर–क्षीर, अमृतलाल नागर अंक, पृष्ठ–12, 1966
2. डॉ0 सत्यपाल चघु : आस्था के प्रहरी, पृष्ठ 9

नागर जी को साहित्य-सृजन के क्षेत्र में अवतरित कराने की प्रेरणा उनके पारिवारिक वातावरण अनेकानेक विद्वानों तथा साहित्य साधकों से मिली। इस सम्बन्ध में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका उनके पिता श्री राजाराम शर्मा की रही, जिसका कलाप्रेम, जीवन और व्यवसायगत प्रतिकूलताओं के मध्य भी विकास पाता रहा। नागर जी की अभिरूचि बाल्यकाल से ही पत्र-पत्रिकाओं में थी। सरस्वती, सप्तमी, गृहलक्ष्मी, हिन्दू-पंच आदि पत्रिकायें उन्हें अपने घर पर ही उपलब्ध हो जाती थी। नागर जी मिश्र बन्धुओं से भी बहुत प्रभावित थे । नागर जी को प्रारम्भिक दिनों में सर्वाधिक सम्बल देने वाले दो साहित्यकार रहे हैं - जयशंकर प्रसाद और शरत्चन्द्र । नगर जी को कथा साहित्य में आकर अनेक बिध प्रयोग करने की प्रेरणा पं० रूपनारायण से मिली । श्री शिवनाथ मिश्र ने हास्य व्यंग्य की ओर नागर जी में रूझान पैदा की। दुलारेलाल भार्गव और पं० श्यामविहारी मिश्र का अमित स्नेह उन्हें रचनात्मक दिशा में अग्रसर होने की लिए प्रेरित करता रहा ।[1] महाप्राण निराला के दुर्धर्ष प्रतिभासम्पन्न व्यक्तित्व ने नागर जी को साहित्य का जागरूक अन्वेषी बना दिया। साहित्यिक गोष्ठियों में समय-समय पर भाग लेना और विद्वानों से विचार-विमर्श करना उनकी साहित्यिक-अभिरूचि को बढ़ाने में सहायक हुआ। डॉ० रामविलास शर्मा उनके एक अभिन्न मित्र एवं साहित्य प्रेरक थे। प्रसाद जी, प्रेमचन्द्र जी और शरत् बाबू की प्रेरणा ने तो नागर जी को साहित्य साधना के शीर्ष तक पहुँचा दिया। प्रसाद जी के विषय में नागर जी की उक्ति उल्लेखनीय है - "प्रसाद जी से मेरा केवल बौद्धिक संबंध ही नहीं, हृदय का नाता भी जुड़ा है। महाकवि के चरणों में बैठकर मैंने साहित्य के संस्कार पाये हैं, दुनियादारी का व्यावहारिक ज्ञान भी ।"[2]

शरत् बाबू से प्रभावित होकर ही नागर जी ने बंगला भाषा सीखी। लेखन का मूल लक्ष्य बताते हुए शरत् जी न नागर जी से कहा था- "जो कुछ भी लिखो, वह अधिकतर तुम्हारे अपने अनुभवों के आधार पर हो, व्यर्थ की कल्पना के चक्कर में कभी न पड़ना।[3]

---

1. डॉ० आनन्दप्रकाश त्रिपाठी: अमृतलाल नागर के उपन्यास, 1981, पृष्ठ-17
2. अमृतलाल नागर: जिनके साथ जिया, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, 1973, पृष्ठ-11
3. अमृतलाल नागर , जिनके साथ जिया, पृष्ठ-16

शरत् बाबू के स्नेह ने और बंगला साहित्य के माधुर्य ने नागर जी के साहित्य को अधिक भावप्रवण बनाने में प्रेरणा की तरह कार्य किया। नागर जी ने इन साहित्य शिल्पियों के सुझावों, आदर्शो और उनकी साधना को अपना जीवन पाथेय बना लिया। वे सदैव सहज रहे और उन्होंने जीवन के हर पहलू को सहजता और सुगमता के साथ परखकर अपनी तत्वग्राहिणी दृष्टि से अपना बनाकर अपनी कृतियों में पिरो दिया। ज्यो–ज्यों उनकी साहित्य यात्रा में विभिन्न विद्वानों के चिन्तन और अनुभव का समावेश होता गया, त्यों–त्यों उनके अनुभव जगत का विस्तार होता गया और रचनाशीलता में निखार आता गया। उनके संस्मरण संग्रह, जिनके साथ जिया " शीर्षक से यह प्रमाणित होता है कि प्रसाद जी, शरत् बाबू सनेही जी, निराला जी, पं० रूपनारायण पाण्डेय, बेढब बनारसी, डॉ० रामविलास शर्मा, महादेवी वर्मा, पन्त, यशपाल, नरेन्द्र शर्मा, पं० नरोत्तम नागर, सोहन लाल द्विवेदी आदि इनके साहित्य जीवन मार्ग के प्रेरक और सहपथिक, सहयात्री रहे हैं, और उनका लेखक समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण की परिपक्वता पाकर अधिकाधिक निखरता रहा है।

साहित्यिक संघर्ष

अमृतलाल नागर का प्रारम्भिक साहित्यिक जीवन संघर्षशील था। लेखन के क्षेत्र में नये लेखक को जो कठिनाइयाँ झेलनी पड़ती है, उन्होंने उसे झेला है। कहानियाँ लिखने के बाद छपने की मुसीबत आती थी। उनका कथन था – "कहानियाँ लिखता , गुरूजनों से पास भी करा लेता, परन्तु जहाँ कहीं भी उन्हें छपने भेजता, वे गुम हो जाती थी। रचना भेजने के बाद मैं दौड़–दौड़कर पत्र–पत्रिकाओं के स्टाल पर आतुरता के साथ यह देखने जाता कि मेरी रचना छपी या नहीं। हर बार निराशा ही हाथ लगती । मुझे बड़ा दुख होता था। उसकी प्रतिक्रिया में कुछ महीनों तक मेरे जी में ऐसी सनक समायी रहती कि लिखता, सुधारता, सुनाता और फिर फाड़ डालता।"[1]

नागर जी ने अत्यधिक परिश्रम करके अपना स्थान साहित्य क्षेत्र में जमाया था. सन् 1933 ई० में उनकी प्रथम कहानी छपी और उसके पश्चात् अनेक पत्र–पत्रिकाओ

---

1. नीर–क्षीर, अमृतलाल नागर अंक, अगस्त, 1966, पृष्ठ–10

में छपती रही। नागर जी का प्रथम कहानी संग्रह "वाटिका " सन् 1935 में प्रकाशित हुआ। मुंशी प्रेमचन्द ने इस कहानी संग्रह पर अपना अभिमत व्यक्त करते हुए लिखा था– "यह तो गद्य काव्य की सी चीजें हैं। मैं रियलिस्टिक कहानियाँ चाहता हूँ, जिनका आधार जीवन हो जिनसे जीवन पर कुछ प्रकाश पड सके । मैंने वाटिका के दो चार फूल सूँघे। अच्छी खुशबू है।"[1]

यह सुझाव नागर जी के लिए प्रेरक सिद्ध हुआ और उन्होंने प्रेमचंद की यथार्थमूलक साहित्यिक दृष्टि को अपनी रचनाधर्मिता से संयोजित कर, न केवल प्रेमचन्द–परम्परा को महत्वपूर्ण कड़ी बन गये, वरन् उनके सच्चे उत्तराधिकारी भी सिद्ध हुए।

नागर जी ने सन् 1935 से 1939 के मध्य अनेक देशी विदेशी हिन्दीतर साहित्य की कृतियों का अध्ययन किया और जिन कृतियों ने उनकी संवेदना को गहराई से छुआ, उनका अनुवाद भी कर डाला । अनुवाद कार्य के पीछे उनकी मनोभूमि ज्ञानार्जन की रही, न कि अर्थप्राप्ति को । इस संबंध में उनका कथन है – "यह अनुवाद कार्य मैंने छापने की नीयत से नहीं किया , अनुवाद करते हुए मुझे उपयुक्त हिन्दी शब्दों की खोज करनी पड़ती थी, इससे मेरा शब्दभण्डार बढ़ा । वाक्यों का गठन भी पहले से अधिक निखरा।"[2]

समाज को राजनीति से जोड़कर देखना वर्तमान युग का आग्रह है। आज का समाज राजनीति की धुरी पर घिसट रहा है। चुनाव और सत्ता की राजनीति ने भारतीय जन चेतना को बुरी तरह रौंद डाला है। राजनीति से नागर जी को सदैव असहमति रही है। स्वतंत्र भारत की राजनीति ही नहीं, स्वतंत्रता पूर्व भारत की राजनीति का विघटित स्वरूप उन्हें सदैव खटकता रहा है । यह नागर जी की परिवेशगत प्रतिबद्धता ही है कि उन्होंने अपने उपन्यासों में राजनीति को वर्णित किया, अन्यथा वे राजनीति विवर्णाओ की उपेक्षा भी कर सकते थे। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में मनुष्य की मूल प्रकृति उसको पीड़ा,

---

1. नीर–क्षीर, अमृतलाल नागर अंक, 1966, 15 अगस्त, सम्मितियाँ एवं सन्देश
2. नीर–क्षीर, अमृतलाल नागर अक, पृष्ठ–11

सामाजिक चेतना, वर्तमानकालिक सत्यों और मूल्यों की कसौटी पर कसी गई है। उनके ऐतिहासिक उपन्यास, शतरंज के मोहरें में स्वतंत्रतापूर्व भारतीय समाज की पीड़ा और संघर्ष का जो अंकन हुआ है , उससे यहाँ की जनता के स्वातंत्र्य प्रेम के साथ नागर जी की मनोभूमि का भी परिचय मिलता है।

नागर जी के कथासाहित्य में स्वाधीन भारत के हृदय की धड़कन सुनाई पड़ती है। अमृत और विष में स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय समाज का चित्र अंकित है। यदि नागर जी आजादी के पूर्व के त्याग, सेवा, प्रेम संगठन से प्रभावित होते हैं तो स्वतंत्रता के पश्चात् सत्ता की चुनावी राजनीति, बढ़ते स्वार्थ और पारिवारिक विघटन को देखकर उनका संवेदनशील मन पीड़ा का अनुभव करता है। बूँद और समुद्र में स्वातंत्र्योत्तर भारत के प्रथम चुनाव की परिस्थितियों का चित्रण बहुत सही है। "इतना बड़ा राजनीतिक आन्दोलन और त्याग करने के बजाय मखमली कुर्सियों और मातहतो से हुजूर सरकार सुनने की लालच में बैठक रहें।"[1]

नागर जी की अर्न्तदृष्टि बहुत पीछे जाकर मौलिक सुलझाव खोजने की सामर्थ्य रखती है। उन्होंने पौराणिक और मध्ययुगीन भारतीय संस्कृति और सभ्यता पर दृष्टि डाली, उसका अवगाहन किया, और एक सांस्कृतिक आन्दोलन की पृष्टिभूमि पर आधारित एकदा नैमिषारण्ये जैसे अगाध ज्ञान सम्पदावाले उपन्यास की संरचना की मानस के हंस में अनेकानेक किंवदेतियो पर स्थित गोस्वामी तुलसीदास के चरित्र को एक सर्वथा मौलिक नई स्थापना दी। 'मानस का हंस' तुलसीदास के चरित्र की मानवतावादी आस्थाशील अभिव्यंजना है।

नागर जी का साहित्य खुली सुलझी दृष्टि ओर एक निश्चित उद्देश्य की ओर अग्रसर रहा है – उनके प्रायः सभी उपन्यास और कहानियाँ जीवन के यथार्थ पहलुओं का अंकन करती है। मानवता उनकी अटूट आस्था है। वे साम्प्रदायिकता और संकीर्णता से अछूते रहकर मानव की मूलभूत विशेषताओं और जीवन जीने और भोगने के सत्य का दर्शन कराना चाहते थे । वे पुराने और नये के बीच की सशक्त कड़ी थे। प्राचीन संस्कृति

---

1. बूँद और समुद्र : अमृतलाल नागर, पृष्ठ– 438

के उदात्त गुणों को वे वैज्ञानिक चिंतन में प्रतिष्ठित करना चाहते थे। एक ओर "महाकाल" के परिप्रेक्ष्य में विकट जठराग्नि लपलपाती है तो उसी के बीज रूप कारणों में सामाजिक समस्याओं का ज्वलंत रूप प्रस्तुत करती है । नागर जी नागरिक सभ्यता के मध्यवर्गीय समाज के कुशल चितेरे थे। समाज के परिप्रेक्ष्य में व्यक्ति का उत्कर्ष ही उनका लक्ष्य और ध्येय था।

नागर जी प्रयोगधर्मा लेखक थे – उपन्यासों, कहानियों के क्षेत्र में तो उन्होंने प्रयोग किये ही हैं, किंतु अभिनय और रंगमंच पर किये गये प्रयोग उनके कलाकार व्यक्तित्व को व्यक्त करते हैं। ड्रामा प्रोड्यूसर के पद पर कार्य करते हुए उन्होंने अनेक रेडियों रूपकों, नाटकों का मंचन और निर्देशन किया था। जीवन के सत् पक्ष के प्रति वे सदा से ही कर्मठ और परिश्रमी थे। इसी सत्याग्रह से प्रेरित होकर उन्होंने वेश्याओं के जीवन को बहुत निकट से देखा और सहानुभूति पूर्वक उनकी पीड़ा को समझा था। वेश्याओं के जीवन पर आधारित सामग्री उन्होंने ये कोठेवालियाँ नामक पुस्तक में संजोई है।

नागर जी के जीवन का मुख्य लक्ष्य था– आनंद और शांति, किंतु निष्क्रियता से उन्हें सख्त नफरत थी। उत्फुल्ल हास्य उनके व्यक्तित्व का मुख्य अंश था। नागर जी की महत्वाकांक्षायें जीवन के प्रति निष्ठा को व्यक्त करती है। वे उन कतिपय लेखकों में से थे, जो शुरू में चमक कर बुझ नहीं गए, अपितु उनकी ज्योति जीवन के अनुभवों के स्नेह से रससिक्त होकर काल के साथ–साथ प्रज्वलित हुई है। साहित्य के प्रति पूर्ण समर्पण भाव ही उन्हें सच्चा सन्तोष देता था और अध्ययन–मनन ही उनके जीवन का ध्येय था। "मुझे अपनी किताबों की आमदनी, पत्र–पत्रिकाओं से फुटकर रचनाओं का आया हुआ पैसा जैसा गर्व भरा सन्तोष देता है, वैसा और कोई धन नहीं । सच पूछों तो एक ही साध है – "लिखते –लिखते कोई ऐसी चीज कलम से निकल जाये कि मैं सदा के लिए इन्सान के दिल में जगह पा लूँ। इस लगन का रंग गुलाबी या हल्का लाल नहीं, बल्कि गहरा लाल है – खून का रंग ।"[1] उनका साहित्य उनके जीवन की आस्था को बुलन्द आवाज में मुखरित करता है। निराला जी की दृढ़ता और शरत् जी की संवेदनात्मक भावुकता का समन्वय उन्हें निरन्तर अन्धकार से जूझने की प्रेरणा देता है।

---

1. नीर–क्षीर– अगस्त 1966, पृष्ठ–6

नागर जी का मनोभूमि भारत की सांस्कृतिक गरिमा से अभिभूत होकर प्राचीनता की स्वर्णभूमि पर अभिनव समाजिक जीवन और राष्ट्रीय जागरण की अखण्ड ज्योति जलाकर रामराज्य की कल्पना साकार करने के लिए सचेष्ट दिखाई बड़ती है। उदाहरण के रूप में – एकदा नैमिषारण्ये मानस का हंस और खंजन नयन को लिया जा सकता है । एकदा नैमिबारण्ये , पौराणिक फलक पर आधारित सांस्कृतिक उपन्यास है। इसमें भावात्मक एकता का अलख जगाया गया है। प्राचीन भारतीय संस्कृति तथा अन्य सुदूरवर्ती संस्कृतियों के महासम्मिलन की मूलवर्ती चेतना में भारत के पुनर्जागरण का संदेश निहित है । मानस का हंस की पृष्ठभूमि में मुगलकालीन समाज एवं संस्कृति का जीवन्त प्रस्तुतीकरण है । खंजननयन सूरदास जी के अंधकाराछन्न जीवन का प्रकाशमय वृत्त है। उसकी मूल चेतना में एक व्यापक संदेश का भास्वर प्रकाश दीप्तिमान है। नागर जी को जिन्दगी की पकड़ जितनी गहरी और वैविध्यपूर्ण है, शायद ही किसी समकालीन उपन्यासकार की हो। उन्होंने अतीत की भूमि पर जिस समाज का बिम्ब खड़ा किया है, निस्सन्देह वह एक युगपुरूष की युगदृष्टि का प्रतिफल है । वे अपने युग के अन्वेषक और चिन्तक ही नहीं, अतीत से रस ग्रहण करके वर्तमान को सम्पुष्ट करना चाहते थे । उनका साहित्य अतीत और वर्तमान का संगमस्थल है, जहाँ से भावी युग–निर्माण की सम्भावना का मार्ग खुलता है।

समग्र रूप से वे एक सम्पूर्ण मानव थे, संवेदनशील कलाकर थे, और कलाकार कभी भी पुराना नहीं होता । पूर्ण समर्पित भाव से भारतीय संस्कारयुक्त आत्मा को उन्होंने मानवता का जामा पहनाया है । उनके कृतित्व में तत्कालीन परिवेश गहरे रंगों में उभरा हुआ है। डॉ0 सुरेश बत्रा के शब्दों में – "नागर एक व्यक्ति नहीं, एक पीढ़ी नहीं, अपितु अतीत के बोध से सित्त, वर्तमान की गंगा का जल पीता पिलाता हुआ भावी का नियामक है।[1]

समकालीन प्रभाव :

किसी भी व्यक्ति को अपने समय की परिस्थितियाँ प्रभावित करती है, चाहे वह व्यक्ति विशेष हो या सामान्य । नागर जी के व्यक्तित्व एवं साहित्य को देखने से विदित होता है कि वे इसके अपवाद नहों है। नागर जी के साथ विशिष्ट बात यह है कि वे सजग राजनीतिक थे, फलस्वरूप उनके साहित्य में तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और वैचारिक परिवेश प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में प्रतिबिम्बित हुआ है।

---

1. डॉ0 सुदेश बत्रा– अमृतलाल नागरः व्यक्तित्व कृतित्व और सिद्धान्त, पृष्ठ–43

<u>राजनैतिक परिवेश</u>

राजनीति समाज का एक अंग है। समाज को राजनीति से जोड़कर देखना वर्तमान युग का आग्रह है। आज राजनीति को चुनाव और सत्ता के लोभ ने घेर लिया है। नागर जी मुख्य रूप से सामाजिक उपन्यासकार है, किन्तु राजनीतिक स्थिति से उत्पन्न बिसंगतियाँ जीवन स्तर के परिवर्तनों को प्रभावित करती है । नागर जी के आधुनिक जीवन की संक्रमणशील परिस्थितियों, परिवर्तनों एवं मान्यताओं की क्रिया– प्रतिक्रियाओं को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के साथ शब्दबद्ध किया है। सन् 1857 से 1918 का युग भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का प्रथम चरण कहा जा सकता है। उस समय स्वतंत्रता के लिए आकुल भारतीय जनता अंग्रेजी शासन और उसके अत्याचारों से मुक्ति पाने के लिए क्रांति के मार्ग पर अग्रसर हो चुकी थी। आन्दोलन का मूल उद्देश्य ब्रिट्रिशों की सत्ता को समाप्त करना था। फलतः देश के विभिन्न वर्गों ने संगठित होकर सन् 1857 ई0 का प्रथम स्वातंत्र्य संग्राम छेड़ दिया अनेक वीरों ने देश को स्वाधीन करने के लिए प्राणों की बलि दी। मंगल पाण्डे, महारानी लक्ष्मीबाई, तात्याँ टोपे, नानाराव पेशवा, बेगम हजजरत महल आदि की गाथायें जनजीवन की चेतना और प्ररणा का आधार बनीं । नागर जी ने अवध प्रान्त के स्वातन्त्र्य वीरों को श्रद्धांजति देने के लिए उनकी गाथाओं के इतिहास को "गदर के फूल" नामक पुस्तक में संकलित किया है ।

भारत में 28 दिसम्बर सन् 1885 ई0 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई ताकि भारतीय जनता और शासन के बीच सामंजस्य पूर्ण सम्बन्ध स्थापित किये जा सके। किन्तु कांग्रेस की स्थाना के साथ भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास प्रारम्भ होता है। आरम्भ में भारतीय शिक्षा, संस्कृति, वैचारिक साधनों के प्रचार के कारण अंग्रेजी शासन के प्रति निष्ठावान थे, उनकी शासन प्रणाली के प्रति यहाँ के नवाबों, नरेशो में भी विश्वास था। "शतरंज के मोहरें" के नवाव नसीसद्दीन कहता है – "अबकी किसी जिन्दगी में अगर मै बादशाह बना तो इंग्लैण्ड की तरह पार्लियामेण्ट जरूर बनाऊँगा । एक आदमी की बादशाहत असूलन गलत है । .... अगरी हमारे यहाँ भी पार्लियामेण्ट होती तो मुझसे या दीगर बादशाहों से अक्सर जो जुल्म हो जाते है, वे न हो पाते।"[1]

---

1. अमृतलाल नागर: शतरंज के मोहरें, पृष्ठ– 397

अंग्रेजों ने भारत में अपनी नीतियों के समर्थन के लिए नबाबों, सामान्तों, जमींदारों को प्रलोभन देकर अपना समर्थक बना लिया। वे भारत की जनता का शेषण कर घन हड़पना चाहते थे । अंग्रेजों की प्रत्येक कूटनीति और दमनचक्र को सहते हुए देश का प्रत्येक व्यक्ति स्वराज्य प्राप्ति की कामना कर रहा था –"अरे एक बार सुराज हुई जाने देओं, तब हम गरीबों के दिन भी बहुरेंगे।"[1] इन शब्दों में स्वतंत्रता पूर्व मनुष्य की आशाओं का क्षीण आलोक और स्वतंत्रता पश्चात् वर्तमान स्थिति पर कठोर व्यंग्य झलकता है।

सन् 1942 में द्वितीय विश्वयुद्ध की विभीषिका ने समूचे विश्व को आंतकित कर दिया था। अमेरिका ने जापान के हिरोशिमा और नागासाकी नगरों पर एटमबम बरसा कर मानवता का संहार किया। नागर जी ने अपनी "एटमबम" कहानी में उस संहार का एक मार्मिक दृश्य अंकित किया है । द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् अंग्रेजों ने भारतीयों को जो अधिकार दने के वायदे किये थे, वे उन्हें टाल रहे थे। उनकी कूटनीति हिन्दू–मुसलमानों में फूट–डालने की थी और उसमें वे सफल हुए । इससे धार्मिक साम्प्रदायिकता बढ़ रही थी। सन् 1947 ई0 में भारत में गवर्नर जनरल के पद पर लार्ड माउण्ट बेटन की नियुक्ति हुई और भारत के विभाजन के साथ 15 अगस्त सन् 1947 को भारत को पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त हुई। देश–विभाजन के कारण हिन्दू–मुस्लिम विद्वेष हत्याकांड के रूप में दोनों देशों पर छा गया। गाँधी जी ने हिंदू मुस्लिम एकता के लिए अथक प्रयास किये, अनशन किये, किन्तु धर्मान्धता के कारण 30 जनवरी 1948 को उनकी हत्या कर दी गई। **"एक था गाँधी"** नामक कहानी में नागर जी ने गांधी जी के सिद्धान्तों को प्रतीक रूप में स्पष्ट किया है।

नागर जी के कथा–साहित्य में स्वाधीन भारत के हृदय की धड़कन सुनाई पड़ती है। अमृत और विष में स्वतंत्रता पश्चात् के आधुनिक भारतीय समाज का खाका खींचा गया है। यदि नागर जी आजादी से पूर्व के त्याग, सेवा, प्रेम, संगठन से प्रभावित होते हैं तो स्वतंत्रता–पश्चात् सत्ता की चुनावी राजनीति, बढ़ते–स्वार्थ और पारिवारिक विघटन को देखकर उनका संवेदनशील मन पीड़ा का अनुभव करता है। "अमृत और विषय" उपन्यास

---

1. अमृतलाल नागर: महाकाल, पृष्ठ – 148

में लेखक अरविन्द शंकर के शब्दों में – "सन् 42 में हमलोग जेल क्या गए कि हमारा सारा नैतिके बल और सत्य के लिए हमारा साहस, संगठन और कर्मशूरता ही अंग्रेजों के पहले "भारत छोड़ो" नारे को मानकर चली गयी । आजादी के बाद आया फूट, असंगठन, विलास, व्याभिचार लूट, डाके, खून और काले बाजार का जमाना।"[1]

देश की वर्तमान राजनीति महज कुर्सी और व्यक्ति केन्द्रित राजनीति बन चुकी है। उम्मीदवारों के षड्यन्त्र, खर्चीले आयोजन एवं विविध प्रयोग जनता का मत प्राप्त करने के बड़े–बड़े नारे व्यापक मूल्यहीनता के प्रतीक है। नागर जी ने अपने सामाजिक उपन्यासों में राजनीतिक–विषयक कुचक्रों का पर्दाफाश किया है। "बूंद और समुद्र" का महिपाल राजनीतिक संस्थाओं की वास्तविकता को स्पष्ट करता है – "जिस व्यक्ति की पीड़ाओं का सामूहिक रूप में दर्शन कर ये राजनीतिक सिद्धान्त बने है, उसकी अनुभूति, उसकी तड़प अब हमारे मन से फिसल गयी है। हमारी नजर अब सिर्फ पोलिटिकल रह रही है, सिर्फ पोलिटिकल कोलू के बैल की तरह आदत के कारण चक्कर काटते चले जा रहे हैं, काम कुछ भी नहीं रहा ।"[2]

इस प्रकार नागर जी ने 19वीं और 20वीं सदी के स्वतंत्रता पूर्व एवं स्वतंत्रता पश्चात् के भारतीय राजनीतिक जीवन का गुण–दोष भरा चित्र अंकित किया है।

सामाजिक परिवेश

व्यक्ति समाज की महत्वपूर्ण इकाई है । सामज वह खुला रंगमंच है जहाँ व्यक्ति सामाजिक परम्पराओं का निर्वाह करता हुआ –"भोग" का कर्म, कर्म का "भोग" यही जड़–चेतन का आनंद मानकर आत्मबल पूर्वक अपने समूचे जीवन का अभिनय करता है। साहित्यकार भी समाज में रहकर ही अनुभूतियाँ ग्रहण करता है। बुद्धिजीवी लेखक व्यक्ति और समाज के द्वन्द्व को युग परिवेशानुसार मान्यता देता है साथ ही अपनी विचारण का प्रतिवादन भी करता है। नागर जी ने सामाजिक परिप्रेक्ष्य में व्यक्ति की सत्ता स्वीकार की है और सामाजिक

---

1. अमृतलाल नागर: अमृत और विष, पृष्ठ–119
2. अमृतलाल नागर : बूँद और समुद्र, पृष्ठ–133

यथार्थ के सूक्ष्म तंतुओं से साहित्य का सृजन किया है। नागर जी का साहित्य भारतीय स्वतंत्रता के संक्रान्तिकाल का सजीव चित्र है।

नागर जी ने "शतरंज के मोहरे" में नवाबी शासनब की अन्तरग झाँकिया चित्रित की है। 19वीं सदी के भारतीय समाज की झाँकी "अमृत और विषय" की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करती है । हिन्दू–मुसलमानों का पारस्परिक भाईचारा शेख फकीर मुहम्मद और लाला राधेलाल के निश्छल भ्रातृभाव में दिखाई देता है। अपने–अपने धर्मो के अनुयायी होते हुए भी व्यापारिक और पारिवारिक सम्बन्धों में कोई भेद नहीं । उन्नीसवीं सदी के समाप्त होते–हाते अंग्रेजों का प्रभाव समाज पर पड़ने लगा था। अंग्रेजों और अंग्रेजी शिक्षा के प्रति दबा ढका आकर्षण और घृणा साथ ही साथ पनप रही थी । दूरदर्शी राधेलाल अपनी व्यापारिक उन्नति के लिए अंग्रेजी सभ्यता और उनके तौर तरीकों को अपना रहे थे। हिसाब किताब करने के लिए एक मेम को नौकर रखा और स्वयं भी अंग्रेजी सीखने लगे, किन्तु सन्त प्रकृति शेख जी सदैव अंग्रेजी छाया से दूर रहे । इस कौम के आगाड़ी झुक के सलाम करना ही सीखा था और वो भी नादिर शादिर ही । सदा बचताई रया इस कौम से।"[1]

अंग्रेजी शिक्षा के साथ–साथ पुरानी रूढ़ियाँ भी टूटने लगी थीं। पुरानी रूढ़ियों, परम्पराओं का विरोध करने के लिए अनेक समाजसुधारक कार्यरत हो गए। स्त्री शिक्षा का भी प्रचार होने लगा। नई चेतना वाले लोग स्त्रियों को अंग्रेजी शिक्षा दिलाने के लिए ईसाई शिक्षिकाओं की नियुक्ति करने लगे । किन्तु उनके प्रति अछूत भावना भी थी । उनके स्पर्श किए हुए स्थानों, कपड़ों आदि को धोकर स्नान करके ही अन्य कार्य किये जा सकते थे।[2]

"सेठ बाँकेमल" में एक शती के पहले के भारत का यथार्थ दिग्दर्शन है। सेठ जी एवं चौबे जी के व्यापारिक दांव पेचों के चमत्कार, पहलवानी के कौतूहलपूर्ण कारनामें, हिन्दू–मुस्लिम दंगे में दोनों और के दंगाइयों पर तटस्थ प्रहार, जुएबाजी में अमीरी फकीरी और बुढ़ापे को तपंगबाजी के किस्से जहाँ एक रोचक वातावरण उत्पन्न करते हैं , वहीं उस समय समाज में प्रचलित प्रतिक्रियाओं एवं जनसाधारण की रूचियों का का भी पता चलता

---

1. अमृतलाल नागर: अमृत और विष, पृष्ठ–13
2. अमृतलाल नागर, अमृत और विष, पृष्ठ–48

है, नये युग की परिवर्तनशीलता का सहज और प्रकृत रूप सेठ बाँकेमल की इस व्यंग्योक्ति में मिलता है। "अब तो जमानाई बदल गया सुसरा। आजकल की पढ़ी-लिखी लौडियां हमारी धौंस थोड़े ही माने है । तो बात यह "भैयो" कि वह साला बाइस्कोप चला है "सनीमा" जिसमें साले में वेई रोज बात बताई जाये । ऐरो साले ऐरे गैरे खुसकैट के साथ आँख लड़ा ली और माँ बाप भला चाने वाले मना करे हैं तो बिनों की छाती पै सवार हो जाये हैं सुसरी।"[1]
पुरानी नैतिकताओं के टूटने के स्वर नागर जी की अनेक कहानियों में भी सुनाई देते है - **"धर्म संकट", "सती का दूसरा ब्याह", सिकन्दर हार गया"**, आदि कहानियों में पति-पत्नी के सम्बन्धों की सार्थकता और निरर्थकता के औचित्य को स्पष्ट किया गया है । **"मोती की सात चलनियाँ"** में स्वातन्त्र्योत्तर टूटता हुआ जाति भेद हिन्दू-मुस्लिम प्रम विवाह के रूप में चित्रित हुआ है। पुरानी पीढ़ी के कठिन विरोध के बावजूद नयी पीढ़ी ने इसका स्वागत किया। "बंदिनी" में नारी की करूण स्थिति का चित्रण है। पति द्वारा प्रताड़ित पत्नी आत्मनिर्भर होकर समान में यश प्राप्त कर सकती है । **"माँ, बाप और बच्चे** में आधुनिक शिक्षित माता पिता की दायित्वहीनता और खोखली सामाजिक प्रतिष्ठा पर व्यंग्य किया है। नागर जी ने वेश्याओं की समस्याओं, स्थितियों और "वेश्याउन्मूलन के बाद उनकी नशाओं का चित्रण भी सामाजिक परिप्रेक्ष्य में किया है। सामन्तीयुग में वेश्याओं का चलन आम बात थी। स्वतंत्रता के उपरान्त "वेश्याचलन" कम हो गया था और बाद में सरकार ने इनका उन्मूलन अभियान चलाया। नागर जी ने ये कोठेवालियाँ में वेश्याओं के इतिहास और उनकी स्थितियों के विवरण दिये है। शतरंज के मोहरें और सुहाग के नुपूर मे वेश्याओं की समस्याओं का चित्रण किया है। हाजी कुल्फीवाला कहानी में वेश्याओं में शिक्षा का प्रचार और सम्मान द्वारा उन्हें स्वीकार कर लिये जाने की प्रेरणा चित्रित हुई है ।

"बूँद और समुद्र" के मध्यवर्ग की धार्मिक आस्थायें "अमृत और विष में यथार्थ से टकराकर बिखरी है । धर्म की आस्था के विपरीत स्वर "दो आस्थायें नामक कहानी की दो पीढ़ियों के संघर्ष में चित्रित हुए है । धार्मिक आडम्बरों का व्यंग्योत्मक रूप "बंगाली वैष्णव" और "मरघट के कुत्तें" "जन्तर मन्तर" नामक कहानियों में अंकित किया गया है।

---

1. अमृतलाल नागर, सेठ बाँकेमल, पृष्ठ-105

धर्म के नाम पर स्वार्थ और अत्याचारों का अमानवीय चित्रण महाकाल में हुआ है। भारत की प्राचीन संस्कृति एक धर्मप्राण देश की संस्कृति है। प्राचीन भारत में धर्म की विशालता उसकी भावात्मक एकता का रूप, विभिन्न धर्मो के संघर्ष और मान्यतायें, धर्म से प्रेरित देश की राजनीति और समाज का रूप "एकदानैमिषारण्ये" उपन्यास में दृष्टव्य है। मध्ययुगीन मुगल शासनकाल में भारतीय समाज और धर्मों के आडम्बर और विघटन एवं स्वार्थान्ध प्रवृत्तियों की पृष्ठभूमि में गोस्वामी तुलसीदास की धार्मिक आस्था का स्वरूप रूप "मानस का हंस" में चित्रित हुआ है ।

नागर जी का कथा साहित्य सामाजिक विषमताओं, परिवर्तनों और मध्यवर्गीय समाज की विविध वृत्तियों का हास्य–व्यंग्य युक्त यथार्थ एवं सजीव चित्रण प्रस्तुत करता है।

<u>सांस्कृतिक परिवेश</u>

संस्कृति की आधारशिला पुरातन होती है । संस्कृति किसी भी देश को जीवंत और सतत् प्रवहमान बनाये रखने में सहायक होती है । भारतीय सांस्कृतिक परम्परा अनेकानेक परिवर्तनों, विदेशी आक्रमणों, विदेशी संस्कृतियों के मिश्रण के बावजूद मूल रूप में आदर्श गुणों की ही पोषक है। नागर जी का साहित्य समस्त नवीनता को वैज्ञानिक दृष्टि से अपनाकर भी भारतीय सांस्कृतिक गरिमा से आप्लावित है । "बूँद और समुद्र" संस्कृति के तत्वों को संजोने वाला विशिष्ट उपन्यास है । भारतीय समाज के जनमानस में लोकगीत सामान्य जीवन की अनुभूतियों के प्रतिबिम्ब है । लोकगीतों में साधारण मनुष्य मात्र मनोरंजन देखता है, जबकि "बूँद और समुद्र" के महिपाल की कलाकार दृष्टि क्रांति लाने वालों को पहले अपनी परम्पराओं का संग्रह तो कर लेना चाहिए फिर उन्हें समझकर उनके अच्छे–बुरे पन को छाँटना होगा ।"[1]

नागर जी का उपन्यास "सुहाग के नूपुर" सामाजिक समस्या से गुंथा होने पर भी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर अवलम्बित है । प्राचीन भारत की परम्परा कलाप्रिय रही है। सामंती सभ्यता ने इसको प्रश्रय दिया, इसको मान सम्मान और गौरव दिया और साथ ही एक विशेष वर्ग वेश्या वर्ग, इस कला का पूर्णरूपेण अधिकारी बन गया । सुहाग के नूपुर

---

1. बूँद और समुद्र : पृष्ठ – 415

में "संगीत नृत्य कला के उसी पुरस्कृत रूप के दर्शन होते हैं। नर्तकी माधवी को राज–पुरस्कार प्राप्त होता है और वह नगर के बड़े–बड़े सेठों, रईसजादों के आकर्षण का केन्द्र बनती है। "अमृत और विष" – वर्तमान आधुनिक चेतना का चित्रण है जहाँ साहित्यिक अनुभूति प्रखर है। मानव के अन्तर्मन का मंथन ही सबसे बड़ी कलात्मक अभिरूचि है "अनुभूति चाहे अभाव की हो या भाव की चरमस्थिति छूते ही लेखक को सृजनात्मक स्फुरण मिल जाता है, सुख और दुख दोनों ही स्थितियाँ अपने चरम बिन्दु पर पहुँचकर उसे अपने लिए चुनौती सी लगने लगती है ।

कलाकार की संवदेनशीलता युग – वातावरण के परिवर्तनों के साथ नये संदर्भ पाती है । प्रेम और सौन्दर्य का चरम आकर्षण निर्विकार नहीं रह गया है । "प्रेम की स्थिति बहुत ऊँची है, पर आजकल उसे स्वीकार कौन करता है। यह विद्रोहों और मानसिक विस्फोटों का युग है । आज हर पुराने कोहनूर का भाव घआया जा रहा है। तब प्रेम को ही उसके सर्वोच्च आसन कसे क्यों न गिराया जाए ।"[1]

'एकदानैमिषारण्ये' पौराणिक फलक पर चित्रित एक सांस्कृतिक उपाख्यान है । राष्ट्रीय एकता का संदेश ही इस उपन्यास का प्रमुख उद्देश्य है। भारतीय संस्कृति का अति प्राचीन रूप एवं अन्य सुदूर संस्कृतियों से समन्वय तथा उन मिश्र संस्कृतियों का मूल एक्य प्रतिपादन द्वारा भारत के पुनर्जागरण का संदेह है । "मानस का हंस" ऐतिहासिक मुगलकालीन पृष्ठभूमि पर आधारित कला और साहित्य का गौरवपूर्ण आख्यान है। वस्तुतः तुलसी साहित्य भारत की संस्कृति की ही पुर्नप्रतिष्ठा है । तुलसी का साहित्य हर युग के लिए प्रेरणादायक है । नागर जी वस्तुतः प्राचीन भूमि पर नव सामाजिक जागरण का संदेश देने के लिए ही अतीतोन्मुख हुए है । "समाज संगठनकर्ता की हैसियत से सभी को कुछ न कुछ व्यावहारिक समझौते भी करने पड़ते है। तुलसी और हमारे समय में गांधी जी ने भी वर्णाश्रमियों से कुछ समझौते किये पर उनके बावजूद इनकी जनवादी दृष्टिकोण्बा स्व्पशट है। तुलसी ने वर्णाश्रम धर्म का पोषण भले किया हो, पर संसकारहीनों को बहुत लताड़ा

---

1. अमृत और विष – पृष्ठ = 395

है तुलसी का जीवन–संघर्ष, विद्रोह और समर्पण से भरा है। इस दृष्टि से वह अब भी प्रेरणादायक है।"[1]

<u>आर्थिक परिवेश</u>

नागर जी का साहित्य बीसवीं शदी के भारतीय समाज के जीवन स्तर का लेखा जोखा प्रस्तुत करता है । भारत के मानचित्र में इस शताब्दी में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं । अंग्रेजों के शासन के कारण भारतीय जन जीवन बहुत शीघ्रताण से बदला है, प्रभावित हुआ है । ब्रिट्रिश शासन से पूर्व भारत में धनधान्य की कमी न थी । यहाँ के उद्योग–धंधे, शिल्प आदि बहुत उन्नत थे और भारत के व्यापारिक संबंध दूर – दूर के देशों से थे । भारतीय व्यापार और समृद्धि का चित्रण नागर जी ने सुदूर भारतीय वातावरण में "सुहाग के नुपूर" से किया है । विदेशी आक्रमणों और लूट–मार के बावजूद मुगल काल में भी भारतीय धन सम्पदा पर्याप्त थी । भारत में व्यापार के लिए अंग्रेजों ने यहाँ की समृद्धि देखी और भारतीयों के पारस्परिक ईर्ष्या द्वेष और विलामिता से लाभ उठाकर शासन तंत्र हथिया लिया। नागर जी ने नवावों की शोषणवृत्ति और अंग्रेजों के अत्याचारों के वर्णन "शतरंज के मोहरे" में दिये है – "हिन्दुस्तानी रिआया को तबाह करने का हक उस मुल्क के चूहों तक को हासिल है।"[2]

वैज्ञानिक साधनों रेल आदि के प्रसार से व्यापार विस्तृत क्षेत्र के लिए सुगम हो गया । पूँजी एवं विदेशी व्यापार की सुविधा के लिए बैंकों की स्थापना होने लगी । "अमृत और विष" में तत्कालीन व्यापारिक नीति और जनता पर उसके प्रभाव को स्पष्ट किया गया है – जमाना बड़ा बुरा आय लगा हैगा। सरकार ने पात्साल से आमदनी में भी टिक्कस बाँध दिया हैगा । ससुरी लूट की भी हद होती है। अपनी बिलायत को सोने की लंका बनाये हैगे। अमीर यों मरे और गरीब ..... क्या कहैं रूपैं में से भी चाँदी खींचकर मिलावट कर दी, पर भाव वहीं रखा । नतीजा ई भया कि चाँदी ससुरी रूपै तोले से नीचे गिर गयी

---

1. अमृतलाल नागर: मानस का हंस – आमुख
2. अमृतलाल नागर: शतरंज के मोहरे, पृष्ठ– 356

है । छोटे मझले सौदागर दुकानदार टैं बोल गये हैं बिचारे । उनका धन्धा तो कुछ सोने पैं नहीं, चाँदी पैं ही होत रहा न । और जब रूपै का माल दस ग्यारह आने का ही रह गया, तो बताओं कोई आदमी नये धन्धे में अपना रूपैया कैसे फँसाये।"[1] अंग्रेजों की शासन नीति के कारण मध्यवर्ग का जन्म हुआ, जो महत्वाकांक्षाओं में बंधकर अंग्रेजों की नीति को मौन होकर स्वीकारता था। इसके साथ ही पूँजीवादी वर्ग का शोषण बढ़ गया।

स्वतंत्रता के साथ ही नेताओं की शासन व्यवस्था और स्वार्थी वृत्तियो के कारण जनजीवन को आर्थिक संकटों से जूझना पड रहा है - "यह मँहगाई तो दिन-दिन बढ़ती जा रही है। लगता है कि असलियत में सारी शासन व्यवस्था ही जन चेतना से दूर होती चली जा रही है और वह भी हठीले समाजवादी जवाहर लाल नेहरू के राज में। लगता है यह मिश्रित अर्थ व्यवस्था ही सारी बुराइयों की जड़ है।[2] पूँजीवालों को अधिक सुविधा, औद्योगिक विकास के लिए छूट बैंकों का राष्ट्रीयकरण अधिकाधिक वस्तुओं का निर्यात आदि सरकारी नीतियाँ देश की अर्थ व्यवस्था को सुधारने के लिए बनायी जाती है । किन्तु काला धन, मुनाफाखोरी आज भारतीयों के संस्कारों में बस गये हैं। बूँद और समुद्र का महिपाल सामाजिक रूढ़ियों और महत्वाकांक्षाओं से त्रस्त होकर आर्थिक अभावों को दूर करने के लिए चोरी करता है और चोटी खुलने पर आत्महत्या कर लेता है।

'अमृत और विष' उपन्यास के लेखक अरविन्द शंकर का समस्त जीवन त्याग और आदर्श से पूर्ण है किन्तु आर्थिक अभावों से जूझत हुए एक मध्यवर्गीय व्यक्ति के जीवन को पूरी सजीवता के साथ प्रतिबिम्बित होता है । उमेश आई.ए.एस. होकर भी रिश्वहों के जाल में फंसकर आत्महत्या कर लेता है । भारतीय अर्थव्यवस्था की अनेक कमियों के कारण जनजीवन की उपयुक्त उन्नति नहीं हो पा रही है । बेरोजगारी आज अभिशाप बनती जा रही है, इसी के कारण सामाजिक अपराध बढ़ते है अथवा व्यक्ति निराश होकर अनेकानेक उपायों के जाल में फँसा रहता है ।

---

1. अमृतलाल नागरः अमृत और विष, पृष्ठ-23
2. अमृत और विष- पृष्ठ- 485

समग्र रूप से नागर जी ने अपने समय में देश में होने वाले आर्थिक विकास के सभी पहलुओं को देखा है और चित्रित किया है। आज भारत जिस आर्थिक संकट से गुजर रहा है उसका आरम्भ अंग्रेजी शासन नीतियों के निर्धारण और उनके परिणाम स्वरूप स्वतंत्र भारत की नूतन स्थापना में आने वाली कठिनाइयों को उन्होंने गहराई से अनुभव किया है। अतः कहा जा सकता है कि नागर जी का कथा साहित्य समय का दर्पण, समाज का प्रतिबिम्ब है। उनका साहित्य भारतीय सामाजिक जीवन के विविध रंगों को दिग्दर्शित करता है।

कथा–सृजन : स्वरूप एव सवेदना –

साहित्य मे उपन्यास सामाजिक अनुभूतियो के छोटे–छोटे टुकडो का समन्वित समग्र रूप है। किसी भी देश की सस्कृति, राष्ट्रीयता, सामाजिक गतिविधियॉं, राजनीतिक प्रभाव, समाज की समृद्धि और मनुष्य के अस्तित्व की चेतना उपन्यास मे समाहित हो जाती है । एक विशाल फलक पर घटनाओ की व्यापक वर्णनात्मकता, देश का इतिवृत्तात्मक इतिहास, पात्रो के वशानुक्रम, वैयक्तिक चरित्र–चित्रण की बारीकियॉं उपन्यासकार बडे धैर्य से, समृद्ध ज्ञानकोश से विवेचित करता है। औपन्यासिकता के अनिवार्य गुण है कलात्मक रागात्मकता और रोचकता, जिनके बिना सामाजिक तथ्य उपन्यास नही बन सकते है। जीवन के अतीत, वर्तमान और भविष्य की आशाओ की भावभूमि ग्रहण करने के कारण ही उपन्यास को गद्य–साहित्य का "महाकाव्य" कहा गया है ।

नागर जी केवल उपन्यासकार ही नही थे , बल्कि वे एक श्रेष्ठ कहानीकार भी थे। वे कथा तत्व के प्रति अधिक ममत्वपूर्ण है, अनुभूति की आर्द्रता के प्रति उनका सम्मान कम है। नागर जी का कहानी–साहित्य उनके औपन्यासिक यथार्थ, व्यग्य–विनोद और सास्कृतिक लगाव का एक सशक्त प्रतिमानबनकरसामने आयाहै।अपने समस्त कहानी– लेखन मे नागर जी क्रमशः कहानी की आत्मा की ओर कथ्य और शिल्पगत अनेकानेक प्रयोगो के साथ–साथ चितन की व्याख्या उपन्यास के विकास और नूतन स्वरूप को प्रकट करती है । कथा साहित्य के सर्जको ने उपन्यास और कहानी मे जिस जीवन दृष्टि और प्रायोगिक सबंध भूमिका को प्रस्तुत किया है, वह एक अहमियत रखती है। प्रत्येक कथाकार की अपनी दृष्टि होती है। नागर जी की भी अपनी दृष्टि है, अपनी प्रस्तुति है जो उनके कथा–साहित्य मे मिलती है। डॉ0 सुदेश बत्रा ने लिखा है – "अमृतलाल नागर एक प्रतिभाशाली और प्रबुद्ध सर्जक है। फलतः उनकी कृतियो मे करवट बदलते और सिसकते भारत के समाज, इतिहास और सस्कृति की तस्वीरे उजागर होती चली गई है। कथ्य की सजगता, शिल्प की नवीनता और अनुभव की प्रौढता ने उन्हे जीवन के बारीक से बारीक रेशो को पकडने की गहरी अन्तर्दृष्टि दी है।"[1]

---

1 डॉ0 सुदेश बत्रा : अमृतलाल नागर . व्यक्तित्व, कृतित्व सिद्धान्त, पृष्ठ–53 पचशील प्रकाशन, जयपुर, 1979

नागर जी को कहानी लेखन की प्रेरणा प्रेमचन्द जी द्वारा मिली। प्रमचन्द की यथार्थवादी मानवीय आस्थावादी दृष्टि का आत्मसात कर नागर जी ने बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध को, भोगे और झेले हुए जीवन को आत्मसात कर नागर जी ने अपने उपन्यासों में उतार दिया। स्वतंत्रता के साथ ही साथ आधुनिक चेतना का एक नया दौर हिन्दी साहित्य में दिखाई देने लगा। पारस्परिक मूल्यों का विघटन, पुरानी मान्यताओं की अस्वीकृति और व्यक्ति के अन्तर और वाह्य का सामंजस्य तथा भारतीय संस्कृति विचारधारा पर पाश्चात्य प्रभाव की जागृति ने साहित्यकारों को कहीं अधिक सचेतन किया है। समाज के सजग, व्यक्ति के रूप में नागर जी को प्रत्येक प्रवृत्ति को हवा ने स्पर्श किया, किन्तु अपने में पूरी तरह डुबाया नहीं । फलतः उनकी सामाजिक चेतना अलग से दिखाई दती है। आधुनिकता की मांग को व्यक्ति और समाज दोनों के पृथक् अस्तित्व और समन्वित रूप में उन्होंने स्वीकार किया था। पुराने मूल्यों पर प्रश्नचिन्ह लगाते हुए वे युग के साथ तेजी से चले थे, किन्तु पथभ्रष्ट नहीं हुए थे, दिग्भ्रमित नहीं हुए थे। आधुनिक चेतना नागर जी को केवल आज के सामज को ही देखने को प्रेरित नहीं करती । अपितु वे उसका उत्स इतिहास और पुराण में भी खोजते हैं। अमृतलाल नागर न केवल वर्तमान के चितेरे थे, बल्कि इतिहास को समेटते हुए उनकी दृष्टि कवि शिरोमणि तुलसीदास के काव्य में घुली हुई उनके जीवन के पेय्य की अंतरंगता को भी औपन्यासिक शिल्प में ढाल सकी है।[1]

नागर जी के कथा–साहित्य में समाज, संस्कृति, इतिहास–दर्शन और मानव–जीवन के अनेक पहलू भी समाहित है। यहीं कारण है कि उनके उपन्यास एक समाजशास्त्री का सामाजिक अध्ययन, इतिहासकार का इतिहास जगत् और दार्शनिक का चिन्तनलोक प्रस्तुत करते हैं। वे सामाजिक स्थितियों के निरूपक भी थे और इतिहास की नींव पर खड़े समकालीन जीवन की वह इमारत भी थे जो मानवीय अनुभवों के ईंट गारे से बनाई गई थी। नागर जी का औपन्यासिक सृजन सामाजिक संदर्भों का पार्श्ववर्ती है ।

नागर जी का साहित्यिक व्यक्तित्व बहुमुखी है। पर एक उपन्यासकार के रूप में वे अधिक चर्चित हैं। उन्होंने 1943 में अपना प्रथम उपन्यास 'महाकाल' लिखा था तथा, जीवन पर्यन्त

---

1 डॉ0 सुरेश बत्राः अमृतलाल नागरः व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त, पृष्ठ–54

वे उपन्यास–सृजन में सक्रिय रहे । बूँद और समुद्र, सुहाग के नूपुर, अमृत और विष, मानस के हंस और नाच्यौ बहुत गोपाल तो उनकी प्रसिद्धि के स्थायी स्तम्भ हैं।

औपन्यासिक कृतियाँ – नागर जी द्वारा रचित प्रकाशित उपन्यास निम्नांकित है – महाकाल (1947) सेठ बाँकेमल (1955), बूँद और समुद्र (1956) शतरंज के मोहरे (1958) सुहाग के नूपुर (1960), अमृत और विषय (1966), सात घूँघट वाला मुखड़ा (1968), एकदा–नैमिषारण्ये (1972), मानस का हंस (1972), नाच्यौ बहुत गोपाल (1978), खंजन–नयन, (1981), बिखरे–तिनके (1982), अग्निगर्भा (1983), करवट (1985), और पीढ़ियाँ (1990) है । इन औपन्यासिक कृतियों के अतिरिक्त नागर जी ने बजरंगी नौरंगी (1972), बजरंगी पहलवान (1969), बजरंगी स्मगलरों के फन्दे में (1972), शीर्षक तीन बाल–उपन्यासों की रचना की है। मेरा शोध विषय नागर जी के कथा साहित्य से सम्बद्ध है, अतः कहानी सृजन का उल्लेख भी अनिवार्य है। किन्तु सबसे पहले मैं उपन्यासों का सामान्य आंकलन प्रस्तुत कर रही हूँ ।

महाकाल

बंगाल के भीषण अकाल का यथार्थ, प्रामाणिक, तथा जीवंत चित्र प्रस्तुत करने वाला उपन्यास "महाकाल" है, जो सन् 1947 ई0 में नागर जी ने लिखा है । "डॉ0 सुरेश सिन्हा ने लिखा है – "महाकाल (1947) बंगाल के दुर्भिक्ष पर लिखा गया नागर जी का प्रथम उपन्यास है।"[1] इस उपन्यास के नवीन संस्करण का नाम नागर जी ने "**भूख**" रखा था। इस शीर्षक परिवर्तन से उसी कथावस्तु को एक विशाल, शाश्वत समस्याफलक मिल गया है। "महाकाल" उपन्यास इतिहास प्रसिद्ध घटना पर आधारित है। उसका दारूण और भयंकर रूप संवेदनशील कलाकार को मथ गया है। अकाल की विषम परिस्थिति में मजदूर, किसान, दलित वर्ग रोटी के लिए अपना ईमान–धर्म ताक पर रखने के लिए विवश था, दूसरी तरफ पूँजीपतियों ने चावल इकठ्ठा करके गोदामों में बन्द रखा, ऊँचे भाव पर बचने

---

1. डॉ0 सुरेश सिन्हा– हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ– 236

के लिए। बाजार में अनाज की कमी और महँगाई के कारण साधारण जनता भूख से पागल हो गयी थी। नागर जी ने लिखा है – "बंगाल के महाकाल को मैंने अपनी आँखों से देखा है। उन दिनों सियालदह रेलवे स्टेशन भूखमरों से भरा पडा था। जब कभी उन भूखमरों का स्मरण करता हूँ तो आत्मा कराह उठती है। दृश्य इतना "वीभत्स था कि घर आने पर भोजन की इच्छा नहीं होती थी । मुझे अन्न से घृणा हो गयी थी, परन्तु समय के साथ दृश्य की प्रभावात्मकता क्षीण होने लगी और अवसर पाकर "महाकाल" के रूप में फूट पड़ी ।"[1]

नागर जी ने इस उपन्यास की कथावस्तु का केन्द्र बंगाल के छोटे से गांव मोहनपुर को बनाया है, जो पूरे बंगाल के अन्य सभी गांवों का प्रतिनिधित्व करता है। इस गांव का "दयाल" जमींदार, ताल्लुकेदार जमीदारों का तथा गांव का बनिया "मोनाई", व्यापारियों का प्रतिनिधित्व करता दिखाई पड़ता है। दूसरी तरफ इस उपन्यास में पाँचूगोपाल मुखर्जी इस गांव के ऐंग्लों बंगाली स्कूल का हेड मास्टर है। पाँचू का भरा पूरा लम्बा परिवार आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न है किन्तु उसके सामने भी अन्न की समस्या आ खड़ी होती है। पाँचू का परिवार निर्भीकता और आत्मविश्वास के साथ इस संकट को झेलने की कोशिश करता है, किन्तु अकाल के कारण नष्टप्राय हो जाता है। अपने परिवार की स्थिति के साथ ही अकाल से दम तोड़ते हुए प्राणियों का आर्तनाद, लाशों पर मँडराती हुई गिद्धों चीलों की भीड़ मानवीय मूल्यों . आदर्शों तथा नैतिक भावनाओं का विघटन– ये स्थितियाँ पाँचू को निराश कर देती है। एक ईमानदार शिक्षक होने के नाते अब तक संजोये गये उसके सारे आदर्शवादी संस्कार यथार्थ की कटुता से टकराकर चूर–चूर हो जाते हैं। भूख मनुष्य की सबसे बड़ी दुर्बलता है। पेट की ज्वाला शांत करने के लिए इसी भूख से उत्पन्न अनैतिक एवं अमानवीय समस्याओं को व्यापक धरातल दिया गया है। यहाँ एक अकाल की दारूण समस्या को समय की श्रृंखला में नहीं बाँधा गया है, वरन् उसे मनुष्य के सुख–भोग एवं जीवन को जीने की सामान्य शाश्वत समस्या का रूप दिया गया है। पाँचू अपने परिवार की चिन्ता के कारण चोरी करने को विवश

---

1 आज, रविवार विशेषांक , 19 अगस्त, 1979

हो जाता है और वह मात्र दस सेर चावल के लिए मोनाई के हाथों स्कूल के डेस्क बेच देता है। उसका आदर्शवादी मन उसे धिक्कारता है, किन्तु मोनाई और जमींदार दमाल जैसे लोगों के स्वार्थ को चरम पराकाष्ठा देखकर वह इस सामाजिक वैमनस्य और अपनी कायरता पर खीझ उठता है। "खुदी के लिए सारी दुनिया तबाह हुई जा रही है, लेकिन यह खुदी है क्या? और क्यों है? अपने अस्तित्व की चेतना को मनुष्य सर्वव्यापी और सामूहिक रूप में क्यों नहीं देखता ?"[1] पाँचू की यह चिन्तनधारा उसकी सामाजिक भावना की परिचायक तो है ही, उपन्यासकार की सामाजिक चिन्ता का भी स्पष्टीकरण करती है।

महाकाल में व्यक्ति की पीड़ा समूह की पीडा हो गयी है, एक समूचे वर्ग की पीड़ा है। अकाल के एक से बढ़कर एक भयानक दृश्य मनुष्य की भीषण पशुता के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं, जिन्हें देखकर पाँचू की आत्मा काँप उठती है। महाजन, जमींदार, सरकारी अफसर तथा शासन–सत्ता के हाथों गरीब जनता के शोषण को देखक पाँचू की चितन शक्ति कुंठित हो जाती है। जमींदार तथा मोनाई की स्वार्थ लिप्सा उसके मन को अकाल्पनीय घृणा से भर देती है । भूख मानव को किस सीमा तक अनैतिक, अज्ञानी और पशु बना सकती है, उसका चित्रण शिबू के रूप में दिखाई देता है। जो अपनी पत्नी को सबके सामने बेआवरू करता है और फिर से मुठ्ठी चावल के लिए उसे वेश्या बनने पर मजबूर करता है। यहीं युग–युगों से पीड़ित, दमित नारी की करूण वेदना साकार हो उठी है। नागर जी ने नारी के करूण क्रंदन को चित्रित कर दिया है, उसका कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं, वह पुरूष वर्ग की भूख मिटाने का एक साधन मात्र है। हिन्दू धर्म अपने वेदशास्त्रों की दुहाई देकर भी नारी को दासी रूप से ऊपर न उठा सका, तब वह विद्रोहिणी बनकर सामने आई। शिबू की पत्नी अपने पति के प्रति भय मुक्त होकर उसे तमाचा मारती है। यह तमाचा न केवल पुरूषों के नृशंस अत्याचारों से उत्पन्न घृणा का प्रतीक है, अपितु स्त्री जाति के स्वातंत्र्य कामी व्यक्तित्व का दिग्दर्शक भी है, और उनकी स्वच्छन्द मनोवृत्ति, स्वावलम्बी जीवन दृष्टि का निरूपक भी है। "महाकाल" के लेख ने अकाल की द्रावक करूण स्थितियों से पात्रों के आँसू ही नहीं गिराये, उनके विचारों को उत्तेजित कर उपयोगी चिंतन भी कराया है, जिससे इस उपन्यास में भावों के साथ विचारों, मार्मिकता के साथ मर्म का भी समन्वय हो गया है।[2]

---

1 महाकाल : अमृतलाल नागर, पृष्ठ– 164

2. डॉ0 सत्यपाल चुघ– आस्था के प्रहरी, पृष्ठ–18

इस उपन्यास का लेखन कार्य नागर जी ने एक इतिहासकार के रूप में ही नहीं, बल्कि एक सवेदनशील साहित्यकार के रूप में किया है। नागर जी ने समाजशास्त्री की भांति दुर्भिक्ष के सामाजिक, राजनीतिक कारणों को भी परखकर कथा को अधिक सार्थक और सोद्देश्य बनाकर प्रस्तुत किया है।

लेखक ने कथा के उद्देश्य को उपन्यास के समापन में पाँचू के कथन में व्यक्त किया है – यह उद्देश्य कथन– "इसे बचाने के लिए हम तुम जियेंगे" लेखक की आस्था का सूचक है। अतः हम कह सकते है कि "महाकाल" नागरजीकी प्रथम औपन्यासिक रचना होते हुए उपन्यास के सभी तत्वों से युक्त है।

<u>सेठ बाँकेमल</u>

सन् 1955 में लिखित "सेठ बाँकेमल" नागर जी का दूसरा प्रमुख उपन्यास है। छोटे–छोटे रोचक हास्य व्यंग्य मिश्रित प्रसंगो को उद्भावना ही इसे औपन्यासिक शिल्प का रूप प्रदान करती है। "सेठ बाँकेमल" 112 पृष्ठों का एक लघु उपन्यास है। लेखक द्वारा प्रयुक्त रोचक प्रसंगो का सम्बन्ध सेठ बाँकेमल एवं उनके मित्र पारसनाथ चौबे से है। सेठ बाँकेमल अपनी दुकान पर बैठकर अपने दिवंगत अभिन्न मित्र चौबे जी के साथ गुजारी हुई. जिन्दगी के किस्से अपने भतीजे "चौबे जी के पुत्र" को सुनाते चलते है। लेखक ने श्रोता रूप में सुनकर इन कथाओं को आत्मकथात्मक रूप में शब्द वह किया है।

इन कथाओं की कुल संख्या सोलह है जो विभिन्न शीर्षकों में विन्यस्त हैं – बम्बई फौक्स, दिल्ली का धावा, गोकुल की गोपियाँ , चौबे जी ने लंगोटा कसा, भतीजे का पैसा ले भागा, राजा साहब की मक्कारी, सुभाष बाबू भाग गए, पंचायतराज, डांग्डर मूंगाराम, लय डज यूनीवरसैल, बायन नम्बर, साज्हौं बास्साय ने कलेजा कूटा, कृष्ण जी मुहम्मद बने. पाँच का दाँव, जोसे जवानी, तीर–तलवार की आखका मासूकी । इन्हीं किस्से–कहानियों के व्यंगात्मक नाटकीय प्रवाह में उपन्यास की कथा विकास पाती है। इन कहानियों में विषय–वैविध्य है. जिसके कारण उपन्यास में कौतूहल और रोचकता का पर्याप्त समावेश हो गया है। डॉ0 रामविलास शर्मा के शब्दों में "वे (नागर जी) हास्य रस के जाने माने लेखक हैं। हास्य के लिए वे आस–पास के सामाजिक जीवन से आलम्बन ही नहीं चुनते, पौराणिक

गाथाओं और भटियारिनों के किस्से कहानियों का भी सहारा लेते है।"[1]

राजेन्द्र यादव ने नागर जी की हास्य व्यग्य क्षमता की समानता प्रख्यात रूसी कथाकार चेखव से की है। सामन्तवाद की सिमटती समाप्त प्राय संस्कृति, भाषा , बोली और समग्रतः वह जीवन, नागर जी के कथाकार का प्रिय विषय रहा है। उसका अध्ययन उन्होंने बड़ी लगन और फुरसत से किया है, बड़े स्नेह और चाव से उसकी बातें सुनी हैं। नागर जी को मैं इसीलिए भारत का अद्वितीय हास्य लेखकमानता हूँ कि वे कभी हास्यास्पद परिस्थितियाँ नहीं गढ़ते । उनका हास्य एक विशेष संस्कृति और समाज में पली मानसिकता और मनोविज्ञान की वह मजबूरी है जिस पर हम हँसते हैं। लेखक को हमारे हँसने पर कोई आपत्ति नहीं है, लेकिन वह मजबूरी से सहानुभूति रखता है, इसीलिए खुद नहीं हँसता। चेखव से जहाँ नागर जी की बहुत सी बातें मिलती हैं, वहाँ हास्य का यह तरीका भी मिलता है।"[2]

उपन्यास में दो ही मुख्य चरित्र है – सेठ बाँकेमल और चौबे जी। ये दोनों ही चरित्र परस्पर मिल–जुलकर सामन्तवादी व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करते है। सेठ बाँकेमल के चारित्रिक गठन की सबसे पहली विशेषता उसके नाम की सार्थकता है । एक अतीतजीवी सामाजिक और सांस्कृतिक परम्पराओं के विविध रेखाचित्रों को हास्य और व्यंग्य का पुट देकर उपन्यास का रूप प्रदान किया है। "बाँकेमल" तो सचमुच ही अद्वितीय चरित्र है जो हँसते–हँसते अपने युग की प्रतिक्रियावादी और प्रगतिशील दोनों धाराओं का दिग्दर्शन कराता है। लोक जीवन का सजीव चित्रण ही उपन्यास की विशेषता है। उपन्यासकार ने नित्य प्रति के जीवन में होने वाली बातचीत, रीतिरस्म, परम्परा और लोक–विश्वासों का चित्रण कर मूक जीवन को मुखर और अभिव्यक्त किया है। इस उपन्यास में नागर जी ने आगरा की ठेठ खड़ी बोली मिश्रित व्रज भाषा का प्रयोग किया है , उनकी भाषा जीवन्त और यथार्थ से परिपूर्ण है तथा आंचलिकता से आच्छादित है ।

---

1. डॉ0 रामविलास शर्मा : आस्था और सौन्दर्य, पृष्ठ–133 किताब महल, इलाहाबाद, 1961
2. विवेक के रंग सं0 – देवीशंकर अवस्थी– दो आस्थायें शीर्षक लेख– राजेन्द्र यादव, पृष्ठ–258, ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी – 1965

<u>बूँद और समुद्र</u>

"बूँद और समुद्र" (1956) नागर जी का तीसरा महत्वपूर्ण उपन्यास है इसकी भावभूमि, सामाजिक और वैयक्तिक जीवन के अन्तर्वाह्यः अनुभूति चित्रण एवं युगीन परिवेश के प्रस्तुतीकरण म नागर जी के अगाध ज्ञान, अध्ययन, और साहित्यिक प्रतिभा का परिचय मिलता है । इस उपन्यास के लेखन का उद्‌देश्य ही व्यक्ति और समाज के यथार्थ चित्र को उभारना है । उपन्यास के व्यापक सामान्य प्रभाव के लिए सामाजिक जीवन के अनेक दृश्य, विविध विषयो, समस्याओं एवं पात्रों के चरित्रांकन को प्रतिबिम्बित करते हैं। डॉ0 सुषमा धवन ने "व्यक्ति एवं समष्टि के समन्वयात्मक विकास" के प्रतिपाद्य के आधार पर इसे "सामाजिक उपन्यास-परम्परा के अन्तर्गत" रखा है।[1] लेखक ने भूमिका में स्वयं कहा है - "इस उपन्यास में मैंने अपना और आपका अपने देश के मध्यवर्गीय नागरिक समाज का गुण-दोष भरा चित्र ज्यों का त्यों आँकने का यथा-मति, यथासाध्य प्रयत्न किया है, अपने और आपके चरित्रों से ही इन पात्रों को गढ़ा है।"

उपन्यास का प्रतीकात्मक शीर्षक सार्थक है। बूंद व्यष्टि का अर्थ वहन करती है तो समुद्र समाज का प्रतीकार्थ है। नागर जी ने सर्वत्र व्यक्ति और समाज को एक दूसरे का पूरक माना है। व्यक्ति का अस्तित्व गौण नहीं , किन्तु व्यक्ति का कर्तव्य जनकल्याण की भावना से प्रेरित होना चाहिए। "व्यक्ति-व्यक्ति अवश्य रहे , पर उसके व्यक्तिवादी चिंतन में भी सामाजिक दृष्टिकोण का रखना अनिवार्य हो।"[2] व्यक्ति और समाज , बूँद और समुद्र यदि कहीं अलगाव महसूस करते है तो अनिवार्य रूप से बँधे हुए भी है। प्रश्न है व्यक्ति की प्रतिष्ठा का, बूंद के सदुपयोग का, अतः उसका समाधान लेखक ने अपने चरम आस्थावादी चिन्तन की मात्रा में प्रस्तुत किया है - मनुष्य का आत्मविश्वास जागना चाहिये, उसके जीवन में आस्था जागनी चाहिए।

इस उपन्यास की कथा का मुख्य सम्बन्ध लखनऊ के चौक मुहल्ले से है, परन्तु इस मुहल्ले के अपने चित्रण के माध्यम से लेखक ने लखनऊ नगर के अतिरिक्त

---

1. डॉ0 सुषमा धवन- "हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ- 80
2. अमृतलाल नागरः बूँद और समुद्र, पृष्ठ- 603

सम्पूर्ण सामाजिक जीवन को प्रत्यक्ष करने का प्रयास किया है। उपन्यास की कथाओं और उपकथाओं का सम्बन्ध चरित्र सृष्टि से है । पात्रों के इस महत्व को डॉ० प्रकाशचन्द्र मिश्र भी स्वीकार करते है – "उपन्यास के प्रमुख–अप्रमुख सभी चरित्रों का अपना इतिहास है, उनके क्रिया कलाप है, जिन्होंने उपन्यास की कथावस्तु को आकार प्रदान किया है।"[1]

इस उपन्यास में विरहेश, ताई, बन्दो, कन्या के पिता जगदम्बा सहाय, बड़ी, छोटी तारा आदि एक वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं, तो सज्जन, महिपाल, कन्या एवं कर्नल दूसरे वर्ग के प्रतीक है। सालिगराम, राजा जी , जानकीसरन, एक तीसरे ही वर्ग के प्रतीक है जो राजनीति की आड में अपना उल्लू सीधा करना चाहते है। अन्य अनेक पात्रों की सृष्टि भी उपन्यास में हुई है जो छोटी–छोटी भूमिकायें निभाते है।

डॉ० रामविलास शर्मा ने नागर जी की विषय –व्यापकता, विविधता का सरस चित्रण करते हुए लिखा है – "पात्रों की संख्या, उनकी विविधता, अनुकरण अथवा प्रतिच्छवि की सजीवता के विचार से अमृतलाल नागर हमें ऐसे जीते–जागते और कोलाहलमय संसार में ला खडे करते हैं जिसकी समृद्धि की तुलना बाल्जाक की रचनाओं से ही हो सकती है। लेखक के पास ऐयारी की ऐसी झोली है जिसमें पात्रों की सैकड़ों मूर्तियाँ भरी हुई है और वह सन्तुलन का भी विचार न करके उन्हें सानन्द एक के बाद एक निकालता चला जाता है, फिर भी झोली खाली नहीं होती । पात्र अकेले नहीं आते, वे अपने साथ अपना पूरा वातावरण लाते है – पुरानी हवेली, पीपल के नीचे का चबूतरा, नरी का किनारा इत्यादि।"[2]

इस उपन्यास का प्रमुख चरित्र ताई का है ताई राजाबहादुर सर द्वारिकादास की परिव्यक्ता पत्नी है । पाते से अलग पुरखों की हवेली में रहती है। नारी हृदय की विवशताओं, विकृतियों और ऊँचाइयों के घोतक समस्त प्रतिबिम्ब इस पात्र विशेष में सिमट गये है। अर्न्तमन की खीझ और हृदय के अंधेरे ने ताई के मस्तिष्क को हिंसात्मक भावनाओं से भर दिया।

---

1. डॉ० प्रकाशचन्द्र मिश्र– नागर उपन्यास कला, पृष्ठ–87
2. डॉ० रामविलास शर्माः आस्था और सौन्दर्य, किता 1961, पृष्ठ– 135

उनका यह हिंसात्मक स्वभाव अब अपने घर के लिए ही नहीं बल्कि समूचे मोहल्ले के लिए हो गया। लडाई–झगडा, टोना–टोटका आटे के पुतले बनाकर लोगों के घर रखना ही जैस उनका लक्ष्य हो गया है। ताई के व्यक्तित्व का यह एक पहलू है औरर इस पहलू को देखते हुए यह कल्पना करना भी सम्भव नहीं कि यहीं ताई बिल्ली के सद्य:जात बच्चों को पाकर ममता से भर उठेगी । उन्हें अपने से अधिक चिन्ता बिल्ली के बच्चों की हो जाती है। ताई का अन्त भी नाटकीय स्थितियों में हुआ है। रूग्णावस्था में वे अपने पति को मारने के लिए मारणतंत्र सिद्ध कर मूठ भी चलाती हैं किन्तु यहीं फिर वही विरोधाभास साथ–साथ प्रकट होता है, वे तंत्र को अपने ऊपर ले लेती है – "अब मरन किनारे किसी का बुरा न चेतूंगी ।[1]

उपन्यास की दूसरी प्रमुख कथा सज्जन की है । सज्जन एक चित्रकार है, जिसे विरासत के रूप में पूर्वजों की अपार धनसम्पत्ति प्राप्त हुई है। सामान्य जन–जीवन से अपरिचित वह उसस परिचय प्राप्त करने के लिए चौक मोहल्ले में ताई का किरायेदार बनता है। उसके मन में सामाजिक जीवन में सक्रिय भाग लेने की इच्छा है। "सज्जन" की एक मित्र मण्डली भी है। नारी उसके लिए भोग्या है , किन्तु वनकन्या उसके जीवन को बदल देती है और उसका दृढ़–चरित्र उसे नारी का आदर करना सिखाता है। वह वनकन्या के साथ समाज सेवा का कार्य हाथ में लेता है और क्रमशः मानवतावादी आचारों का आदर्श रूप प्रस्तुत करता है। सज्जन का चरित्र पूरे उपन्यास पर इतना अधिक छाया हुआ है कि लगता है कि अपने समस्त गुणों–अवगुणों के बावजूद लेखक की भरपूर सहानुभूति उसे प्राप्त है, किन्तु उसका चरित्र अच्छाइयों, बुराइयों के साथ ही सजीव हो सका है। सज्जन अपने समस्त वैभव के पश्चात् भी सहृदय है, परोपकारी है, विनयी है।

नागर जी ने स्त्री–पुरूष के पारस्परिक संबंधों को विभिन्न पात्रों के माध्यम से विश्लेषित किया है। सज्जन प्रगतिशील स्वतंत्रयुवक है और अनेक नारियाँ उसके सम्पर्क में आती रहती है । उसके शीलगत आचरण, वैचारिक सैद्धान्तिक वार्तायें महिपाल के साथ अक्सर चर्चित एवं अनावृत होती रहती है किन्तु उसकी मान्यतायें बुद्धि और विवेक के तर्कजाल

---

1 बूँद और समुद्र . पृष्ठ – 563

में बंधी होने पर भी नैतिकता के बंधन मानने को तैयार नहीं – "शादी और उसका मॉरल समाज को उठाने के बजाय गिराते हैं । इन्हें खतम कर देना चाहिए ।"[1]

"बूँद और समुद्र" उपन्यास की कथा का तीसरा प्रमुख संदर्भ महिपाल, उसकी पत्नी कल्याणी तथा प्रेमिका डॉ0 शीला स्विंग को लेकर गतिशील है। महिपाल प्रगतिशील विचारों का, साथ ही मध्यवर्गीय संस्कारों से बंधा लेखक है । उसका भरा–पूरा परिवार है परन्तु पेशे के रूप में अपनाया गया लेखन–धर्म उसकी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति नही कर पाता। वह एक प्रतिभाशाली लेखक है। उसकी पत्नी कल्याणी परम्परागत मान्यताओं और आदर्शों को मानने वाली एक पतिव्रता अशिक्षित और रूढ़िवादी पत्नी है। इन विषम परिस्थितियों में महिपाल किसी तरह अपने परिवार से सामंजस्य बिठाता है, परन्तु भीतर ही भीतर वह कुंठाग्रस्त हो जाता है । शीला स्विंग उसकी प्रेमिका है । वह अपनी सम्पूर्ण निष्ठा के साथ महिपाल से प्रेम करती है । घटना–क्रम महिपाल को घर छोड़ने के लिए विवश करता है परन्तु सामाजिक लोक–लाज उसे शीला को भी अपनाने नहीं देती । मित्रों के प्रयत्न से वह पुनः घर आता है। अपनी मांजी के विवाह के अवसर पर उसके जीवन का एक रहस्य (ननिहाल में उसके द्वारा की जाने वाली चोरी) जब भरी सभा के बीच लाला रूपरतन द्वारा उद्‌घाटित कर दिया जाता है , महिपाल उस चोट को नहीं सह पाता और अन्ततः नदी में डूबकर आत्महत्या कर लेता है। महिपाल के अन्तर्विरोधी चरित्र की यह परिणति कथा की ट्रेजिक परिणति है । महिपाल के माध्यम से नागर जी ने आज के त्रस्त और घुटन के माध्यम से नागर जी ने आज के त्रस्त और घुटन वाले कुंठित साहित्यकार को चित्रांकित किया है। सज्जन की अभिव्यक्ति उसके चरित्र को प्रतिफलित करती हे – "जिस देश का इतिहास इतना महिमामय है– वह देश जड़ता और गन्दगी में रहना पसन्द करते हुए आज की भयंकर अगाते के रूप में आत्महत्या क्यों कर रहा है ? महिपाल और भारत अपने ज्ञान और अज्ञान को लेकर एक समान है।"[2]

---

1. बूँद और समुद्र, पृष्ठ – 94
2. बूँद और समुद्र – पृष्ठ – 604

उपन्यास की इन मुख्य कथाओं के अतिरिक्त अनेक छोटी कथाएँ उपन्यास के उद्देश्य को तथा व्यापक सामाजिक जीवन के चित्र को पूरा करने में अपना योग देती है। भभूती सुनार के घर और परिवार की कथा के माध्यम से लेखक ने कम-पढ़े-लिखे मध्यवर्गीय परिवारों के जीवन पर प्रकाश डाला है। भभूती सुनार की बड़ी बूंद और कवि बिरहेश का एक कथा प्रसंग है। इस प्रकार की अनेक कहानियाँ मुहल्ले के जीवन का अंग बनकर उपन्यास में आयी हैं। उपन्यास में वर्णित सभी छोटी-बड़ी कथाओं का अपना महत्व है और जहाँ तक वर्णन-शैली का प्रश्न है , रोचकता आघान्त बनी हुई है। उपन्यास में चित्रित मुख्य दो पात्रो का सम्बन्ध नागर जी से स्थापित करती हुई डॉ0 सुषमा धवन कहती है - "वास्तव में महिपाल और सज्जन लेखक के व्यक्तित्व के दो रूप है - एक उसका यथार्थ रूप है तो दूसरा आदर्श । महिपाल के आदर्श एवं व्यवहार में मेल नहीं । उसकी समस्त आदर्शवादिता तथा उच्च आकांक्षायें क्रमशः यथार्थ से टकराकर चूर-चूर होने लगती है। उसके जीवन में कहीं संगति नहीं है।"[1]

"बूँद और समुद्र " उपन्यास में नागर जी ने कथा-सूत्र का ऐसा जाल बुना है कि उसमें समाज का सम्पूर्ण परिवेश आबद्ध हो गया है । नागर जी की दृष्टि सर्वत्र आन्तरिक सम्भावना पर टिकी हुई है। इस उपन्यास की सबसे बड़ी सफलता और सौन्दर्य उसके शिल्प में है । नागर जी भाषा के जादूगर थे । ताई की भाषा की बानगी - "निगोड़ी सबकी सब मेरी ही छाती पे मूँग दलने आई हैंगी । सात जनम की दुस्न मरी, गली-गली घूमकर मेरे घर बच्चे पटकने आई रंडो। अरे तन-तन में कीड़े पड़ेंगे , सरदी की रात में दौड़ा मारा।"[2]

सारांशतः कहा जा सकता है कि "बूंद और समुद्र" उपन्यास में "व्यक्ति और समाज" की सापेक्षता को पूर्ण विश्लेषित ढंग से प्रस्तुत किया गया है । औपन्यासिक अनुभवों

---

1 डॉ0 सुषमा धवन - हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ - 67

2. बूँद और समुद्र - पृष्ठ-21

में यह उपन्यास बहुत कुछ नया और विलक्षण जोड़ जाता है, जिसकी मानवीय सार्थकता असंदिग्ध है ।

"शतरंग के मोहरे"

शतरंज के मोहरे (1958) नागर जी का प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास है। इसमें नागर जी ने अवध राज्य के सामाजिक तथा राजनैतिक घटनाचक्र के माध्यम से 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध का सजीव चित्र प्रस्तुत किया है । "शतरंग के मोहरे" ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर रचित गदर पूर्ण के नवाबों के सामन्तशाही अत्याचार, भोग–विलास, अंग्रेजों का बढता हुआ कूटनीनिक जाल और दो पाटों के बीच में पिसता हुआ हिन्दू – मुस्लिम समाज एवं कुशासन से फैली हुई सामाजिक व्यवस्था और इन सबके ताने बाने में बुनी वर्तमान राष्ट्रीयता की सूक्ष्म जागरूकता। उपन्यास का आरम्भ उद्देश्य को पूर्ण सूचित करता है और नवाबी अत्याचारों का जीवन्त वातावरण प्रस्तुत करता है – "काले , भूरे बादलों के घनघोर घेराव से आकाश घुट रहा था, धरती पर उसकी मनहूसियत फैल रही थी, नाजिमी सेवाओं की आहट से गांव की हवा तक को साँप सूंघे गया था।"[1]

नागर जी ने अपनी सजगता के कारण ही इस उपन्यास में साहित्य एवं इतिहास का अद्भुत सम्मिलन प्रस्तुत किया है । लेखक ने ऐतिहासिक तथ्यों की पूर्ण रक्षा करते हुए उसे सरल–लोक ग्राह्य और जीवन्त बताया है । नागर जी के ऐतिहासिक प्रेम के बारे में डॉ0 रामविलास शर्मा ने लिखा है – "नागर जी को इतिहास से प्रेम है और इतिहास में भारत के इतिहास से . . . भारत के इतिहास में अवध के इतिहास से , और अवध के इतिहास में राजा बेनीमाधव और हजरत महल के इतिहास से उन्हें विशेष प्रेम है।[2]

शतरंग के मोहरे के ऐतिहासकि परिप्रेक्ष्य में सामाजिक विषमता, नारी–दुर्दशा एवं अपनी मान्यताओं के संकेत तथा हिन्दू–मुस्लिम संस्कृतियों का सन्निवेश आदि ने कल्पना तत्वों को श्रृंखलित कर इसे रोचक बना दिया है। नागर जी ने मुख्य प्रतिपाद्य के लिए ऐतिहासकि पात्र ही लिये है जैसे – गाजीउद्दीन, नसीरूद्दी हैदर, आगामीर, मुन्नाजान, कैंवाजाह, हकीम मेंहदी, बादशाह बेगम दुलारी, कुदसिया बेगम आदि, किन्तु लेखक ऐतिहासिक तथ्य ही प्रस्तुत नहीं करता,

---

1 अमृतलाला नागरः शतरंग के मोहरे, पृष्ठ–9,10
2 डॉ0 रामविलास शर्मा– धर्मयुग, 2 अगस्त 1964, पृष्ठ–16

साहित्य उसकी अपनी विशिष्ट अभिव्यक्ति होता है। दिग्विजय ब्रम्हचारी नागर जी की मान्यताओं का प्रतिनिधि पात्र है। अतः "शतरंज के मोहरे" ऐतिहासिक उपन्यास होते हुए भी वर्तमान सामाजिक विषमता, हिन्दू , मुस्लिम, अंग्रेजी संस्कृतियों के विश्रृंखलन- विदीर्णन की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करता है। यह पृष्ठभूमि लेखक के मानवतावादी उद्देश्य एवं दृष्टिकोण को स्पष्ट करती है।

इस उपन्यास में सन् 1820 से सन् 1837 की कालावधि में अवध के नवाब गाजीउद्दीन हैदर तथा उसके पुत्र नसीरूद्दीन हैदर का शासनकाल था। इन नवाबों के शासन काल में राजमहलों से लेकर सामाजिक जीवन तक में जिस भ्रष्टाचार, अराजकता, आतंक, दमन, कुचक्र , छल, प्रपंच आदि का बोलबाला था, कथा की घटनायें इसी के बीच से विकास प्राप्त करती है। उपन्यास का कथाफलक अत्यन्त सीमित है, फिर भी इसमें पात्रों की बहुलता है। उपन्यास की कथा में प्रमुख कथा प्रसंग पांच है – (1) शाहे अवध गाजीउद्दीन हैदर और बादशाह बेगम –प्रसंग (2) दुलार–प्रसंग (3) कुदसिया बेगम और नवाब नसीरूद्दीन हैदर प्रसंग (4) कुल्सुम ओर दिग्विजय, बम्हचारी प्रसंग, (5) भुलनी और स्मिथ प्रसंग। उपन्यास में और भी कथाऐं है जिनका सम्बन्ध उपन्यास के मुख्य प्रसंग से किसी न किसी रूप में अवश्य जुड़ता है। नबाव गाजीउद्दीन हैदर को कोई सन्तान न थी । और दूसरी तरफ उनकी पत्नी बादशाह बेगम से उनकी पटती भी नहीं है। गाजीउद्दीन का वजीर उन्हें अपने वश में किए हुए है । बादशाह बेगम हर सम्भव प्रयत्न द्वारा आगामीर को अपदस्थ करना चाहती हे । यहाँ असली संघर्ष वजीर आगामीर और बादशाह बेगम के बीच है। गाजीउद्दीन हैदर इसमें केवल मोहरा बने हुए हैं। बादशाह बेगम चाहती हैं कि कम गाजीउद्दीन हैदर के बाद राजगद्दी का संचालन उनके हाथ से ही हो । इसके लिए वह घोषणा कराती हैं कि नबाव शीघ्र ही पिता बनने वाले है । वजीर आगामीर बेगम की इस चाल को समझता है, किन्तु बेगम की इस योजना को असफल नहीं कर पाता है ओर बेगम राज्य–भर में घोषणा करा देती हैं कि बादशाह को पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई है । शिशु का लालन पालन इन्हीं की देख–रेख में होता है । तमाम कुचक्रों तथा षड्यन्त्रों का सामना करते हुए अन्ततः वे गाजीउद्दीन हैदर की मृत्यु के बाद इस नबावजादे को गद्दी का अधिकारी बनने में सफल होती है। ये नबाव नसीरूद्दीन हैदर के नाम से अवध की गद्दी पर आसीन होते है।

नसीरूद्दीन हैदर भी नबाबी शासन की पुरानी परम्परा को कायम रखते हैं। नई–नई नारियाँ नबाब के सम्पर्क में आती है, और नबाव को अपने–अपने जाल में फँसाने

का विश्वसनीय चित्रण किया है । नवाबों के वैभवपूर्ण जीवन तथा "नाच–गानों और वेश्याओं के प्रति उनकी अनन्य भक्ति का चित्रण कर ढलते हुए अवैध के नवाबी ऐश्वर्य का जो चित्र इस उपन्यास में खींचा गया है वह इतिहास संगत है ।"[1] डॉ0 शशिभूषण सिंहल जी का मत है कि शतरंज के मोहरे उपन्यास में लोक जीवन का सफल अंकन हुआ है और लखनऊ की अनुभूतियों "नागर जी" की अपनी है । उनका स्पष्ट मत है कि –"नागर जी के सामाजिक चित्रण में वातावरण से आत्मीयता किस्सा–गो की सी मस्ती और तटस्थ विवेचन जैसी व्यंग्यात्मकता है। वे परिस्थिति का सूक्ष्म निरीक्षण कर सामाजिक शक्तियों के तत्व संचित करते हैं और उन तत्वों का जीवन के रचनात्मक संयोजन में भली–भांति उपयोग करते है।"[2]

नागर जी का भाषा पर अद्भुत अधिकार है । इस उपन्यास में फारसी, अरबी शब्दों की बहुलता लखनऊ दरबार से जुड़ी है। चौक में बोली जाने वाली खड़ी बोली का उपयाग हुआ है। इसलिए उपन्यास की भाषा में ताजगी और जीवन्तता है । कहीं–कहीं ब्रजभाषा का भी प्रयोग मिलता है । ऐतिहासिक उपन्यासों को श्रृंखला में "शतरंज के मोहरे" का विशिष्ट स्थान है । यह उपन्यास ऐतिहासिक कल्पना की एक महत्वपूर्ण कलात्मक सृष्टि है।

सुहाग के नूपुर (1960)

"सुहाग के नूपुर ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर रचित उपन्यास है। लेखक ने स्वयं कहा है कि महाकवि इलंगोवन द्वारा रचित तमिल महाकाव्य "शिलप्यदिकारम्" की कथावस्तु पर आधारित है । प्राचीन दक्षिण भारतीय सांस्कृतिक परिवेश पर आधारित होते हुए भी इसका कलेवर समस्त भारतीय संस्कृति के मानदण्डों, नैतिक मूल्यों और परम्पराओं से युक्त है। फलतः मानव जीवन के कतिपय सत्यों को उजागर करने वाली यह रचना महाकाव्य प्रेरित है। "सुहाग के नूपुर" नाम "शिलप्पादिकारम्" शीषक का हिन्दी–पर्याय है। नाम अनुदित है किन्तु उपन्यास

---

1 डॉ0 त्रिभुवन सिंह – हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृष्ठ–532 हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी, 1955

2 डॉ0 शशिभूषण सिंहल – हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ , पृष्ठ –380, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 1970

मौलिक है। इस पर नागर जी के व्यक्तित्व की पूरी छाप है। वर्तमान युग के सशक्त एवं नूतन युग दृष्टा उपन्यास लेखक होते हुए भी नागर जी ने उपन्यास में परम्परागत संस्कृति पर आस्था प्रकट करते हुए नारी के कुलवधू रूप को महत्ता और उच्चाशयता प्रदान की है। आलोच्य उपन्यास में यद्यपि नगरवधू की पीडा ने नारी की विवशता को स्पष्ट कर दिया है किन्तु बावजूद इसके वे नगरवधू को कुलवधू का स्थान दिलाने में असमर्थ रहे हैं। नागर जी की सर्जकता, प्रस्तुतीकरण क्षमता एवं सहज मानवीय चिन्तनाओं एवं भावनाओं के कारण यह उपन्यास एक मौलिक रचना बन गया है । कुलवधू के "सुहाग के नूपुर" और नगरवधू के नृत्य घुँघुरूओं का संघर्ष ही उपन्यास की मूल संवेदना है। किन्तु यह संघर्ष एक पक्षीय और व्यक्तिगत बन गया है ।

सुहाग के नूपुर में एक प्रेम त्रिकोण के माध्यम से सामाजिक समस्याओं , राजनीतिक संघर्षों , कला और संस्कृति के विविध रूपों का सांगोपांग चित्रण किया गया है। नगर के सर्वाधिक धनी व्यापारी मात्रात्तुपान का पुत्र कोपलन अत्पवय में ही अपने पिता के कार्यो की यशोवृद्धि और समृद्धि का पोषण कर रहा था। नगर के दूसरे प्रमुख धनिक, प्रतिष्ठित व्यापारी मानाइहन की एक मात्र पुत्री कन्नगी से उसका विवाह निश्चित हुआ था, किन्तु वह विवाह पूर्व ही राज्य की ओर से प्रतिष्ठित नृत्यकुशल नगरवधू माधवी के आकर्षण पाश में बँध चुका था। फलतः बिवाहोपरान्त सामाजिक मान्यताओं और प्रेम के आकर्षण में वह द्विधाग्रस्त स्थिति में पड़ जाता है । कोवलन अपने सहज चंचल रूप लिप्त मन के वशीभूत हो अपनी पत्नी के प्रति निरासत्त हो उसका अपमान करने लगता है । माधवी वेश्या होने पर भी अपने एकनिष्ठ प्रेम द्वारा समाज में पत्नी के पद पर आसीन होना चाहती है और उसे वेश्या बनाने वाले पुरूष समाज से अपने अधिकारों की मांग करती है किन्तु सत्ताधारी पुरूष समाज उसको कुलवधू का स्थान देने के लिए तैयार नहीं होता। अतः सुहाग के नूपुरों और नर्तकी के घुंघरूओं के मध्य पीडित नारी जीवन की प्रतिष्ठा का दम घुटने लगता है। एक ओर कुलवधू पति द्वारा प्रवंचिता है, दूसरी ओर नगरवधू समाज द्वारा प्रताड़ित माधवी अपनी सतान- कन्या को उसके पिता की गौरवमयी परम्परा में स्थान दिलाना चाहती है। साथ ही कोवलन की समस्त सम्पत्ति को अधिकारिणी बन जाती है, किन्तु समाज उसके एकनिष्ठ प्रेम को मान्यता नहीं दे पाता । माधवी कन्नगी को भरपूर दुख देने यहाँ तक कि घर से निकाल देने पर भी उसके सुहाग के नूपुर प्राप्त नहीं कर पाती, यहीं वह पराजित होती है और उसका विद्रोही हृदय,

कामी, दुर्बल हृदय कोवलन के साथ विश्वासघात करता है। वह एक अन्य राजपुरूष का आश्रय खोज लेती है और कोवलन को समाज के सामने तिरस्कृत करवाती है । अपमानित कोवलन कन्नगी के सानिध्य में ही शान्ति पाता है और वे दोनों नया जीवन प्रारम्भ करने के लिए दूसरे राज्य मदुरै पहुँचते है, जहाँ कन्नगी के सुहाग के नूपुर ही उसकी प्राण रक्षा कर नवजीवन प्रदान करते है। बाद में कावेरी पद्धणम् में भयंकर तूफान आता है और समस्त नगर नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है । राजपुरूष माधवी के एकनिष्ठ प्रेम का दर्प चूर-चूर कर उसे निराश्रय छोड़ देता है और वह अपने ही अहं से कुचली हुई विक्षिप्तावस्था में एक बौद्ध शिविर में शरण प्राप्त करती है , वहाँ वह महाकवि इलंगोवन से नारी के अधिकारों एवं उसकी प्रतिष्ठा की न्याय माँगती है। "पुरूष जाति के स्वार्थ और दंभ भरी मूर्खता से ही हमारे पापों का उदय होता है। उसके स्वार्थ के कारण ही उसका अर्धांग-नारी जाति पीड़ित है। एकांगी दृष्टिकोण से सोचने के कारण ही पुरूष न तो स्त्री को सती बनाकर ही सुखी रख सका और न वेश्या बनाकर ही । इस कारण वह स्वयं ही झकोले खाता है और खाता रहेगा। नारी के रूप में न्याय रो रहा है, महाकवि । उसके आँसूओं में अग्नि प्रलय भी समाई है और जल प्रलय भी।"[1]

नागर जी ने अपने इस उपन्यास में अपने विपुल ज्ञान भण्डार और ऐतिहासिक वक्तव्यों को प्रस्तुत किया है। उपन्यास के कथ्य को घटनाओं के घात-प्रतिघात एवं व्यवहारिक दृष्टि से सफल बनाने में नागरजी के सभी पात्र सफल रहे है ।

'सुहाग के नूपुर' उपन्यास मनोरंजन की दृष्टि से पूर्णतः सफल होते हुए भी एक गहन समस्या का सघन विश्लेषण है। भारतीय नारी युग-युग से पीड़ित है और समाज द्वारा ठुकराई गई नारी वेश्या बनकर ओर भी दयनीय है कुलवधू पूज्य तो है किन्तु चारदीवारी में बन्द वह भी पति की दासी ही है । नगरवधू और कुलवधू दोनों हो रूपों में नारी त्रस्त है। नारी की विवशता की इसी पृष्ठभूमि में नागर जी ने नगरवधू बनाम कुलवधू की समाज में प्रतिष्ठा की समस्या को स्वर दिया है। निष्कर्षतः कह सकते है कि नागर जी ने नारी की पीड़ा को नगरवधू और कुलवधू के रूप में प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास में "नागर जी"

---

1. अमृतलाल नागरः सुहाग के नूपुर , पृष्ठ-267

की विशिष्टता इस बात में है कि इतिहास के उस युग को वे एक समाजशास्त्री की दृष्टि से देखते हैं और उस युग के आडम्बर या तामझाम के साथ ही जनसाधारण के यथार्थ को भी अंकित करते हैं। इस उपन्यास में नागर जी ने चरित्रों का द्वन्द्वात्मक चित्रण किया है।

"अमृत और विष"

अमृत और विष (1966) नागर जी का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास कहा जा सकता है। यह नागर जी का शिल्प की दृष्टि से अभिनव प्रयोग है, क्योंकि इसमें उपन्यास के भीतर उपन्यास है। इसमें एक उपन्यास तो आत्मकथात्मक है, जिसमें उपन्यास ने अरविन्द शंकर के रूप में स्वयं अपने उपन्यासकार की कल्पना की है। इसमें उन्नीस अध्याय है और अन्त में उपसंहार के रूप में अरविन्दशंकर का चिन्तन है । इस अंश में नागर जी की औपन्यासिक शिल्प, भाषा. धर्म, राजनीति, प्रेम आदि से सम्बन्धित मान्यताओं का भी अच्छा परिचय मिलता है। इसमें दूसरा उपन्यास वह है , जिसके लिए अरविन्दशंकर पद्मनाभ प्रकाशक से प्रतिश्रुत ही नहीं हो चुका , वरन् डेढ़ वर्ष से दो हजार रूपये भी लिए बैठा है. किन्तु जिसे वह अभी लिखकर नहीं दे सका। षष्ठिपूर्ति समारोह के समय उसे भय है कि वह प्रकाशक ही भण्डाफोड़ न कर दे और नोटिस भेजकर कहीं उसकी नाक न रगड़वा दे । जमीन के मामले में सेठ हरपालदास पर दावा ठोकने के लिए अरविन्दशंकर ने उस प्रकाशक को उपन्यास देने का वचन दकर दो हजार रूपये मंगवाये थे। कर्तव्य भावना से प्रेरित होकर वह उपन्यास लिखने बैठ गया । प्रश्न प्लाट का था। एक बारात की बहुत भारी शोभायात्रा के जुलूस के समय स्वातंत्र्य भारत के दो नवयुवकों को शादी के प्रबन्ध की चिन्ताओं से कुण्ठित होते देखकर अरविन्द शंकर के मन में यह स्पष्ट हो गया कि प्रकाशक को दिए जाने वाले उपन्यास में प्रमुख उद्देश्य होगा नौजवानों की आशाओं, आकांक्षाओं और कुण्ठाओं को चित्रित करना, क्योंकि आखिर आने वाली दुनिया है तो उन्हीं की । उपन्यासकार अरविन्द शंकर यह निश्चित कर लेते हैं कि मेरे जीवन भर के अनुभव सिद्ध औपन्यासिक संस्कारों को इन नवयुवक पात्रों के सहारे अपने आप युग कथा में प्रवेश पाने दो । दूसरे उपन्यास का यही विषय है । इस उपन्यास के सत्तावन अध्याय है। आत्मकथात्मक रूप में अरविन्दशंकर अपने जीवन की परिस्थितियों, अपने परिवार ओर मित्रों का उल्लेख करता है। इसी में से ऐसे पात्र निकलते है जिनके आधार पर वह अपने उपन्यास की कथा परिकल्पित कर लेता है। यथार्थ के प्रतीक होते हुए भी

उसके पात्र काल्पनिक है । उपन्यास के सभी सूत्र परस्पर अनुस्यूत हैं। नागर जी के पास न केवल अनुभवो की श्रृंखला है, अपितु जटिल कथानकों को पूरी अनुभूति और चिंतना के साथ प्रस्तुत करने की कला भी है। वे वर्तमान युग के जागरूक कथाकार है । मानव-मूल्यो का सत्य दोनों कथानकों को दो भिन्न आयाम दकर भी परिपूरक बना सका है। स्वातन्त्रोत्तर भारत के टूटते हुए मूल्यों को, परिवर्तनशील भूमिकों की पीड़ा को उन्होंने समझा है और समाज में फैले हुए हर प्रकार के विष को, सडी-गली विकृतियों के यथार्थ को पैने रूप से प्रस्तुत किया है, किन्तु उनकी मानवतावादी दृष्टि और चिरन्तन आस्था के इस विष का निराकरण करके कर्म और सत्य का अमृत निकालने का सन्देश दिया है , फलतः कथा का फलक प्रयोग के रूप में अत्यधिक व्यपकता को एकान्विति देने में सफल हुआ।

नागर जी को यह विश्वास है कि सक्रिय महत्वाकांक्षी तरूण वर्ग ही अपनी प्रतिभा, विद्रोह एवं सामाजिक क्रान्ति के द्वारा समाज में आमूल परिवर्तन ला सकता है। अत नागर जी ने इसी वर्ग के हाथ में समाज की बागडोर थमाकर रूढ़िवादिता से टक्कर लेने, राजनीतिक दलालों और नेताओं का भण्डाफोड करने धार्मिक अन्धविश्वासें को तोड़ने तथा सड़े-गले वर्जनशील मानव-मूल्यें के प्रति आन्दोलन खड़ा करने के उद्देश्य से विद्रोही न्यायप्रिय, कर्मनिष्ठ एवं युद्ध प्रिय व्यक्तित्व का निर्माण किया है, उपन्यास के तरूण पात्र रमेश की समाज परिकल्पना इस प्रकार है- "मैं समाज को जोर जबरदस्ती से नहीं बदलना चाहता, उसके आत्मविश्वास में सहायता देना चाहता हूँ। फिर जो अहिंसक समाजवादी व्यक्ति दना चाहता हूँ। फिर जो अहिंसक समाजवादी व्यक्ति और समाज के अन्तर से प्रस्फुटित होगा, उसी से सच्ची सभ्यता होगी।"[1] इन पंक्तियों में तरूणवर्ग की सम्पूर्ण पीडा, यातना के गहरे दर्द की टीस, मूल्यों का संघर्ष, मानवीय विवशतायें तथा उनसे उबरने के सही संकेत मिले हैं जो भावी समाज को निश्चय ही सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि देते है। दूसरी तरफ अरविन्द शंकर के जीवन का सत्य प्रत्येक साहित्यकार का जीवनानुभव है।

इस उपन्यास में एक कथा न होकर छोटी-बड़ी अनेक कथाएँ है। जीवन स्थितियाँ है, विभिन्न समय और स्थानों के अलग-अलग परिप्रेक्ष्यों में गृहीत दृश्य है। उपन्यास में कथानक निर्धारण में मुख्य रूप से दो कथाएँ चलती है , अन्य अनेक छोटी कथायें भी

---

1 अमृत और विष 5 पृष्ठ 175

दृष्टिगोचर होती है। मुख्य कथा में उपन्यासकार अरविन्द शंकर की आत्मकथा और उनकी उपन्यास रचना प्रक्रिया का अंकन हुआ है । अरविन्द शंकर अपनी आत्मकथा की पृष्ठभूमि में अपने पूर्व पुरूषों के पारिवारिक, सामाजिक , वैयक्तिक जीवन के चित्रण के साथ स्वयं की एवं अपने पुत्र–पुत्रियों की कथा और उनके चरित्र भी उद्घाटित करते है। प्राचीनता और अंग्रेजी शासन के सानिध्य में विकासनशील जीवन पद्धति रीति रिवाज रहन–सहन का सजीव वर्णन हमारे समक्ष तत्काली समाज को रूपादित करता है। धार्मिक भेदभाव से मुक्त समानता का व्यवहार करने वाला शेख फकीर मुहम्मद का चरित्र अनुपम है। भूतपूर्व स्वतंत्रता सेनानी अरविन्दशंकर हिन्दी के एक लब्धप्रतिष्ठत साहित्यकार है। वे मध्यवर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस कथा प्रसंग में निम्नलिखित पुरूष पात्र आते है। विनय शंकर, भवानीशंकर, उमेश शंकर के उपन्यासकार अरविन्दशंकर के बेटे है। अरविन्दशंकर की बेटी वरूणा "नन्ही" एक मुसलमान युवक से प्रेम संबंध स्थापित कर गर्भवती हो जाती है । फिर उसका गर्भपात कराया जाता है। अरविन्दशंकर अपने टूटते–बिखरते परिवार का यथार्थ चित्रण करता है, जिसमें प्रत्येक भारतीय परिवार की व्यथा समाई हुई है। इसी क्रम में राधेलाल के परिवार से जुड़े हुए सदानन्द के ननिया ससुर तथा अरविन्दशंकर के माता–पिता मदालसा और मास्टर किशोरी लाल के कथावृत्त भी है। हिदायत का प्रसंग और कामगुरू पुरतानी का प्रसंग रूपान्तरित होकर दूसरे कथानक के क्रमशः यूसुफ और उमा माथुर से जुड़ जाता है। दूसरा कथानक अरविन्दशंकर द्वारा रचित उपन्यास का है। कथानक का विकास– चरित्र चित्रण की स्वाभाविक गति से हुआ है। उपन्यास के आरम्भ में अरविन्दशंकर का आत्मचिंतन कथानक की रूपरेखा को स्पष्ट करता है – "मेरे पास ही दुकान के पास साइकिलें लिए दो युवक पैसे वालों की शान और अपनी परेशानियों पर झुंझलाते हुए .... बस इन्हीं दोनों युवकों को लेकर उपन्यास का श्रीगणेश करूँगा । इन दोनों में से एक को भंगड़पाधा का बेटा बनाऊँगा ..... भंगड़पाधा मेरे पड़ोसी।"[1]

उपन्यास का दूसरा कथा सूत्र पुत्तीगुरू की लड़की मन्नो के विवाह की तैयारियों के साथ आरम्भ होता है। पुत्तीगुरू का लड़का और अंग्रेजी दैनिक "इण्डिपेण्डेण्ट"

---

1. अमृत और विष – पृष्ठ--70

से सम्बद्ध उदीयमान पत्रकार रमेश अपने लच्छू के साथ वैवाहिक कार्यक्रमों को सम्पन्न कराने में व्यस्त दिखाई पड़ता है। इस विवाह कार्य में ही रमेश और रानी बाला से प्रेम होता है। रानी, रद्धूसिंह राठौर की विधवा पुत्री है, जो मात्र सोलह वर्ष की ही अवस्था में वैधव्य को प्राप्त हो जाती है । इनके प्रेम सम्बन्ध तमाम कठिनाइयों के बावजूद भी प्रगाढ़ होते जाते है। आर्थिक विपन्नता के कारण रानी को परिवार के भरण–पोषण के लिए नौकरी करनी पड़ती है। रमेश के सहयोग और अंग्रेजी दैनिक "इण्डिपेण्डेण्ट" के सम्पादक श्री आनन्दमोहन खन्ना एवं उनकी पत्नी कुसुमलता खन्ना की सहानुभूतिं से रानी को नौकरी मिल जाती है। आनन्द मोहन खन्ना, रमेश को "इण्डिपेण्डेण्ट" के संचालक डॉ0 आत्माराम का प्राइवेट सेक्रेटरी बनाकर सारसलेक भेजना चाहते हैं। किन्तु रानी की असहमति के कारण रमेश स्वयं न जाकर अपने मित्र लक्ष्मीनारायण खन्ना उर्फ लच्छू को भिजवा देता है। सारस लेक के सामाजिक वातावरण में रहकर लच्छू यौन दृष्टि से उच्छृंखल हो जाता है । वह प्रधान संवाददाता मिस्टर माथुर की पत्नी मिसेज उमा माथुर के उन्मुक्त यौनाचार में फँस जाता , लच्छू कुछ दिनों के लिए सारसलेक से रूस की यात्रा पर चला जाता है। इस बीच लखनऊ में गोमती नदी में बाढ़ आती है और रमेश संघ वालो के सहयोग से बाढ़ से पीड़ित जनता का सहयोग करता है।

कालान्तर में अनेक विरोधो के बावजूद भी रानी और रमेश दोनों प्रेम विवाह कर लेते है । यह विवाह खन्ना दम्पति के संरक्षण में बड़े धूमधाम से सम्पन्न होता है, लच्छू लखनऊ वापस आने के पश्चात् यश एवं धनलिप्सा के लिए चुनावी राजनीति में फँसकर अपना ईमान धर्म खो बैठता है। कातिल लुटेरों का सरदार खोखामिया डॉ0 आत्माराम के विरूद्ध षड्यंत्र करता है और उनके कार्यालय को जलाने की योजना बनाता है। रमेश इस षडयंत्र की सूचना आत्माराम और आनंद मोहन खन्ना को देकर कार्यालय को नष्ट होने से बचा लेता है। इस कथा के माध्यम से नागर जी ने स्वातंत्र्योत्तर भारत की राजनीतिकहलचल का यथार्थ चित्रण किया है।

इन मुख्य कथाओं में अनेक उपकथाएँ भी जुडती है– रानी और रमेश के कथासूत्र अनवर नवाब और गैहावानों के उपकथा सूत्र के साथ जुड़ते हैं। लच्छू की कथा से सारस लेक के मिस्टर सेन, मिस्टर माथुर, युसूफ , मिसेज माथुर, मिसेज बोस आदि के

उपकथा सूत्र जुडते हैं, लच्छू के लखनऊ वापसी के बाद उसकी कथा लाला रेवतीरमन, बैजूलाल हाजी नबीबख्श, मिसेज चौधरी के कथासूत्र से जुड जाती है। छैलू, गोडबोले, जयकिशोर, कम्मी हर्रो आदि की कथा लच्छू और रमेश के साथ संयुक्त रूप में विकसित है। इन कथाओं के अतिरिक्त ढेर सारी कथाएँ उपन्यास में आयी है । जिनका अपना महत्व है। उपन्यास के कथानक में कथाओं की बहुलता के कारण ही पात्रों की भी बहुलता हो गई है जिससे कृति के एकाग्र प्रभाव में बाधा पड़ती है ।

अमृत और विष की मूलचेतना पुरानी पीढ़ी और नयी पीढ़ी की विचारधाराओं, आदर्शों, मान्यताओं की टकराहट की है। इस उपन्यास में समाजगत अनेक समस्याओं का यथार्थ मूलक चित्र प्रस्तुत किया गया है जैसे अन्तर्जातीय प्रेम-विवाह, छात्र आन्दोलन, साम्प्रदायिकता, राजनीतिक जीवन की अनैतिकता ओर चुनाव-विधान , भ्रष्टाचार, नारी-समस्या-अनैतिक यौन सम्बन्ध आदि ।

दो पीढियों का स्पष्ट विभाजन अरविन्द शंकर के उपन्यास में मिलता है। तरूणो के सहज उत्साह आस्था, विश्वास, संघर्षशीलता का वाहक यदि रमेश है तो उनके क्षोभ, कुण्ठा, निराशा आदि का प्रतिनिधित्व रमेश के मित्र लच्छू ने किया है। पुत्तीगुरू, रद्दूसिंह, रूपचन्द्र बैजनाथ, सत्यनारायण बाबू आदि पुरानी पीढ़ी के विचारों के वाहक हैं। अमृत और विषय लेखक की आस्था और विश्वास एवं समाज के कुरूण के प्रति विद्रोह के परिप्रेक्ष्य में सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, औद्योगिक क्षेत्रों में घुमड़ने वाले विष के प्रतिकार की कहानी है। यथार्थ अमृत है, भारतीय मानसिकता का और विषय है अभारतीय अपरिपक्व आशयों का, किन्तु अमृत की सद्गंध भी है और विष की महक भी। उपन्यासकार ने अपने युग के सर्वांगीण जीवन को भयंकर "अमृत और विष" ये दो रत्न निकाले है।[1]

सात घुघंट वाला मुखड़ा

"1968 में लिखित अमृतलाल नागर का ऐतिहासिक लघु उपन्यास " सात घूघंट वाला मुखड़ा " है । इतिहास के एक रहस्यमय चरित्र बेगम समरू के इतिहास सम्मत तथ्यों को प्रचलित किंवदन्तियों से कल्पनामय रोचक रूप देकर इसका कथा संगठन किया

---

1. डॉ० सत्येन्द्र – हिन्दी उपन्यास विवेचन, नया दौर, नया उपन्यास, पृष्ठ-232.

गया है । स्वयं उपन्यास लेखक का विश्वास है कि यह इतिहास नहीं, ऐतिहासिक चरित्र प्रधान उपन्यास है । तिथियों और घटनाओं के क्रम परिवर्तन मनोवैज्ञानिक स्थितियों के अनुसार इसमें कर लिये गए हैं, क्योंकि "बेगम समरू का इतिहास प्रामाणिक होते हुए भी उसकी बहुचर्चा के कारण किंवदन्तियों से भरा हुआ हे।" प्रेम, विलास और राजनीतिक महत्वाकांक्षा से पीडित बेगम समरू हिन्दुस्तान की मलिका बनने के लिए नवाब सतरू के विरूद्ध षडयंत्र करती है, किन्तु नवाब के आत्महत्या कर लेने पर उसके पश्चाताप, आत्मग्लानि एवं प्रेम की अग्नि में सुलगना पडता है। यहाँ सत्तालोलुप महत्वाकांक्षा के सम्मुख नारी–प्रेम की पराजय का वर्णन है। इस उपन्यास की सबसे बडी विशेषता यह है कि यह प्रारम्भ से ही पाठकीय अभिरूचि को तीव्रतर करता हुआ चित्त को एकाग्र कर लेता है।

उपन्यास का ऐतिहासिक प्रतिपाद्य उठ्ठारहवीं सदी के अंग्रेजों, मुगलों के संघर्ष का चित्रण करता है। इस उपन्यास के कथा केन्द्र आगरा, दिल्ली तथा सरधना रहे हैं और काल की दृष्टि से इसमें उस समय का चित्रण है जब अंग्रेजों, मीरकासिम, शुजाउद्दौला आदे के आपसी संघर्षों की जय–पराजय से भारत की राजनीति बड़ी अस्थिर बनी हुई थी। उपन्यास में शासक की दृष्टि से उपर्युक्त तीनों शक्तियों का नहीं, विलायती जनरल वाल्टर रेनार्ड उर्फ नवाब समरू के शासनकाल का चित्रण हुआ है जिसमें नवाब मीर कासिम की ओर से अंग्रेजों के विरूद्ध युद्ध में भाग लेते हुए पटना में धोखा देकर दावत में बुलाए गए 148 अंग्रेजों, यूरोपिन निहत्थे अफसरों और सिपाहियों को बड़ी बेरहमी से मार डाला था और नवाब शुजाउद्दौला की बेगमों और दौलत आदि को भी ठगा था, दिल्ली का शासक उस समय मुगल बादशाह शाह आलम था, जो अपनी वृद्धावस्था के कारण अत्यन्त शक्ति हीन हो गया था। सहारनपुर के रूहेला नवाब गुलाम कादेर खाँ के दिल्ली तख्त को हथियाने के कारनामों और उसका समरू बेगम जुआना द्वारा विरोध का चित्रण यहाँ हुआ है । उसको हटाने से शाहे आलम ने कृतज्ञतावश जुआना को "जेबुन्निसा" और "दुख्तरे खास" के खिताब दिए और "खिलअत अताफरमाई"। यह बेगम समरू उपन्यास में मुन्नी, दिलाराम, जुआना और बेगम समरू के नाम से सम्बोधित की गई है। यह एक साधारण काश्मीरी लडकी है जिसके माँ–बाप मेरठ में रहते थे। एक दिन वशीर खाँ के पिता द्वारा , मुन्नी का अपहरण कर लिया जाता है । सम्पूर्ण उपन्यास पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है कि उस समय नारी अपहरण एक सामान्य बात मानी

जाती थी। वशीर खाँ के पिता की प्रबल इच्छा थी कि वशीर उसे किसी के हाथ बेच दे, अपनी परिणीता न बनाए। किन्तु उसके बावजूद वशीर उसे अपनी बना लेना चाहता है। किन्तु बाप के आज्ञानुसार बशीर उसे दिल्ली स्थित "वाल्टर रेनहाड के दूत टॉमस" को दस हजार स्वर्ण मुद्राओं के बदले बेच देता है उसे समरू की राजधानी सरधना में रखा जाता है। राज्य वैभव प्राप्त होने पर दिलाराम के सौन्दर्य मे निखार आ जाता है । अपने बूढ़े पति नबाव समरू से उसे काम –तुष्टि नहीं हो पाती , तब टॉमस और फिर वशीर द्वारा जाया गया एक फ्रांसीसी युवक लवसूल (ले बासो) से उसके सम्बन्ध हो जाते है। यहाँ ऐतिहासिकता तो यह है कि टॉमस और लवसूल से कुछ सैनिक मामलों पर खींचतान हो गयी थी, किन्तु उपन्यासकार उस मनमुटाव का कारण मानता है कि बेगम समरू का फ्रांसीसी युवक लवसूल की ओर झुकरना। यह इतिहास अठ्ठारहवीं शताब्दी के अन्तिम पच्चीस वर्षों की गाथा है। इस काल में विदेशी शक्तियाँ विशेषकर अंग्रेज और फ्रांसीसी मराठा साम्राज्य को नष्ट कर हिन्दुस्तान में अपना प्रभुत्व जमाने की प्रबल हौंस लेकर काम कर रही थीं । नवाब समरू इन दिनों दोनों शक्तियों से अत्यधिक चौकन्ना रहता था। उपन्यासकार ने उपन्यास में बेगम समरू को बेहद कामुक और काम पीड़िता के रूप में चित्रित किया है। टॉमस द्वारा सुव्यवस्था आदि से सम्बन्धित कथा न तो इतिहासपरक है और न उपन्यास में कथा दृष्टि से विश्वसनीय लगती है। आगरा का किला मराठों से उसने फतह किया, लवसूल की सहायता से आगरा का सुप्रबन्ध कराया और इतना ही नहीं, अपितु समरू की मृत्यु के पश्चात् वह फिर सिरधना लौट आई और वह जीवनभर रही ।

इसके कथा प्रभाव को समग्रता में प्रकट करते हुए डॉ0 सत्यपाल चुघ ने लिखा है– "एकान्त बेगम समरू केन्द्रित होने के कारण यह उपन्यास चरित्र–प्रधानता का आभास देता है। इसमें गहन मानमिक आदतों या मनोवैज्ञानिक जटिलताओं की रहस्यजनित चारित्रिक रोचकता इतनी नहीं, जितनी योजनाबद्ध सुगठित एवं प्रवाहशील कथा की या "दिल एवं देश" या देह एवं देश की कामनाओं की तृप्ति के लिए रोमांचक घटनाओं की रोचकता है।"[1] "सात घूघंटवाला मुखड़ा" राजनीतिक उद्देश्य और पृष्ठभूमि पर आधारित होने पर भी मुख्यतः श्रृंगारिक रचना है। डॉ0 चुघ के अनुसार – यह नागर जी के उपन्यासों की गिनती बढ़ा सकता है,

---

1 डॉ0 सत्यपाल चुघ – आस्था के प्रहरी, पृष्ठ 128

गौरव नहीं"[1]

उपन्यासकार ने अपनी सुविधा तथा कथानक को अधिक रोचक बनाने के लिए बेगम समरू के जीवन से सम्बन्धित ऐतिहासिक घटनाओं में किंचित फेर–बदल की है, जो उपन्यासकार के लिए कभी–कभी आवश्यक भी हो जाती है। उपन्यास के प्रमुख चरित्र समरू, जुवाना बेगम, लवसूल, टॉमस वशीर खाँ, और महबूबा है। इन पात्रों के माध्यम से उपन्यासकार उपन्यास की कथा का निर्माण कर उस काल की सामाजिक परिस्थिति का चित्रण करता है। इस उपन्यास की भाषा कवित्व पूर्ण, प्रवाहमय, मनोरंजक तथा उर्दू की मिठास से परिपूर्ण है । यथा– "याद रखो दिलाराम की सियासत भी पेशेवर रक्कासा होती है। उसके पास दिल नहीं होता और कोई हुस्न की मलिका, ऐसी बेदिल सियासत को अपनी चेरी बनाए बगैर तख्तोताज की मलिका बन ही नहीं सकती ।"[2]

<u>"एकदा नैमिषारण्ये"</u>

पौराणिक पृष्ठभूमि पर आधारित "एकदा नैमिषारण्ये" (1972) नागर जी का ऐतिहासिक – सांस्कृतिक उपन्यास है। पौराणिक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर आधारित नागर जी का उपन्यास विपुल ज्ञान भण्डार का एकत्र संग्रह है। शीर्षक की भांति और पृष्ठभूमि के अनुरूप पौराणिक संस्कृति–निष्ठ भाषा में लिखा गया यह आख्यान अपने उद्‌देश्य का बहुत दूर तक प्रसार करता है। यह उपन्यास पौराणिक संदर्भों से युक्त ऐतिहासिक घटनाक्रम में राजनीतिक और सामाजिक पृष्ठभूमि को प्रस्तुत करता है । लेखक की व्यापक एकदेशीयता ने एक विशेष भूखण्ड को समक्ष रख के भी सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति को ही दृष्टिगत बनाया है ओर उसे आधुनिक मानवताबोध की संवेदनशील दृष्टि दी है । इस विशाल ओर ज्ञानवर्धक उपन्यास में नागर जी ने चन्द्रगुप्त प्रथम तथा उनके पुत्र समुद्रगुप्त (समय लगभग 320–380ई0) कालीन इतिहास को आधार बनाकर पौराणिक कथाओं और प्रसंगों को अपने प्रौढ़ चिन्तन के आधार पर आधुनिक संदर्भ प्रदान किया है । ऐतिहामिक घटना–क्रम में उपन्यासकार ने गुप्तवंश के अनिरिक्त नाग, भारशिव वाकाटक लिच्छवी तथा अन्य राज्यों की राजनैतिक गतिविधियों

---

1. डॉ0 सत्यपाल चुघ – आस्था के प्रहरी , पृष्ठ 133
2. सात घूँघट वाला मुखड़ा – पृष्ठ – 13

और उनकी शक्ति का उल्लेख कर तत्कालीन ऐतिहासिक सामग्री को अत्यन्त कुशल रीति से वृहद कथानक में संजोया है। पौराणिक -काल्पनिक प्रसंगों को ऐतिहासिक धरातल पर सदी ऐतिहासिक चेतना से सम्पृक्त करते हुए उपन्यासकार ने उनकी तर्कसंगत वैज्ञानिक व्याख्या की है। इस प्रकार प्रतिपाद्य की दृष्टि से हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में यह एक अभिनव प्रयोग है। ऐतिहासिक- पौराणिक संदर्भों पर आधारित इस उपन्यास में लेखक ने भारशिवों और वाकाटकों के शासनकाल में हुए महान सांस्कृतिक धार्मिक आन्दोलन का उल्लेख किया है । सुदूर अतीत में अवध के सीतापुर जिले में आबाद नैमिषारण्य में चौरासी हजार संतों का सम्मेलन हुआ था। जिसमें सूत जी ने 12 वर्षों तक सारे पुराण, भागवत, महाभारत आदि ग्रंथ सुनाये थे। पौराणिक कल्पना के अनुसार उस सम्मेलन में एक लाख श्लोकों वाली महाभारत संहिता का पारायण तथा अन्य पुराण ग्रंथों के पठन-पाठन से एक धर्म की समन्वयकारिणी भावना को ही प्रश्रय दिया गया। परन्तु "नागर जी" ने चौरासी हजार सन्तों के उस पौराणिक सम्मेलन का राष्ट्रीय महत्व आँका है । नागर जी ने भूमिका में उपन्यास के मूल उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए कहा है - "नैमिष आन्दोलन को ही मैंने वर्तमान भारतीय या हिन्दू संस्कृति का निर्माण करने वाला माना है। वेद, पुनर्जन्म, कर्मकाण्डवाद, उपासनावाद, ज्ञानमार्ग आदि का अंतिम रूप से समन्वय नैमिषारण्य में ही हुआ । अवतारवाद रूपी जादू की लकड़ी घुमाकर परस्पर विरोधी संस्कृतियों को घुला-मिलाकर अनेकता में एकता स्थापित करने वाली संस्कृति का उदय नैमिषारण्य में हुआ और यह काम मुख्यतः एक राष्ट्रीय दृष्टि से ही किया गया था ।"[1]

नैमिष के सांस्कृतिक आन्दोलन से पूर्व सम्पूर्ण आर्यावर्त खण्ड-खण्ड होकर अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित हो चुका था। विभिन्न जातियों और धर्मों के आधार पर अलग-अलग राज्य स्थापित करने के उद्देश्य से लोग संघर्षरत थे। इन सभी परिस्थितियों को दृष्टिगत करते हुए इस उपन्यास के वृहद् कलेवर में लेखक ने अनेकताओं और विचित्रताओं से युक्त विशाल भारत राष्ट्र को एक संगठित राष्ट्र के रूप में देखने का भव्य स्वप्न संजोया है तथा प्राचीन नैमिष आन्दोलन की भावनात्मक एकता वाली समन्वय कारिणी नीति को पूर्णनिष्ठा के साथ यथामति जानकर यथा शक्ति रोचकता के साथ उपन्यास में प्रकट किया है । उस

---

1 अमृतलाल नागर - एकदा नैमिषारण्य, अपनी बात, पृष्ठ-13

समय धर्मावलम्बियों की अपनी भेदनीनि और फूट से देश की आन्तरिक शक्ति नष्ट हो रही थी। हर एक अपने देवता और धर्म को बड़ा तथा दूसरे देवों को छोटा मानकर एक दूसरे के लिए घृणा का प्रचार करता था। विभिन्न धर्मा, जातियों और संस्कृतियों के भेदभावगत संघर्षों की स्थितियों ने देश को विश्रृंखलित कर दिया। भार्गव ऋषि सोमाहुति और वैष्णव मुनि नारद विश्रृंखलित देश को समन्वयकारिणी प्रतिभा से एकसूत्र में बाँधने का संकल्प करते हैं। वे अनेक महासत्रों का आयोजन करते है। उन्हीं महासत्रों में महाभारत जैसे महाकाव्य का गिरागुरू गणपति के द्वारा लेखन कार्य सम्पन्न होता है। अनेक लोक कथाओं के समन्वय और एकत्र करने के लिए पुराणों ओर भागवत के मूलग्रंथ श्रीमद्भागवत् की रचनाकार वैष्णव का प्रचलन किया जाता है । इसी भक्ति सम्प्रदाय के प्रचलनहेतु सोमाद्रुति और नारद देश के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक प्रचार करते हुए दिखलाई देते है ।

सोमाद्रुति भार्गव अपने पिता के संकल्प पुत्र थे। उनके पिता ने एक लाख श्लोकों वाली महाभारत संहिता उन्हें कंठस्थ करवाई थी – लिखित प्रांते उनके प्रतिद्वन्द्वी दुष्ट गुरू भाइ बौद्ध स्थविर भृगुवत्स द्वारा नष्ट कर दी जाती हे । अतः वे गिरागुरू गणपति महाराज से महाभारत लिखवाते है । नागर जी ने यहाँ महाभारत लिखिने वाले व्यास जी की संज्ञा भार्गव सोमाद्रुति को दी है और गणेश जी की कल्पना गणपति महाराज में की गई है। भागवत धर्मा सोमाद्रुति एक धर्म की समन्वयकारिणी भावना का प्रसार करते है। उनके लिए विभिन्न पूजा पद्धतियों राष्ट्रीय है । सोमाहुति कर कथन है – "किसी देवता को मानो, किसी भी धर्म के अनुयायी बन के अपने प्रभु को प्रणाम करों, वह "सर्व देव नमस्कार, केशवं प्रति गच्छाति।" भार्गव कभी राम की महिमा सुनाते, कभी विष्णु, शिव, सूर्य, ऋषभ, भरत, महावीर, बुद्ध का गुणगान करने लगते ।"[1]

अस्थिर लोक मानस को जीने के लिए आस्था का चुम्बक चाहिए इस आस्था को उद्‌बुद्ध करने के लिए राजनीतिक और सामाजिक धर्मक्रान्ति आवश्यक है। राजनीति, अथनीति और सम्प्रदायों तथा जन–जातियों की संगठन– नीति लोक जीवन को शासित और प्रभावित करती है। इसीलिए नारद को व्यापक दृष्टि और भागेव व्यास की भाव–निष्ठा लाकोपासिका

---

1. अमृतलाल नागर: एकरा नैमिषारण्ये, पृष्ठ– 325

नीति–रीतियों को प्रभावित करना आवश्यक मानती है। इसी हेतु नैमिषारण्य का सांस्कृतिक आ ोलन राजनीति और सामाजिक गतिसम्बन्धित है । सामाजिक भावक्रान्ति लाना चाहते है, और संगठन आदि तत्वों पर बल देते है। उनका मत है कि "सामाजिक भाव–क्रांति का कार्य सम्पन्न हुए बिना कुशल से कुशल प्रशासक भी भारत खण्ड की रखा नहीं कर सकेगा और न तुम्हारी अतुल लक्ष्मी ही कोई काम आएगी । असंगठित , अव्यवस्थित समाज सदा दुर्बल रहता है, भले ही उसके व्यक्तियों में भीम, कर्ण और अर्जुन से महायोद्धा ही क्यों न हो । कलिकाल में संघ ही शक्ति है ।[1]

नैमिष आन्दोलन एक ऐसे प्रयास की कडी है जिसके अन्तर्गत सामाजिक भाव क्रान्ति लाने के लिए जन–मन के भेद–भाव को मिटाकर एक विराट समष्टि चेतना को जगाना आवश्यक है । इस देश में अनेक जातियाँ अपने विशुद्ध संस्कारों से युक्त एक साथ रहते है। इन सभी जनजातियों को एक संस्कार सूत्र में बाँधने का कार्य बहुत प्राचीन काल से ही प्रारम्भ हो गया था। सोमाहुति आर्य–अनार्य समस्त जन–जानियों को समन्वित कर एक महाप्रचण्ड शक्ति उत्पन्न कर इस गौरवशाली भारत देश की अखण्डता की रक्षा करने के लिए कृत संकल्प है। इन सब कथाओं के अतिरिक्त भी अनेक कथा प्रसंग इस उपन्यास में है जैसे – नारद और वृन्दावन की वृन्दाओं का प्रसंग, चुंगो अधिकारी प्रसंग, प्रज्ञा सोमाहुति भार्गव प्रसंग, अयोध्या मे सरजू मैया तथा इज्या का मिलन प्रसंग, रेणु का मन्दिर का ध्वंस एवं वन में शत्रुओं ्रारा अइया की हत्या और इज्या का शौर्य प्रदर्शन प्रसंग, चन्द्रगुप्त और काशी के सेठ धनक का प्रसंग, नागेश्वर राज की आत्महत्या, आन्ध्रप्रदेश के सेनापति विन्ध्यशक्ति , प्रवरसेन, नागषेण और महामंत्री यज्ञदत्त प्रसंग, सोमादुति भार्गव– इज्या तथा भारतचन्द्र– प्रज्ञा का मथुरा में एक साथ निवास करना, मथुरा में भृगुवत्स का सोभाहुति को बन्दी बनाना, सेठ कौरोष आदि के प्रयास से सोमाहुति को मुक्त करना, यास्मीन और वेश्या शाहगुल प्रसंग, महास्थविर भृगुवत्स के पापों का झंडाफोड़ , सोभादुति की पद्मावती तथा नैमिषारण्य यात्रा, प्रवरसेन" का चन्द्रगुप्त को युद्ध के लिए ललकारना यज्ञदत्त द्वारा वाकाटक महासेनपति नागषेण को पागल बनाना, भारतचन्द्र प्रज्ञा, इज्या और सोमाहुति भार्गव के पुत्र प्रचेता की नौका पर शत्रुओं का आक्रमण, इजया की मृत्यु, प्रवरसेन एवं चन्द्रगुप्त के मध्य युद्ध की सम्भावना, गणपतिनाग और सामाहुति

---

1 अमृतलाल नागर : एकदा नैमिषारण्ये, पृष्ठ– 329

का प्रयास से सन्धि प्रस्ताव. त्रिपुरा में नारद का गृहस्थ जीवनायापन आदि प्रसंग। यह उपन्यास सम्पूर्ण आर्यावर्त के इतिहास में मानववाद की प्रतिष्ठा करता है, "बसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना इस समग्र ऐतिहासिक चेतना का मूल स्वर हे। यह मूल स्वर ही प्राचीनता को नवीनता का संदेश देता है । व्यक्ति और समाज का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध जनहित के लिए हर युग में आवश्यक रहा है, चाहे शास्त्र सत्ता राजतांत्रिक हो अथवा प्रजातांत्रिक । आवश्यकता तो इस बात की है कि व्यक्ति की युक्ति समाज की शक्ति बनकर मुखरित हो। जहाँ लोक की निष्ठा राष्ट्रपरक हो सके , वही मानव धर्म शाश्वत सत्य है।

उपन्यास के अन्त में सोमाहुति भार्गव अपने पुत्र प्रचेता को नैमिषारण्य की व्यास गद्दी पर आसीन करते हैं। बसन्त पंचमी के दिन द्वितीय महासत्र की समाप्ति के अलक्ष्य में दीक्षान्त समारोह का आयोजन होता है। व्यास प्रचेता पाठ करते है –

"धर्मक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः ।
मामकाः पाण्डवाश्चैप किमकुर्वत संजयः

तीसरे महासत्र् के दीक्षान्त समारोह की योजना बनायी जाती है। भार्गव अपने पुत्र ब्यास प्रचेता के सम्मुख विवाह का प्रस्ताव रखते है और "गयन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तुये भारत भूमि भागे" कहकर उपन्यास का समापन होता है। इस उपन्यास में एक विशाल फलक पर व्यापक घटना क्रम को चित्रित किया गया है।[1] कौशाम्बी, मथुरा, पद्भावती, अयोध्या लखनऊ तथा नैमिषारण्य आदि प्रमुख नगरों की भव्यता, प्राकृतिक छटा तथा वहाँ की राजनीतिक , सामाजिक, धामिक, आर्थिक परिस्थितियों घटनाओं की व्यंजक व्यौरों के साथ चिमण किया गया है।[2] नागर जी ने इस उपन्यास में रहन–सहन, वेश–भूषा, भाषा दृष्टि, भिन्न–भिन्न देशों की परम्पराओं का भी उल्लेख किया है। यह नागर जी का सफलता सांस्कृतिक संचेतना के भरा उपन्यास हैं, जिसमें उन्होंने अपनी उर्वर कल्पना का प्रचुर प्रयोग किया है।

---

1 एकदा नैमिषारण्ये, पृष्ठ – 324

2. एकदा नैमिषारण्ये, पृष्ठ – 264

"मानस का हंस"

मानस का हंस (1972) श्री अमृतलाल नागर जी की प्रौढ़ एवं श्रेष्ठ रचना है। नागर जी ने गोस्वामी तुलसीदास के प्रति इस उपन्यास में कलात्मक श्रद्धांजलि अर्पित किया है। इस उपन्यास में "नागर जी" ने तुलसी बाबा का जीवन चरितों, किंवदंतियों तथा तुलसी की स्वयं रचित रचनाओं में प्रस्तुत विचारों के आधार पर लिखा है। अमृतलाल नागर ने तुलसीदास जी के व्यक्तित्व का समन्वयात्मक पहलू पाठकों के समक्ष रखने का प्रयत्न किया है। "मानस का हंस" के तुलसीदास का समस्त जीवन संघर्षों के घात प्रतिघातों से अस्तव्यस्त होता हुआ आस्था के चरम उत्कर्ष को प्राप्त होता है। "मानस का हंस" के संबंध में डॉ० विवेकी राय का कथन भी बड़ा ही तर्कसंगत है – "तुलसी के बीहड़ संघर्षरत जीवन और लोकप्रिय धार्मिक नेतृत्व को इनिहास, साहित्य और श्रद्धासिक्त अनुश्रुतियों के बीच से निर्विवाद और अविरोधी स्तर पर निकाल ले जाना वास्तव में एक कठिन काम था जो आलोच्य कृति में सम्भव हुआ है। वैष्णवता, वैष्णवी भक्ति और रामभक्ति "रामचरित मानस" के बाद इस "मानस का हंस" में ही दीख रही है और ऐसा लगता है कि सृजन मूल में ऐसा कोई असाधारण अन्तः रसावेश अवश्य है जो सामान्य उपन्यास की रचना वृत्ति से भिन्न है ।"[1]

उपन्यास का प्रारम्भ तुलसी की पत्नी रत्नावली की मृत्यु घटना के साथ होता है। उस समय गोस्वामी तुलसीदास जी वृद्धावस्था को प्राप्त हो चुके थे। उनसठ वर्ष लम्बे अन्तराल के बाद गोस्वामी जी ने अपने गांव राजापुर आकर रत्नावली का दाह–संस्कार किया। उनके साथ राजा भगत, संत बेनीमाधव, कैलाशनाथ, पंडित रामू आदि भी राजापुर आते हैं। बेनी माधव जी को पहली बार गुण जन्मभूमि में आने का सुयोग मिलता है उन्हें गुण के ऐहिक जीवन के विषय में जानने की उत्सुकता होती है और वह अपनी जिज्ञासा गोस्वामी जी के सामने रखते हुए उनसे अपने जीवन वृत्त पर प्रकाश डालते के लिए निवेदन करते है। प्रारम्भ में तुलसीदास जी उक्त विषय में बताने से आनाकानी करते है, किन्तु बेनीमाधव जी के आग्रह करने पर वे अपने अतीत जीवन के रहस्यों पर धीरे–धीरे प्रकाश डालना शुरू करते हैं।

---

1 डॉ० विवेकी राय, "काम और राम की महान संघर्ष गाथा" शीर्षक लेख, समीक्षा, अंक–6, वर्ष 1976

गोस्वामी जी ने कभी अपने प्रारम्भिक जीवन के साथी राजाभगत, बकरीदी काका और कैलाशनाथ के माध्यम से अपने जीवनवृत्त और उस काल की परिस्थितियों पर प्रकाश डलवाया, कभी स्वयं एक-एक घटना का वृत्त प्रस्तुत किया और कभी अतीत की स्मृतियों में डूबकर पूर्वदीप्ति (फ्लैश बेक) के रूप में आत्मकथा प्रस्तुत की। उपन्यास का अधिक अंश इसी रूप में है। मुगल सम्राट हुमायूँ के शासनकाल के समय गोस्वामी तुलसीदास जी जन्म हुआ था। राजनीतिक दृष्टि से देश में अनिश्चितता का वातावरण था। हुमायूँ ओर शेरशाह सूटी के संघर्ष का आतंक चतुर्दिक व्याप्त था। देश पर अकाल की काली छाया मंडरा रही थी । ऐसी ही समय में विक्रमपुर के पंडित आत्माराम दुबे के घर एक बालक का जन्म हुआ, जो प्रारम्भ में रामबोला और बाद में "तुलसीदास" नाम से लोक-विख्यात हुआ। गोस्वामी जी का जन्म होते ही उनकी जन्म देने वाली माँ हुलसी का निधन हो जाता है। आत्माराम जी ने ज्योतिष गणना के आधार पर नवजात शिशु को अभुक्त मूल नक्षत्र में जन्मा हुआ ठहराया और ऐसे आलक को माता-पिता के लिए दोषी ठहराया। इस प्रकार गोस्वामी जी का बचपन यमुना पार की एक बूढ़ी भिखारिन पार्वती माँ की वात्सल्य-छाया में प्रारम्भ हुआ और यह चार पांच साल का नन्हा-सा बालक रामबोला गांव-गांव टोले मुहल्ले में भिक्षा के लिए भटकने लगा। कहीं से उसे भिक्षा मिलती है, कहीं से दुत्कार। अपमान का घूँट पीते पीते रामबोला ऊब गया। एक दिन वह पार्वती अम्मा से कहता है- "हमको भीख माँगना अच्छा नहीं लगता है अम्मा? द्वारे-द्वारे रिरियाओं, गिड़गिड़ाओं, कोई सुनै, कोई न सुनै गाली दे । यह रोज-रोज का दुख हमसे सहा नहीं जाता है।"[1] पार्वती अम्मा रामबोला को सांत्वना देते हुए रामभक्ति के लिए प्रेरित करती है । एक दिन पार्वती अम्मा भी इस लोक से चल देती है और बालक "रामबोला" अकेले ही जीवन यापन करने के लिए विवश हो जाता है। एकदिन गांव के एक लड़के से झगड़ा होता है और उसके फलस्वरूप रामबोला की मड़ैया में आग लगा दी जाती है और उसे मारपीट कर गांव से निकाल दिया जाता है। अब दर-दर की ठोकरें खाना और खुले आकाश के नीचे यहाँ वहाँ रात व्यतीत करना बालक रामबोला की नियति बन जाती है । एक दिन इस जीवन से तंग आकर सरयू के पावन पट पर स्थित एक हनुमान मन्दिर का आश्रम लेता है। हनुमान जी का चबूतरा झाड़-पोछकर और नहा-धोकर हनुमान जी के आगे नतमस्तक होकर वह

---

1 मानस का हंस, पृष्ठ - 52

वह कहता है – "अब हम तुम्हीं से माँगेंगे हनुमान स्वामी अब किसी के पास नहीं जायेंगे। तुम हमारा पेट भर दिया करो। हम तुम्हारा स्थान खूब साफ कर दिया करेंगे।"[1] अचानक एक दिन उसकी भेद बाबा नरहरिदास जी से होती है। उनकी शरण में पहुँचते ही राम बोला भक्तिपथ का पथिक बन जाता है । बाबा रामबोला का नाम बदल कर तुलसीदास रख देते हैं और उसे परम रामभक्ति काण आशीर्वाद देते हैं। बाबा से रामानुजी सम्प्रदाय में दीक्षित भी करते है । बाबा नरहरिदास के स्वर्गवास हो जाने के उपरान्त गुरूपाद शेष सनातक महाराज तुलसी के अभिभावक हो गए। उन्हीं की स्नेहछाया में उनके .साहित्यिक जीवन का सूत्रपात हुआ। इसी बीच तरूणी गायिका मोहनी तथा मेघाभगत का प्रसंग आता है। तुलसीदास जी उस पर मुग्ध होते है, उन्हें मोहिनी की संरक्षिका बाई की कठोर फटकार भी सुननी पड़ती है । तुलसी को राम–काम क अन्तर्द्वन्द्व में जीवन के यथार्थ का बोध होता है और वे तीर्थाटन पर निकलते है । वे हरिद्वार, काशी, अयोध्या, सारो, सूकरखेत, चित्रकूट का भ्रमट करते हुए अपनी जन्मभूमि विक्रमपुर पहुँचते है । उनकी भेंट रामाभगत से होती है । राजाभगत के व्यवहार से खुश होकर तुलसीदास जी विक्रमपुर गांव का नाम करण राजापुर कर देते है । यहीं तुलसीदास जी का विवाह दीनबन्धु पाठक की इकलौती पुत्री रत्ना से होता है । वे गृहस्थ जीवन व्यतीत करने लगते है ।स्त्री–पुरूष के संबंधों की मनोवैज्ञानिक व्याख्या रूप में रत्नावली की प्रतारणा तुलसी को वैराग्य का संकल्प देती है – "स्त्री और पुरूष में यही तो अन्तर होता है । नारी भले ही कामवश माता क्यों न बने किन्तु माता बनकर वह एक जगह निष्काम भी हो जाती है और पुरूष पिता बनकर भी दायित्वबोध भली प्रकार से अनुभव नहीं करता । वह निरे चाम का लोभी है, जीव में रमे राम का नहीं ।"[1] तुलसीदास जी राम की भक्ति में डूब जाते है । नागर जी ने उनके अन्तर्द्वन्द्व को सशक्त वाणी दी है – "नारी की आकर्षण शक्ति और सौन्दर्य ने दो बार हमें राम से विलग कर दिया, नहीं तो इतने वर्षों में यह अभागा तुलसी सौभाग्यवान बन गया होता । शंकराचार्य सच ही कह गए है । मोक्षार्थी के लिए नारी नरक का द्वार' है ।[2] तुलसीदास जी विभिन्न व्यावधानों को झेलते हुए जेठ की तीज को "रामचरित मानस" का समापन करते है । यहीं राजाभगत और रत्नावली से उनकी भेंट होती है ।

---

1. मानस का हस – पृष्ठ– 290
2. मानस का हंस पृष्ठ – 292

गोस्वामी जी प्लेग का शिकार होकर सं0 1680 श्रावण कृष्ण तृतीया की ब्रह्म बेला के नश्वर जगत से महाप्राण करते है ।

तुलसीदास जी संकल्प और कर्म के जीवन प्रेरक रहे है । नागर जी अपनी कल्पना और मानस के पूर्ण मानव को तुलसीदास के व्यक्तित्व में पाया है । यह एक वृहद् उपन्यास है । इसकी कथावस्तु भाव और उद्देश्य के निर्वाह में पूर्ण सफल है। इस उपन्यास में भाषा का माधुर्य भी मिलता है । कथा संगठन मे पर्याप्त नाटकीयता है। प्रो0 'विष्णुकांत शास्त्री के शब्दों में उचित ही है – कुल मिलाकर कथा विन्यास न घिसी–पिटी शैली पर है, न इतना प्रयोगात्मक है कि पाठक उसकी भूल –भुलैया में भटक जाए। मानस चतुःशती की सामयिक प्रेरणा ने तुलसी के प्रति नागर जी की गहरी श्रद्धा को सर्जनात्मकता के स्तर पर "मानस का हंस" में जिस रूप में अभिव्यक्ति किया है, उसकी वर्णछटाओं के प्रति कहीं गम्भीर कहीं सामान्य असहमति हो सकती है, किन्तु इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि नागर जी ने इसके द्वारा तुलसी की मानवीयता को कलात्मक रूप से उद्घाटित कर हिन्दी के जीवन चरितात्मक उपन्यासों में नया कीर्तिमान स्थापित किया है।"[1]

नागर जी की औपन्यासिक चेतना का चरमोत्कर्ष "मानस का हंस" में दिखाई पड़ता है । रोचकता इस उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता है । यह उपन्यास कला, विचार गांभीर्य और भाषा आदि की दृष्टि से नागर जी की सफल कृति है। समग्रतः "रामचरित मानस" के प्रतिष्ठापक गोस्वामी तुलसीदास के गौरवपूर्ण व्यक्तित्व को आधुनिक चेतन से संयुक्त कर देश, काल, संस्कृति को नवीन आयाम देने में नागर जी का उपन्यास " मानस का हंस' हिन्दी साहित्य का एक अनुपम एवं सशक्त सोपान है। यह वह उपन्यास है जिसमें व्यक्ति के भीतर युगधर्म और युगर्ध में संस्कृति व मानवता के मंत्रयुक्त क्षण लिपिबद्ध होते चले गये है।" [2]

---

1 प्रो0 विष्णुकांत शास्त्री – समीक्षा वर्ष 7 अंक, 9–10, पृष्ठ–88 जनवरी–फरवरी 1973

2 डॉ0 सुदेश बत्राः अमृतलाल नागरः व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्–त पृष्ठ–172.

"नाच्यौ बहुत गोपाल"

यह नागर जी का नवीन शिल्प–शैली का आधारित मौलिक उपन्यास है। नाच्यौ बहुत गोपाल (1978) मेहतर जाति की युग युगीन रिसती पीडा का अनूठा दस्तावेज है। मेहतर या भंगी समाज की सवर्णसमाज से कटी हुई अपनी अलग–अलग दुनिया रही है। इस दुनिया से कथित सवर्ण हिन्दू समाज को परहेज रहा है और वह इससे सप्रयास एक घृणित अलगाव रखता रहा है । पशुओं से भी अधिक घृणित व्यवहार इन अछूतों के साथ किया जाता है। सामाजिक विषमता का यह अभिशाप–चक्र युगों से निम्नवर्गीय समाज को त्रस्त करता रहा है। अभी तक भंगी के संघर्षशील जीवन को लेकर हिन्दी में कोई उपन्यास नहीं लिखा गया है । नागर जी ने समाज के इस उपेक्षित अछूत वर्ग के अन्तरंग जीवन में गहरे पैठने का प्रयास किया है और एकत्रित अनुभूतियों को उपन्यास के कलात्मक ढाँचे में प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास की रचनावस्तु मेहतर समाज के अन्तरंग जीवन, मानसिकता आचार–विचार, निषेध मर्यादाओं को केन्द्र बनाकर चलती है। अंशुधर शर्मा (काल्पनिक पात्र) के माध्यम से नागर जी ने एक तरह से इस अस्पृश्य मेहतर समाज का समाजशास्त्री सर्वेक्षण प्रस्तुत कर दिया है । उपन्यास का प्रारम्भ शर्मा जी तथा केन्द्रीय पात्र श्रीमती निर्गुनियों की भेंटवार्ता से प्रारम्भ होता है । शर्मा जी निर्गुनियों के समक्ष, उसके अतीत और वर्तमान जीवन को जानने का प्रस्ताव रखते हैं। उनका उद्देश्य मात्र इतना ही नहीं है कि वे मेहतर समाज के अंतरंग जीवन, इतिहास, उनकी धार्मिक , सांस्कृतिक, मान्यताओं, रीति–रिवाज, रहन–सहन , वेश–भूषा, सुख–दुख, सामाजिक–राजनीतिक जीवन आदि को वर्तमान संदर्भों से जोड़कर प्रस्तुत करें । उपन्यास में निर्गुनियों के जीवन की विभिन्न छोटी–बड़ी घटनाओं के माध्यम से मेहतर–समाज के अतीत और वर्तमान की झाँकी प्रस्तुत की गयी है । उसके पिता एक ब्राह्मण महाजन पंडित बटुक प्रसाद के मुंशी थे। शैशवावस्था में हो मातृविहीन हो जाने के कारण निर्गुनियों का बाल्यजीवन नाना–नानी के आदर्शों, संस्कारों एवं धार्मिक विचारों के बीच व्यतीत हुआ । नाना–नानी के मृत्योपरान्त उसके पिता ने उसके अपने मालिक पंडित बटुक प्रसाद के हाथों सुपुर्द कर दिया। परिवेशगत उच्छृंखलता ने निर्गुनिया का रास्ता खराब कर दिया। बबुआ सरकार, खड़ग बहादुर, बसत लाल, मसुरियादीन आदि उसके प्रेमी थे। अन्ततः उसका विवाह वृद्ध मसुरियादीन के साथ करा दिया गया। पति द्वारा यौनतृप्ति न पाकर वह मेहतर मोहना के साथ भाग जाती है, जो उसे मेहतरानी बनाकर

स्वयं डाकू बन जाता है। नागर जी ने एक नारी के जीवन संघर्ष को सूक्ष्मता और गहराई से चित्रित किया है । एक ओर निर्गुनयां मेहतर का धर्म पालने के लिए अपने जन्मजात संस्कारो से जूझती है तो दूसरी ओर अपनी काम क्षुधा से पुरूष देह की बावली भूख से लड़ती है। काम उद्धेलित निर्गुनियाँ स्वयं को मोहन की सती बना लेनें की एकनिष्ठता में बहुत ऊपर उठ गई है। नागर जी ने मेहतर वर्ग के समस्त समाजशास्त्रीय अध्ययन और सर्वेक्षण पर आधारित इस उपन्यास को जीवन्त, आत्मीय और प्रामाणिक दस्तावेज बना दिया है।

"खंजन-नयन"

यह उपन्यास साधकभक्त शिरोमणि सूरदास के व्यक्तित्व और जीवन पर आधारित है। माधुर्य भाव से प्रभावित होकर कृष्णमय हो जाना ही सूर की भक्ति साधना की चरम परिणति है। नागर जी ने इसी भावसाधना को सूर की जीवन साधना का लक्ष्य मानकर प्रस्तुत उपन्यास को "खंजन-नयन" नाम दिया है। उपन्यास के अन्त में नागर जी के सूरदास भी माधुर्य भाव से प्रभावित होकर कृष्णमय हो गये है "खंजन नयन रूप रसमाते"। मूलतत्व के महासमुद्र और प्रज्वलित अंधकार में अपने आपको विलीन कर देने की आकुल व्यग्रता उनके मन की आँखें खोल देती है । तन की आँखे न होते हुए भी अपनी दिव्य दृष्टि सम्पन्न मन की आँखों (खंजन नयनों) से रूप रस में मस्त होकर सूर अतिशय "चारूचपल" नयनवाले अपने इष्टदेव के दर्शन करते है । खंजन नयन के सूरदास परिस्थितियों के थपेड़ों से परिचालित , मानवीय सबलताओं से दुर्बलताओं से युक्त संवदेनशील व्यक्ति है। "खंजन नयन" की सार्थकता को स्पष्ट करते हुए डॉ0 विजयेन्द्र स्नातक ने लिखा है - "जिन नयनों में प्रकृति का वाह य रूपाकार देखने का सामर्थ्य न था उन्हीं में परमसत्ता के अपार ऐश्वर्य को हस्तामलकवत् देखने की दिव्य ज्योति का आलेक भरा हुआ था। इसी अलौकिक आलोक को पाकर सूरदास खंजन नयन बने थे । नागर जी ने सूरदास के चरित्र-चित्रण में इसी दिव्यालोक को विविध संदर्भों में उभारने का प्रयास किया है।"[1]

---

1 विजयेन्द्र स्नातक - "समीक्षा" - अप्रैल -जून 1982, पृष्ठ-9

इस उपन्यास के प्रारम्भिक सोलह परिच्छेदों में सूर का मानस संघर्षरत साधारण व्यक्ति का रूप उभरता है । इसके बाद सच्चे बीतरागी भक्त सूरदास का रूप सामने आता है । जन्मांध सूर ने बचपन में माँ की प्रेरणा से राधा गोपाल मन्दिर में कृष्ण विग्रह का स्वर्श कर उन्हें ही अपना सच्चा सखा मान लिया और जीवन भर सुख-दुःख, पुण्य-पाप, राग-विराग , प्रेम-घृणा, उत्थान-पतन सभी स्थितियों में ये श्याम सखा उनके साथ रहे और उन्हें प्रबोधते रहे । सूर को अहर्निश अपने भीतर रहने वाले इस श्याम सखा का सहारा ही दिव्य दृष्टि का सहारा है । उपन्यास में सूरास के चरित्र बिन्यास में मानवीय गुणों पर ही लेखक की दृष्टि रही है और वह एक संघर्षरत सबल मानव को अंकित करने में सफल रहा है। युवावस्था प्राप्त करने पर "सूर" को कामभोग की इच्छा जागती है। सूर अपनी इस दुर्बलता में गहरे आत्मा संघर्ष की प्रक्रिया से गुजरते है । सूर और कन्तों के सात्विक सम्बन्धों का चित्रण कर लेखक ने सूर की पवित्रता को ही उजागर किया है सूर कामरूपी अग्नि पर अपनी आसक्ति , अपनी वासना अपने मोह और अपने अहं को पकाते है। उपन्यास में तत्कालीन सामाजिक , धार्मिक स्थितियों का भरपूर उद्घाटन हो सका है। उस युग में विदेशी शासकों के द्वारा मूर्तियाँ खंडित हो रही थी तथा आस्था और विश्वास हो रहा था । खंजन नयन एक जीवनीपरक ऐतिहासिक उपन्यास है, जो नागर जी के पूर्व उपन्यासों की कड़ी में एक सफल प्रयास है . जिसमें सूरदास जी का चरित्र नवीन परिकल्पना से व्यक्त हुआ है ।

"बिखरे तिनके"

यह नागर जी द्वारा लिखित आधुनिक समाज तथा भारतीय राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार तथा उसके प्रभाव पर आधारित उपन्यास है । यह उपन्यास में आज की छात्र शक्ति और नेताओं द्वारा उनके दुरूपयोग की कथा है। इसका आरम्भ नगरपालिका के स्वास्थ्य विभाग के हेल्थ अफसर के पी.ए. "गुरूसरन बाबू की कथा" से होता है। गुरूसरन बाबू भ्रष्टाचार की साक्षात् मूर्ति है / इसी उपन्यास में अंग्रेजी मानसिकता की गुलामशाही के प्रतीक नगरपालिका के हेल्थ ऑफिसर डॉ0 गोयल जैसे लोग है, जो खुलेआम व्याभिचार और भाई भतीजावाद फैलाये हुए है । उनकी मूल्यहीनता और विलास चर्चा का कोई अन्त नहीं है। दूसरी कथा नेताओं की है जो कल तक राजा और बड़े जमींदार थे। कभी वे ताकत के बल पर राज करते थे और आज वोट के बल पर । नेताओं के प्रतिनिधि पात्र है।

कुँवर राठौर उर्फ बबलू । सुहागी और सुरसतिया जैसे निचले तबके के भी पात्र है जो अपनी जिन्दगी अपने ढंग से जीने के लिए भी स्वतंत्र नहीं है उनकी नियति की डोरी हमेशा दूसरों के हाथ है । इस उपन्यास का नायक सतसाई प्रसाद उर्फ बिल्लू है जो छात्रों का नेता है । बिल्लू के माध्यम से नागर जी भ्रष्ट लोगों के विरूद्ध आन्दोलन करवाते हैं। इस प्रकार नागर जी ने इस उपन्यास में अपने व्यंग्य के माध्यम से आज की राजनीति पर कठोर प्रहार किया है ।

"अग्निगर्भा"

यह नागर जी की बारहवीं रचना मानी जाती है। इस उपन्यास में नागर जी ने दहेज की समस्या को उसके यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है । आज को उसके यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है । आज दहेज की समस्या दिनोंदिन बढ़ती जा रही है गांव और शहर, सभी जगहो पर दहेज के लिए समाज में कितनी ही बहुएँ मौत के घाट उतार दी जाती है या ऊबकर स्वयं आत्महत्या कर ले रही है । इन्हीं समस्याओं को नागर जी ने एक शिक्षित समाज के माध्यम से प्रस्तुत किया है । भारतीय नारी सदियों से ही पुरूषों के के अत्याचार, यातनाओं को सहती आ रही है। नारी को "आदमी की कामुक, स्वार्थी और घिनौनी इच्छायें "अग्निगर्भा" बना डालती है जो जीवनपर्यन्त धैर्यशील बसुन्धरा की तरह , अपने भीतर विखंडित होने वाली ज्वालाओं को निरन्तर समेटती रहती है। वह जीवन भर अपनी अक्षय सम्पदा लुटाकर भी, आदमी की तृषा को नहीं बुझा पाती और रक्त की अन्तिम बूंद चूसकर भी वह प्यास बना रहता है ।"[1]

आधुनिक युग में रिश्तों का आधार धन है । धन के अभाव में बने हुए रिश्ते भी बिगड़ जाते हैं। सीता एक मध्यवर्गीय परिवार की लड़की है जिसे अपने पिता के घर में घुटन होती है, ऐसी स्थिति में सीता को किसी आश्रय और सहारे की जरूरत पड़ती है । उसे अपने दूर के सम्बन्धी रामेश्वर शुक्ल से सहारा मिलता है। रामेश्वर एक विद्यालय और उससे सम्बद्ध एक ट्रस्ट का अधीक्षक हैं । रामेश्वर अर्थ का लोभी है, उसे "सीता" के अन्दर दहेज की संभावनायें दिखाई देती है । वह सीता के समीप आता है , किन्तु

---

1. अग्निगर्भा – आवरण सामग्री से

रामेश्वर सीता में पत्नी से ज्यादा फलता – फूलता बैंक बैलेंस देखता है। दोनों माता–पिता की इच्छा के विपरीत विवाह कर लेते है । वह सीता का आर्थिक रूप से शोषण करता है, उसके गरीब माता–पिता का भी अपमान करता है। सीता के जीवन में कटुता आती चली जाती है उसे कुछ भी पाने, चुनने का अधिकार नहीं रह जाता । सीता की कमाई को वह दहेज की सामग्री मानता है । सीता के तनिक विरोध मात्र से वह उसे उसके बेटे से भी अलग कर देता है, उसे परिवार द्वारा बार–बार अपमानित भी किया जाता है। यह उपमान सीता के अन्दर छिपे विद्रोह को जगा देता है । वह दहेजलोभी व्यक्ति का विरोध करने लगती है तथा एक दिन ऐसे ही एक दहेज के लोभी के विरूद्ध पुलिस को खबर देती है ओर एक लेख अखबार में लिखती है। उसे बड़ी प्रशंसा मिलती है किन्तु उस परिवार का' एक व्यक्ति उसे अपनी गोली का निशाना बनाता है । जिससे सीता की मृत्यु हो जाती है। इस मुख्य कथा के साथ–साथ नागर जी ने तत्कालीन समाज में व्याप्त विभिन्न कुरीतियों का भी पर्दाफाश किया है । नागर जी ने सामाजिक समस्या पर आधारित इस उपन्यास में यह प्रस्तुत किया है कि स्त्री विद्रोह के लिए आगे आती है, यही इसकी विशिष्टता है।

"करवट"

नागर जी द्वारा लिखित यह उपन्यास सामाजिक ऐतिहासिक स्थितियों पर आधारित है । यह उपन्यास भारतीय समाज के एक घटना बहुल इतिहास को रोचक कथा में रचनान्तरित करने का प्रयास है जिसमें इतिहास ही कल्पना का आधार है। इस उपन्यास का शीर्षक परिवर्तन सूचक है। यह उपन्यास नागर जी के समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण को समझने में सहायक है – इसकी रचनापद्वति भी औपन्यासिक समाजशास्त्र की दृष्टि से संगत है। "निवेदनम्" शीर्षक से लिखित वक्तव्य में नागर जी लिखते हैं –"समय का परिवर्तन इतिहास कहीं पूँजी है। गदर के बाद अंग्रेजी शासन और शिक्षा के प्रभाव से हमारे समाज में एक नई मानसिकता का उदय हुआ था। संघर्ष की प्रक्रियाओं में पुरानी जातीय पंचायतों को नए जातीय एसोसिएशनों ने करारे धक्के ही नहीं दिए, वरन् कालान्तर में उन्हें ध्वस्त ही कर डाला। इन जातीय संघर्षो से ही नई राष्ट्रीयता ने जन्म पाया था।" नागर जी ने तनकुन के द्वारा खत्री जाति और अनेक जाति वर्गों के जीवन यथार्थ को चौक क्षेत्र जैसे परिचित परिवेश में घटित होते हुए इस प्रकार दिखाया है कि गदर के बाद भारतीय जीवन, स्वाधीनता संघर्ष, सांस्कृतिक नवजागरण और सामाजिक संक्रमण को अधिक वस्तुपरक ढंग से प्रस्तुत किया है जिनके आधार पर किसी समय का समाजशास्त्र व्यक्त किया जा सकता

है। तीन–तीन पीढ़ियों की जीवनगाथा के बहाने यह उपन्यास एक बड़े कालफलक पर भारतीय समाज के मूल्य परिवर्तन को प्रस्तुत करता है। "करवट" उपन्यास काण कथानायक बार–बार गिरता है और संभलता है । वह पश्चिमी संस्कृति की चकाचौंध में दिग्भ्रम का शिकार होता है, लेकिन हर मोहभंग के बाद अपनी प्रकृत जीवनधारा की ओर उन्मुख होता है।

नागर जी 19वीं शताब्दी को परिवर्तन की शताब्दी के रूप में देखते थे अवध के ठहराव से परिस्थितियाँ धीरे–धीरे विचलित करती है। उपन्यास का एक पात्र देशदीवर पिता (वंशीधर) की तुलना में ज्यादा प्रगतिशील है । जो धर्म के ऊपरी आडम्बर को चुनौती देता है । वह समाज को वर्गों और वर्णो में बाँटने वाले धर्म को अस्वीकार करता है। ब्रिट्रिश शासन द्वारा लागू करों के दबाव की वजह से भारतीय जनता ने असंतोष व्याप्त हो उठता है । 1857 से 1905 के बीच की यह कथा 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और पूरी 19वीं शताब्दी को घेरती है इस उपन्यास को ऐतिहासिक सामाजिक उपन्यास कहा गया है। "करवट" शीर्षक की कथा वस्तु ऐतिहासिक दृष्टि से भारतीय इतिहास के पुनर्जागरण का दौर प्रस्तुत करती है

<u>पीढ़ियाँ</u>

नागर जी द्वारा विरचित "पीढ़ियाँ" उनका अन्तिम उपन्यास है। इसे प्राय: लोग उनके उपन्यास "करवट" का विस्तार मानते हैं। "करवट" में 1854 से 1902 तक की कहानी कही गयी थी, पीढियाँ में 1905 के स्वदेशी आन्दोलन से लेकर सन् 1986 तक की कहानी कही गयी है । देशदीपक टण्डन जो के पुत्र जयन्त टण्डन और जयन्त टण्डन के पुत्र सुमंत टण्डन और उनके भी पुत्र युधिष्ठिर टण्डन पीढियाँ की कथा के प्रमुख पात्र है । जयन्त टण्डन का विलासी चरित्र उपन्यास में विस्तार पूर्वक चित्रित हुआ है। जो एक प्रतिष्ठित वकील है । उनके जीवन में अनारों और मनोरगा जैसी अनेक स्त्रियाँ आती है । दूसरी ओर वे राष्ट्रवादी होने के कारण लोकप्रिय भी है । हिन्दू–मुस्लिम संबंधों को इतिहास के दायरें में जांचना पीढियाँ के लेखक का उद्देश्य जान पड़ता है।

धर्मान्तरण का इतिहास भी इस कथा के पृष्ठों में अंकित है। किस तरह अल्पसंख्यकों में गरीबी और अशिक्षा का प्रमुख है, और किस तरह उनके सामाजिक चेतना पैदा की जा सकती है । इन प्रश्नों पर उपन्यास की कथा में विचार–विमर्श चला करता

है। उपन्यास का बहुत बडा हिस्सा साम्प्रदायिकता जैसे प्रश्नों पर विचार करने पर प्रेरित करता है। इस उपन्यास में युधिष्ठिर टण्डन अपने दादा जयन्त टंडन की कथा लिख रहा है। यह एक प्रकार से उपन्यास के भीतर उपन्यास लिखने की प्रविधि कही जा सकती है। इसमें नागर जी ने सोच-समझकर अतीत और वर्तमान को प्रस्तुत किया है। "पीढ़ियाँ" उपन्यास में नागर जी ने अधिक से अधिक पीढियाँ अंकित की है , जो भारत का चित्र प्रस्तुत करती है । कुल मिलाकर नागर जी के उपन्यासों में एक सजग, जीवन के प्रति निरन्तर पर्युत्सुक औपन्यासिक संवेदना का सहज विकास देखा जा सकता है। नागर जी आधुनिक कथा साहित्य के ऐसे महत्वपूर्ण लेख हैं जिनके पास इतिहास, संस्कृति, पुरातत्व,0 दर्शन, कला आदि क्षेत्रों की संस्कारशील समझ है और इन ज्ञानात्मक सामग्री इतिहास कम आ पाया है। अमृतलाल नागर हमारी संस्कृति के बहुरंगी आयामों से परिचित ऐसे लेखक है, जिनकी रचनायें साहित्य और समाजशास्त्र के अध्येताओं के लिए बराबर रोचक और मूल्यवान है और रहेंगी ।

<u>कहानी : स्वरूप और संदर्भ</u>

कथा-साहित्य के अन्तर्गत ही कहानियों का भी उल्लेख आता है, अब संक्षिप्त में उनकी कहानियों पर भी विश्लेषण अनिवार्य है। कहानीकार नागर जी की कहानियों पाठकीय संवदेना को छूती है, उसके मानस को हिल्लोलित करती है और उसे सोचने पर विवश कर देती है सामाजिक यथर्थवादी होते हुए भी इनकी कहानियाँ युगानुरूप मानवीयता का चित्रण करती है । समाज की समस्याओं के विस्तृत रूप मानवीय संघर्षों, राष्ट्रीय और विश्व व्यापी परिवर्तनों का प्रभाव यथातथ्य रूप में चित्रित किया गया है। डॉ0 सुरेश सिन्हा ने आज की कहानी के यथार्थ को प्रेमचन्द की कथाभूमि के यथार्थ से भिन्न बतलाते हुए लिखा है - "यह स्मरणीय है कि उस समय सयम, मर्यादा, मूल्यों की प्रतिष्ठा तथा आदर्श की स्थापना आदि प्रश्न कहानीकारों के सामने थे, पर आज उनके सामने प्रश्न यथार्थ का है।"[1] अपने तत्कालीन समय एवं साहित्यकारों का प्रभाव नागर जी की कहानियों में भी दृष्टिगोचर होता है । नागर जी की कहानियों में 1935 के परवर्ती भारतीय समाज के उत्थान-पतन के अनेक रंग, सामाजिक-राजनीतिक परिवेश के संस्पर्श से युक्त, उनकी कहानियों

---

1 डॉ0 सुरेश सिन्हा - "हिन्दी कहानी", उद्‌भव और विकास, पृष्ठ 431

में मिलते है । स्वातन्त्र्य पूर्व भारत, संघर्षकालीन भारतीय समाज पर पाश्चात्य प्रभाव एवं विशेषतः लखनऊ नगर की मुस्लिम सभ्यता के विविध रंग नागर जी की लेखनी द्वारा व्यक्त हुए है। लखनऊ के सजीव परिवेश और संस्कृति के चित्रण में उनकी कला फणीश्वरनाथ रेणु की आँचलित कला से स्पर्धा करती है । नागर जी ने स्वयं कहानी रचना के विषय में लिखा है – "मेरी ये रचनाएँ जीवन के यथार्थ बोध से नि·सन्देह जुडी हुई है और कहानियों का शिल्प इनमें निहित बातों से ही उमंगा और संवरा है । मैंने शिल्प के लिए ही शिल्प काण मन्त्र आज तक नहीं साधा । इधर कुछ वर्षों से मैंने प्रायः एक भी कहानी नहीं लिखी इसका एक कारण यह भी है कि साहित्य के आलोचकों ने मेरी कहानियों का कोई विशेष नोटिस नहीं लिया। कारण जो भी हो पर यह स्थिति मेरे सृजनशील मन को कहानियाँ रचने लायक प्रफुल्लित नहीं कर पाती । पत्र–पत्रिकाओं के द्वारा मुझसे अब भी कहानियाँ मांगी जाती है पर सिर्फ आर्डर सप्लाइ के लिए ही लिखना मुझे अच्छा नहीं लगता है।"[1] नागर जी के इस वक्तव्य में एक ओर उनके रचना शिल्प के यर्म को अभिवयक्ति मिलती है तो दूसरी ओर उनके स्वाभिमान को ।

नागर जी की कहानियों का सामाजिक यथार्थ स्वस्थ हास्य व्यंग्य से आप्लावित है। कहानी कला के उत्कर्ष काल में लेखक की बौद्विक चेतना ने समाज के गुणों–अवगुणों का स्वतन्त्र लेखा–जोखा प्रस्तुत किया है और सामाजिक सदस्यता पर चोट करने वाली हर रूढ़ि, अन्धविश्वास पर व्यंग्य किया है । नागर जी की हास्य परक कहानियों में कटुता और तिक्तता के पुट को बचाकर उक्ति वैचित्र्य एवं लाक्षणिक शब्दों द्वारा नैसिर्गिक हास्य उत्पन्न किया गया है । डॉ0 रामविलास शर्मा ने नागर जी की कलम द्वारा तराशे हुए हास्य व्यंग्य से युक्त खरे यथार्थ को चित्रित करते हुए लिखा है – "जीवन के सबसे निचलते स्तर तक पैठने और अप्रत्याशित वीभात्सता का उद्घाटन करने में वह अद्वितीय है। साथ ही वह हास्य रस के जाने माने लेखक है । हास्य के लिए वे आस–पास के सामाजिक जीवन के आलम्बन ही नहीं चुनते , पौराणिक गाथाओं और भटियारनों के किस्से कहानियों का भी सहारा लेते है । आदमी हिम्मत के हैं, निर्भीकता से सामाजिक समस्याओं पर लिखते हैं – "आदमी नहीं : नहीं । "एटम बम" "मरघट के कुत्ते " "एक था गाँधी आदि उनकी ऐसी ही सोद्देश्य रचनाएँ है।"[2]

---

1 अमृतलाल नागर : मेरी प्रिय कहानियाँ भूमिका ।

2. डॉ0 रामविलास शर्मा – आस्था और सौन्दर्य, पृष्ठ–133

नागर जी की कहानियाँ और उनके कहानी विषयक वक्तव्य प्रमाणित करते हैं कि वे कहानी को यथार्थ की प्रतिकृति मानते हैं। नागर जी की कहानियाँ विविध प्रवृत्तियों को लेकर लिखी गई है । सामाजिक धरातल पर रचित, हास्य-व्यंग्य से तराशी हुई ये रचनाएँ जीवन के सर्वांगीण चित्रों का संग्रह है । सुविधा की दृष्टि से उनकी कहानियों को पांच वर्गो में विभाजित किया जा सकता है -

1 सामाजिक यथार्थ परक

अ निम्न मध्यवर्गीय समाज का चित्रण

ब सामाजिक विषमताओं का चित्रण

स. मध्यवर्गीय समाज का चित्रण

2 राजनीतिक पृष्टभूमि पर आधारित कहानियाँ

3 विश्लेषणात्मक एवं मनोवैज्ञानिक कहानियाँ

4 आंचलिक कहानियां

5. हास्य - व्यंग्य प्रधान कहानियाँ

नागर जी की विभिन्न कहानियाँ उनके विभिन्न कथा संग्रहों में प्राप्त होती है। कई कहानियों समय समय पर पत्र-पत्रिकाओं में भी प्रकाशित हुई है। उनकी प्रतिनिध कहानियों के संग्रह है -

1 मेरी प्रिय कहानियाँ

2 पीपल की पटी

3 एटमबम

4 तुलाराम शास्त्री

5 पांचवा दस्ता (लम्बी कहानी) और सात कहानियाँ

6 हम फिदाए लखनऊ

7. सिकन्दर हार गया

8 भारत पुत्र नौरंगी लाल

9 कालदण्ड की चोरी आदि ।

नागर जी ने प्रत्येक वर्ग और वातावरण का सजीव चित्र खींचा है। चाहे वह मुस्लिम निम्नवर्गीय हो या मुस्लिम नबाबों का शासनकाल, चाहे हिन्दुओं के भक्त और आडम्बर रूप का वर्णन हो चाहे उच्च वर्ग का आधुनिक रूप । नागर जी की कहानियों को पढ़ते हुए ऐसा महसूस होता है जैसे अपनी आँखों से देखे हुए किस्से को हम सुन रहे हों। उस वातावरण का बातचीत के लहजे का सारा चित्र पाठक की आँखों में समा जाता है । "लखनऊ" नगर की पृष्ठभूमि इन कहानियों की अप्रतिम विशेषता है। इसमें तत्कीन समाज विशेषतः लखनऊ की गलियों के एक विशेष वर्ग का चित्रण सजीव हो उठा है। "कादरमियाँ की भौजी" "शकीला की माँ, जन्तर–मन्तर , मरघट के कुत्ते, हाजी फुल्फी वाला, खटकिन भाभी, कयामत का दिन, मल्का टूरिया का बेटा, मुल्लर की महतारी में निम्न मध्यवर्गीय समाज का चित्रण है। नई कहानी अथवा कहानी की लम्बी यात्रा के बीच नागर जी की कहानियों का स्वरूप अपना है और नितान्त भारतीय है। आर्थिक स्वल्पता और पखशता जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप है। पढ़ लिखकर भी बेरोजगारी, गृहस्थी का दायित्व मनुष्य को निराश कर देते है । "गोरख धन्धे", धर्म संकट, जुलाब की गोली, शहर का अन्देशा, दफीने की जुदाई आदि कहानियाँ मध्यवर्गीय समाज का दृश्य उपस्थित करती है। स्वातंत्र्योत्तर भारत में समाज समता से अधिक विषमता की ओर बढ़ा है। इसका कारण कोई एक नहीं है, अनेक हैं। नागर जी ने इस स्थिति को पहचाना है और अपनी कहानियों के माध्यम से व्यक्त किया है। "सूखी नदियाँ, मोती की सात चलनियाँ, माँ–बाप और बच्चे, बंदिनी, दो अस्थियें, सिकन्दर हार गया . गिरहकर, सती का दूसरा व्याह, आदि कहानियों में भारतीय समाज का प्रतिबिम्ब अंकित है। इन कहानियों के स्वर व्यंग्यात्मक है, तीखे है। विश्व राजनीति से प्रेरित घटनायें मानव के सामाजिक जीवन को प्रभावित करती है। राजनीति के सत्तामद के कारण एवं उसके आह्वान पर राष्ट्रीयता के विभिन्न संदर्भ देश के इतिहास में बन जाते हैं। "एटमबम" चौदह अप्रैल, एक था गांधी, जय–पराजय, देश सेवा शाह मदारों की , लखनवी होली आदि कहानियाँ राजनीतिक पृष्ठभूमि पर आधारित है।

नागर जी ने इनेक अतिरिक्त भी विभिन्न विषयों पर कहानियाँ लिखी है उन्होंने विश्लेषणात्मक तथा मनोवैज्ञानिक कहानियाँ भी लिखी है "आदमी जाना अनजाना"

क्लर्क ऋषि का शाष, "नाश और निर्माण" , बेबी की प्रेम कहानी, राजा रानी और संतान, मन के संकेत आदि कहानियों में नागर जी ने काल्पनिक अनुभूतियों को विश्लेषणात्मक रूप से मनोवैज्ञानिक ढाँचे में आबद्ध किया है ।

यद्यपि नागर जी का लगभग समस्त साहित्य लखनऊ की पृष्ठभूमि पर अवस्थित है। लखनऊ का हर रंग उनके उपन्यासों एवं कहानियों में बिखरा पड़ा है। अत. अनेक आलोचकों ने उन्हें आंचलिक कथाकारों की श्रेणी में भी रखा है किन्तु उनका साहित्यिक उद्‌देश्य आंचलिकता की सीमा से काफी आगे है। "एक दिल हजार दासतॉं, नवाब साहब ऐसी ही काहनी है । कहानी नागर जी के हास्य व्यंग्य का सुन्दर उदाहरण है। "छापे के दुरूफ" "डॉ0 फरनीचर पलट, डाक्टरी साईन बोर्ड, चकल्लस, बनफशा बेगम के नूरे नजर, तुलाराम शास्त्री, कालदण्ड की चोरी, पाँचवा दस्ता इत्यादि हास्य और गप्पबाजी के सुन्दर उदाहरण है । "कालदण्ड की चोरी" एक काल्पनिक लम्बी हास्य प्रधान कहानी है, जिसे जासूसी, तिल्ली, और गप्पबाजी के मिश्रण से प्रस्तुत किया गया है।

नागर जी ने परिवर्तित समय के अनुसार स्वस्थ दृष्टि का अनुमोदन किया है। "धर्म" और "मजहब" के संकीर्ण दायरों से निकलकर मात्र केवल एक "मानवता" का धर्म ही उचित है। इसी मानवता के सामाजिक पक्ष का अंकन उनकी कहानियों में मिलता है। नागर जी ने कथा-साहित्य को एक स्वस्थ दृष्टि दी है। उन्होंने प्रत्येक वर्ग के जीवन को बहुत निकटता से देखा है । उनकी कहानियों में एक नवीन कथ्य तथा शिल्प दिखाई देता है। उन्होंने जीवन के यथार्थ, मानव समाज, भारतीय संस्कारों से युक्त समाज की घड़कनों को छुआ है । नागर जी ने अनेकों कहानियाँ लिखी है, किन्तु उनका उपन्यासकार किसी न किसी रूप में उनकी कहानी कला पर अवश्य छपी दिखाई देता है। उनकी कहानियॉं हटेक स्थिति में समाज से प्रतिबद्ध दिखाई देती है, किन्तु फिर भी जितने नागर जी के उपन्यास प्रसिद्ध हुए, उतने उनकी कहानियों को प्रसिद्धि नहीं मिली ।

भारतीय समाज के वृहद् ,व्यापक स्वरूप का प्रस्तुतीकरण नागर जी ने एक सर्वेक्षणकर्ता, अनुभवी समाजशास्त्री , तथा जागरूक सर्जक के रूप मे किया है। साहित्य समाज के आशा–निराशा, हर्ष–विषाद प्रेम और घृणा के ताने–बाने से बुना जाता है। उसमे समाज का स्पन्दन बोलता है। एक ओर वह जहाँ समाज की गतिविधियो से प्रभावित होता है, वहीं दूसरी ओर समाज मे नई प्रेरणा, नए विचार, नए आदर्श भी प्रस्तुत करता है । आदिकाल से ही समाज और साहित्य का अभिन्न, अटूट संबध रहा है, किसी भी देश के साहित्य मे वहाँ के समाज की मान्यताये, समस्याये, नीतियो, रीतियो एवं आध्यात्मिक उत्कर्ष के प्रतिबिम्ब मिलते है।

साहित्य की विषयवस्तु समाज से प्रभावित होती है। साहित्य मे सहित अथवा सहयोग की भावना रहती है, साहित्य मानव, मानव के बीच भावात्मक सम्बन्ध स्थापित करता है। यह व्यक्ति और व्यक्ति के बीच, व्यक्ति और समाज के बीच, आत्मीयता का भाव उत्पन्न कर जीवन दृष्टि को समुन्नत और विस्तीर्ण करता हें, साहित्य अनादिकाल से यही करता आ रहा है। समाज से सामजस्य स्थापित रखना व्यक्ति का कर्तव्य है, क्योंकि व्यक्ति की विचारधारा व्यक्तिगत सस्कारो, अनुभूतियो एव सामाजिक परिस्थितियो का परिणाम है और उसकी उपलब्धियाँ समाज– सापेक्ष होती है । मूलभूत सामाजिक प्रवृत्ति लेखक को व्यक्ति का चित्रण समाजहित की दृष्टि से करने की प्रेरणा देती है । सामाजिक उपन्यासो मे लेखक अपने समय के सामाजिक सम्बन्धो व जीवन्त जनविश्वासो को व्यक्त करते हुए, युग की नवीन सामाजिक जागृते और उसके अनेक पहलुओ को चित्रित करता है । उपन्यासो के समाजशास्त्रीय विवेचन हेतु हम परिवार, सामाजिक व्यवस्था, विवाह सस्था, वैवाहिक मान्यताये, समाज मे नारी की स्थिति, वर्ण व्यवस्था एव जातिभेद इत्यादि के परिप्रेक्ष्य मे प्रस्तुत करेगे ।

परिवार

समाज की सर्वाधिक मौलिक एव लघुतम इकाई परिवार है । प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी परिवार मे जन्म लेता है, उसका सदस्य होता है, विवाह करके स्वय एक

परिवार को जन्म देता है और अन्ततः व्यक्ति की मृत्यु भी सामान्यत· पारिवारिक सदस्य के ही रूप में हाती है । समाजशास्त्रीय मान्यताओं के अनुसार दैहिक आवश्यकताओं तथा काम सम्बन्धों को पूते के लिए परिवार संस्था का उदय हुआ । अंग्रेजी के 'Family' शब्द का जन्म लैटिन शब्द ' Famulus' से हुआ है . जिसका सामान्य तात्पर्य एक ऐसे समूह से हैं, जिसमें माता–पिता , बच्चे, नौकर तथा दास हों, समाजशास्त्रीय संदर्भों में परिवार का अर्थ अधिक व्यापक है ।

मैकाइवर एवं पेज के अनुसार – "परिवार पर्याप्त निश्चित यौन सम्बन्ध द्वारा परिभाषित एक ऐसा समूह जो बच्चों के जनन एवं लालन–पालन की व्यवस्था करता है ।[1]

परिवार की सांस्कृतिक विशेषता यह है कि परिवार समाज की संस्कृति की रचना , सुरक्षा, हस्तान्तरण एवं सवंर्धन में योग देता है। परिवार को जैविकीय सम्बन्धों पर आधारित एक सामाजिक समूह के रूप में परिभाषित कर सकते है, जिसमें माता–पिता और बच्चे हांते है तथा जिसका उद्देश्य अपने सदस्यों के लिए सामान्य निवास, आर्थिक सहयोग यौन सन्तुष्टि और प्रजनन, समाजीकरण और शिक्षण आदि की सुविधायें जुटानी है।

वस्तुत. परिवार पति–पत्नी , बच्चों और आगामी पीढ़ी के संगठन का नाम हे। कोई भी समाज हो, कैसी भी उसकी संरचना हो, चाहे वह विकसित हो या अविकसित किन्तु "परिवार" प्रत्येक समाज में आवश्यक रूप से पाया जाता है। परिवार के सदस्यों में अत्यन्त गहन भावनात्मक सम्बन्ध पाये जाते है । पति –पत्नी के सम्बन्ध, मातृनिष्ठा, आदि कुछ ऐसे आधार है जिनके कारण सम्पूर्ण परिवार एक इकाई के रूप में न केवल अपना अस्तित्व बनाये रखता है , बल्कि आपसी सौहार्द्र एवं त्याग की भावना के कारण एकजुट होकर आवश्यकताओं की पूर्ति भी करता है ।

औद्योगिकीकरण तथा नगरीकरण के इस युग में परिवार का आकार केवल पति–पत्नी और उनके अविवाहित बच्चों तक हा सीमित रह गया है। इन परिवारों को प्राथमिक

---

1 मेकाइवर एवं पेज : सोसाइटी , पृष्ठ– 238

तथा तात्कालिक परिवार भी कहा जाता है। व्यक्तिवादिता तथा आर्थिक सम्बन्ध इस परिवार के मूल लक्षण होते है तथा ग्रामीण समाजों की अपेक्षा नगरीय समाजों में इन्हें अधिक मान्यता प्राप्त होती है ।

जिस परिवार में तीन या अधिक पीढियों के सदस्य एक साथ रहते हैं, वे संयुक्त परिवार के स्वरूप को निर्धारित करते है । इनके दो पक्ष होते हैं, एक में दादा, पिता तथा पुत्र की तीनों पीढियाँ तथा दूसरे में नानी, माँ और बेटी की तीन पीढ़ियाँ एक साथ निवास करती है । संयुक्त परिवारों में सामान्य निवास, सामान्य सम्पत्ति, सामान्य रसोई तथा सामान्य पूजा की मान्यता आवश्यक होती हे। घर का मुखिया उत्तरदायित्वों का समस्त भार ग्रहण करता है । परिवार का वह प्रकार जिसमें द्विपक्षीय (माता–पिता) रक्त सम्बन्ध पाये जाते है, विस्तृत परिवार कहलाता है । ऐसे परिवारों में निवास स्थान का सामान्य होना अत्यावश्यक नहीं होता, किन्तु निवास स्थानों की स्थिति पास–पास होती है। परिवार का उपरोक्त वर्गीकरण सामान्य है तथा इस वर्गीकरण का आधार संख्यात्मक है। समाजशास्त्री यह प्रमाणित करते है कि सम्पूर्ण मानव समाज में परिवार के उपरोक्त तीन प्रकार ही पाये जाते है, यह भेद मूलतः संगठन पर आधारित है, जिन्हें सर्वव्यापी तथा सार्वभौमिक स्तर पर स्वीकार किया जा सकता है। नागर जी ने अपने उपन्यासों में परिवार के कई रूप चित्रित किये है ।

"महाकाल" नागर जी का पहला उपन्यास है जिसमें बंगाल के अकाल की पृष्ठभूमि पर रचा उपन्यास है। इसमें नागर जी ने वैयक्तिक तथा सामाजिक हितों के द्वन्द्व को दिखाते हुए अपने समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण का प्रमाण दिया है। इस उपन्यास में एक ओर मानव का निर्मम स्वार्थ है और दूसरी ओर दबे, पिसे और छले गये मनुष्य की कारूणिक स्थिति का वर्णन है । इस उपन्यास का गांव मोहनपुर पूरे बंगाल का प्रतिनिधित्व करता हैं। इस उपन्यास में पाँचू–शीबू, मंगला, बड़ी बहू, तुलसी और पार्वती माँ तथा उनके पति के माध्यम से नागर जी ने उक्त समस्याओं की ओर ध्यान आकृष्ट किया है मुठ्ठी भर चावलों की खातिर "महाकाल" का प्रत्येक पात्र अपनी आबरू से खेलता है। दाम्पत्य जीवन की टूटती स्थिति को नागर जी ने इस उपन्यास में प्रस्तुत किया है । शीबू अपनी पत्नी को नुरूद्दीन के हाथों बेचता है। शीबू की माँ गिड़गिड़ाती है, बेटा मेरी जान

ले लें। मेरी आबरू न लें।" परन्तु शीबू पत्नी को अपनी सम्पत्ति समझता है– "ये मेरी वस्तु है, मैं इसे बेचूँगा।"[1] "महाकाल" में लेखक ने संयुक्त परिवार के रूप को चित्रित किया है –"ग्यारह आदमियों के परिवार का यह स्कूल ही तो आसरा था।"[2] अकाल के कारण पति–पत्नी के सम्बन्धो में भी असमानता आ गयी थी। इसी उपन्यास का एक पात्र पांचू गोपाल कहता है – "हमें सबका समान अधिकार स्वीकार करना ही होगा। जब तक एक भी स्त्री दासी रहेगी, उसके पेट से दास ही उत्पन्न होंगे । दासता जीवन को मृत्यु की जड़ता से बाँध देती है ।"[3] इस उपन्यास में नागर जी पुरूष की सामन्ती मान्यता पर तीव्र प्रहार किया है । पारिवारिक स्थिति अत्यन्त दयनीय है।

'सेठ बाँकेमल' में हमें एक ओर सेठ जी की जिन्दादिली, बेफिक्री और रोजगार के दाँव–पेच तथा रोमांटिक प्रवृत्ति का परिचय मिलता है तो दूसरी ओर परोक्ष रूप से मध्यवर्ग के जाति–भेद, हिन्दु–मुसलिम भेद, साम्प्रदायिक दंगो, अन्तर्जातीय विवाह, ब्राम्हणों के धार्मिक दोंग, स्त्री शिक्षा, नई चित्रण किया गया है । सेठ बाँकेमल हास्य और व्यंग्य के ताने–बानों से बुना हुआ ऐसा ही एक सफल उपन्यास है। इसमें हास्य की सहजता अपनी अपूर्णता के साथ प्रस्तुत हुई है। इस उपन्यास में परिवार का विशेष उल्लेख नहीं मिलता। स्त्रियों की आधुनिकता और फैशनपरस्ती पर भी व्यंग्य है –"फसन है साले, जार्जेट की साड़ियाँ पैनेंगी साब जिसमें साला सब बदन उघाड़ा दीखे। जब ऐसी मतें बिगड़ गई है तो हिस्टीरिया न होंगे और ससुरे क्या होंगे साले ? ससुर लडके पैदा होवे हैं आजकल साले चूहे के बच्चे, विस जमाने में माँ बाप तन्दुरूस्त होंवे थे, भैयो, औलाद साली पैदा होते ही साल भर की मालूम पड़े थी । "[4]

---

1. माहकाल (भूख) संस्करण, 1981 , पृष्ठ –212
2. महाकाल (भूख) संस्करण, पृष्ठ – 192
3. महाकाल (भूख) संस्करण, पृष्ठ – 150, 151
4. सेठ बाँकेमल , पृष्ठ – 58

सेठ बाँकेमल को अपने जमाने की नारी के सतीत्व पर गर्व है और नये युग की स्त्रियों के प्रति उनमें आक्रोश है – "इसी हमारे भारतवर्ष में औरतें सती होवें थी, विनको देवी मान के पूजे थे । अपनो इज्जत बचाने के लिए सुसरिया आग में जल के भसम हो जाया करें थी, और अब ये जमाना आम लगता है के घर में सब औरतें –लडकियाँ ऐसे–ऐसे बाइसकोप देख–देख के रंडिया हुई चली जायें साली ? नई मैं जे मई कऊँ हूँ के पैले के जमाने में सब शुद्ध पवित्तर ही थे, ऐसी कोई वारदातें होवेंइ नई थी। नई होवे थी जरूर पर बहुत कम – और, सो भी बढी दवी–ढंकी, भैयों ?"[1]

"बूँद और समुद्र" उपन्यास में व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों को चित्रित किया गया है । यह उपन्यास स्वातंत्र्योत्तर भारतीय जीवन की विसंगतियों को प्रस्तुत करने के लिए लखनऊ के एक मुहल्ले को कथाभूमि बनाकर चला है । लेखक ने लखनऊ के एक मुहल्ले के जीवन के माध्यम से मानों पूरे देश के समसामयिक तत्कालीन स्वरूप को उद्घाटित किया है । इसमें यथार्थ के दो स्वरूप है – एक तो वह यथार्थ है जिसे देश, समाज और व्यक्ति का बुनियादी यथार्थ कह सकते हैं। जैसे –स्त्री–पुरूष और व्यक्ति और समाज के संबंध। दूसरा यथार्थ सतही है जो बुनियादी यथार्थ में रंग भरने के लिए आता है, जिसे हम भाषा का यथार्थ कह सकते हैं। यह भी कहा जा सकता है कि सतही यथार्थ को विस्तार देने के बावजूद "बूँद और समुद्र" समाज के बुनियादी यथार्थ की रीढ पर खडा है । अर्थात् उसने आज के मनुष्य के भीतर उठते हुए भाव एवं विचारगत परिवर्तनों, विघटित मूल्यों और संबंधों तथा राजनीतिक दलों की विभीषिकाओं से त्रस्त होती मानवता को पहचाना है। इसमें सभी पात्र अपनी सार्थकता प्रमाणित करते है।

बूँद और समुद्र का प्रत्येक पात्र बूँद है जिसका समाजरूपी विशाल समुद्र में अपना निज का स्थान है । "रूढिग्रस्त समाज की दुर्बलतायें, उसकी अव्यवस्थित् मान्यतायें, उसके बहुमुखी परम्परा–पालित विकार एव दुर्व्यवस्था ही वह अथाह समुद्र है जिसमें लघु बूँद की भांति प्रच्छन्न मानव विशाल लहरों की विभीषिका में अपना निजी अस्तित्व रखते हुए भी पृथक् रहने को विवश है । लेकिन "बूँद" का अपना अस्तित्व है, यह स्वयं की ईकाई में पूर्ण है।"[2] इस उपन्यास में नागर जी ने सशक्त पात्रों की सर्जना करके आज

---

1 सेठ बाँकेमल, पृष्ठ–111

2 डॉ0 त्रिभुवन सिंह – हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृष्ठ–524

के समाज की सामाजिक . आर्थिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं का चित्रण किया है। समाज में फैली रूढियों, अन्धविश्वासों, समाज के एक विशेष हिस्से , मुहल्ले में रहने वाले परिवारों के कटु और मधु सम्बन्धों, व्यक्तिगत अच्छाई – बुराई, आशा–निराशा, आस्था–अनास्था, नैतिकता – अनैतिकता का सविस्तार चित्रण हुआ है।

भारतीय सामाजिक संगठन का मूलाधार वर्णव्यवस्था तथा संयुक्त परिवार रहा है। समाज की मूल इकाई परिवार है । इसका निर्माण स्त्री–पुरूष के वारस्परिक सम्बन्धों द्वारा होता है। भारतीय परिवार की श्रेष्ठता पारिवारिक सदस्यों के पारस्परिक प्रेम, सेवा, समर्पण जैसे भावो के कारण रही है। "बूँद और समुद्र" में पारिवारिक जीवन की अव्यवस्था तथा आर्थिक– अभाव का चित्रण हुआ है ।

एक संयुक्त परिवार में तीन या तीन से अधिक पीढियों क सदस्य साथ–साथ एक ही घर में निवास करते हैं, उनकी सम्पत्ति सामूहिक होती है, वे एक ही रसोई में बना भोजन करते है, सामूहिक पूजा में भाग लेते है, और परस्पर किसी न किसी नातेदारी व्यवस्था से सम्बन्धित होते है । संयुक्त परिवार के सदस्य परस्पर अधिकारों व दायित्वों को निभाते हैं। डॉ0 दुबे कहते है– "यदि कई मूल परिवार एक साथ रहते हों और उनमें निकट का नाता हो, एक स्थान पर भोजन करते हों और एक आर्थिक इकाई के रूप में कार्य करते हों तो उनके सम्मिलित रूप को संयुक्त परिवार कहा जा सकता है।"[1] नागर जी ने इस उपन्यास में संयुक्त परिवार के साथ–साथ केन्द्रीय परिवार को भी चित्रित किया है। इस उपन्यास के पात्र विभिन्न सामाजिक स्थितियों को व्यंजित करते है।

"बूंद और समुद्र" उपन्यास में जीवन्त तथा गतिशील चरित्र "ताई" का है। "ताई" के व्यवहार, स्वभाव और उससे उत्पन्न ढेर सारी समस्याओं के मूल में उनका पारिवारिक वातावरण ही है । "ताई" के माता–पिता के देहान्त के बाद एक बड़े परिवार में दादा – दादी के प्यार का एक मात्र केन्द्र "ताई" ही रहती है जिससे वह आरम्भ से ही हठीली तथा कर्कशा हो गई। दादा–दादी की मृत्यु के बाद चाचा के राज्य में ताई घर–भर की किरकिरी बन गई।" जैसे–जैसे इनका निरादर और उपेक्षा हुई वैसे ही इनका अन्तर भी घृणा से भरता गया । वे मानुसगंध से दूर रह कर इकलसूरी हो गई ।[2]

---

1 डॉ0 श्यामाचरण दुबे, मानव और संस्कृति, 1969, पृष्ठ 113

2 बूँद और समुद्र , पृष्ठ–12

बचपन की यही कटुता, बोली की कर्कशता तथा परनिन्दा कुशलता ने ताई को पति के घर में कुछ दिन तो सुखी रखा, परन्तु फिर परिस्थितियाँ बदली तो ताई जगत् ताई बनकर लड़ाका, टोनही, मनहूस, आदि उपाध्रियों से विभूषित होकर जमाने भर की छू–छू बन गई।"[1]

इस उपन्यास का दूसरा परिवार भभूति सुनार का है जिसके प्रत्येक सदस्य पर पारिवारिक वातावरण का प्रभाव है। भभूति की पुत्री है, नन्दो, जिसका बचपन अजीब परिस्थितियों में पनपा है। "नन्दो आरम्भ से ही पिता की आँख का तारा बन, उसकी गोदी में टंगी–टंगी घूमी।[2] यही नही भभूति इसे अपनी प्रेमिका के घर ले जाते थे और पिता की सीख में आकर वह अपनी माता से कुछ भी नहीं कहती थी । दुराव–छिपाव की इस वृत्ति के कारण वह "बचपन से ही घुन्नी बन गई ।" अन्नतः पारिवारिक वातावरण का कुप्रभाव नन्दों पर पडता है जिसके फलस्वरूप पति – उपेक्षिता बनकर पिता के घर लौट आती है जिसस परिवार में अशान्ति उत्पन्न होती रहती है । पहले तो वह अपने बडे भाई "मनिया" को संतो की विधवा पत्नी के चक्कर में फँसा देती है तथा भाई का लाडली बहन बनकर बडी भाभी पर मनचाहे अत्याचार करवाती है । परन्तु जब मनिया को बहन के कृटनो कार्य का पता चलता है तो उसका हृदय घृणा से भर जाता है।

इसके बाद भभूति सुनार की बड़ी पुत्रवधू का परिवार आता है। बड़ी का पिता क्रोधी था, परन्तु उसकी विभाता से सगी माता का स्नेह मिलता है। विषमाता की समझदारी से ही घर की एकता बनी हुए थी। "बड़ी को अपने सौतेले भाई–बहनों से अपार–दुलार मिला ।"[3] घर भर में वह सबसे अधिक रूपवती थी। रूप श्रृंगार के प्रति उसका अधिक लगाव था। साथ ही अपने पिता की माता के साथ होने वाली काम चेष्टाओं के व्यवहारिक रूप, का अभिनय अपने आस–पास के लड़के लड़कियों के साथ करती थी। इस प्रकार से देह भोग के रूप में नारी जीवन की सार्थकता का पाठ उसने निरे बचपन

---

1 बूँद और समद्रु, पृष्ठ–12

2 बूँद और समुद्र , पृष्ट– 166

बूँद और समुद्र – पृष्ठ– 66

से ही पढ़ लिया था।[1] माता–पिता का असंयम बड़ी को छोटी आयु में ही कामुक बना देता है और इस कंठित कामवासना को लेकर ही बड़ी जीवन में ठोकर खा बैठती है। इस प्रकार ताई तथानन्दो की भाँति बडी पर भी अपने पारिवारिक जीवन की अव्यवस्था का प्रभाव पडा।

उपन्यास के नायक "सज्जन" पर भी उसके पारिवारिक वातावरण का प्रभाव पड़ता है। एक ओर उस पर अपने पिता का प्रभाव पड़ता है जो शराब और वेश्या पर अपनी सारी सम्पत्ति को भेंट चढ़ा देते है। दूसरी तरफ सहनशील एवं चरित्रवान माँ का प्रभाव पडता है जो सदा अपने चरित्रहीन पति के अत्याचारों को मूक पशु की भांति सहन करती है। इन्हीं कारणों से वह अपने पिता से नफरत करता है । "चरित्रहीन पिता के विपरीत अपनी माँ के चरित्र में उसे सदा शक्ति झलकती दिखाई देती थी। पिता मार–दहाड़ और अत्याचार करके भी उसे अपनी मुहरबन्द सहनशीलता ममतामयी माँ के सामने सदा निस्तेज और घिनौने लगे ।"[2]

'बूँद और समुद्र' में अन्य अनेक परिवारों का चित्रण हुआ है । इन पात्रों का जीवन यथार्थ की भूमि पर अवस्थित है। इन पात्रों में मुख्य रूप से वनकन्या महिपाल और शीला है । इनके चरित्रों पर इनके परिवारों का भरपूर प्रभाव पड़ता है। पारिवारिक वातावरण से प्रभावित हो वनकन्या "अहंकारिणी" वन जाती है तथा यहीं से वह नारी अधिकारों के प्रति जागरूक होती है । साथ ही वह पुरूषों द्वारा नारी जाति पर किए जाने वाले अत्याचारों के विरोध में नारी को सजग करने के लिए कटिबद्ध होती है । " दूर कर नारी यह मोह? घूँघट के पट खोल पुरूष के अत्याचारों के खिलाफ संगठित होकर अपनी आवाज उठा। जिस दिन स्त्री जाति अपने ऊपर होने वाले अत्याचारों का अंत करने के लिए निश्चयपूर्वक खड़ी हो जाएगी, उसी दिन दुनिया से हर अत्याचार मिट जाएंगे ।[3]

---

1 बूँद और समुद्र , पुष्ठ – 66

2 बूँद और समुद्र, पृष्ठ 90

3. बूँद और समुद्र, पृष्ठ– 148

नागर जी वनकन्या के माध्यम से स्त्री–पुरूष की समानता सम्बन्धी विचारधारा का समर्थन करते हुए परिवार में नारी–पुरूष की समानता पर बल देते हैं। इस तरह इस उपन्यास में नागर जी ने संयुक्त परिवार तथा एकल परिवार दोनों की ही स्थितियों को स्पष्ट किया है ।

'अमृत और विष' भारतीय समाज व्यवस्था का प्रामाणिक दस्तावेज है। इसमें पुरानी एवं नई पीढ़ी के नैतिक आदर्शों, संस्कारों धार्मिक विचारों आदि के संघर्ष का अंकन हुआ है। जातिप्रथा और संयुक्त परिवार हिन्दू सामाजिक संरचना के महत्वपूर्ण आधार रहे हैं।

परिवार समाज की केन्द्रीय इकाई है और सामाजिक समूहों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है । इसीलिए परिवार एक सार्वभौमिक, सामाजिक संस्था है। वह व्यक्ति की जैविकीय, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। अमृत और विष में नागर जी ने संयुक्त परिवार के प्रति लोगों का असन्तोष एवं अनास्था व्यक्त की है। फलस्वरूप पारिवारिक सम्बन्धों में परिवर्तन हो रहा है। इस उपन्यास में नागर जी कहते हैं –"एक समय सम्मिलित कुटुम्ब सिद्धान्त का माहात्म्य था, आज उसमें हमारे समाज के अधिकाधिक व्यक्तियों को घुटन महसूस होती है।"[1] 'बूँद और समुद्र' में टूटते संयुक्त परिवार का चित्रण मिलता है। इस उपन्यास के पारिवारिक सम्बन्धों में औपचारिकता अधिक दिखाई पडती है। पति पत्नी, पिता–पुत्र, सास–बहू आदि के सम्बन्धों में आत्मीयता का अभाव है। परिवार में माता–पिता को हीन दशा पुत्र द्वारा की गई उपेक्षा के कारण ही है – "छैलबिहारी अपने माँ–बाप का इकलौता बेटा है। घर में दादी है, माँ है, बूढे छोटे बाबा है । ये तीनों ही उसके पिता से हरदम तिरस्कार पाते हैं। उनकी हालत पुराने जमाने के खरीदे हुए दास–दासियों से भी बदतर है।"[2] इस उपन्यास के पात्र अरविन्दशंकर के हृदय में अपने पुत्रों की उपेक्षा का गहरा छाप है। उपन्यास के पात्र सत्यनारायण बाबू के ये शब्द माँ–बाप के हृदय की व्यथा को व्यक्त करते है – "अजी अब बेटे बाप से कहते हैं कि साले तेरा एहसान

---

1 अमृत और विष, पृष्ठ–210

2. अमृत और विष, पृष्ठ– 351

क्या ? हम तेरी इच्छा से नहीं आये, एक नेचरल प्रॉसेस से आये हैं। उसमें बाप साले का क्रेडिट ही क्या होता है ।[1]

अमृत और विष उपन्यास में हमें पति-पत्नी के सम्बन्धों में भी काफी असन्तोष दृष्टिगोचर होता है । इस उपन्यास में भाई-भाई का सम्बन्ध भी मधुर नहीं है। अरविन्दशंकर के तीनों लड़के अलग-अलग रहते है। उपन्यास में आये परिवारों में विघटन की प्रक्रिया को भी नागर जी ने प्रस्तुत किया है । लेखक के अनुसार इन परिवारों में नियन्त्रण की शिथिलता एवं सदस्यों में पारिवारिक निष्ठा का अभाव है । इस उपन्यास में भवानी-ऊषा, पुत्ती गुरू के परिवार तथा रद्धू सिंह आदि के परिवारों में किसी न किसी प्रकार का तनावी एवं पृथक्करण को स्थिति विद्यमान है । पनि-पत्नी के साथ ही माता-पिता एवं सन्तान के बीच भी तनाव की स्थिति है ।

अमृतलाल नागर जी ने इससे पहले के अपने सभी उपन्यासों में परिवार की सभी स्थितियों को अंकित किया है, किन्तु "नाच्यौ बहुत गोपाल" में उन सभी स्थितियों, विचारों और मान्यताओं से अलग होकर समाज के निम्न कहे जाने वाले उपेक्षित वर्ग की सामाजिक स्थिति का मूल्यांकन किया है । "नाच्यौ बहुत गोपाल" में नागर जी ने समाज द्वारा उपेक्षित मेहतर जाति और उसकेपरिवार को उपन्यास का विषय बनाकर विशेष सम्मान दिया है। विवेकी राय जी ने लिखा है - "नागर जी ने अपने इस उपन्यास में इतिहास की उत्तम दुर्गम और अन्धेरी तहों में से मेहतर जाति का नया अन्वेषण कर उसे रचनात्मक स्तर पर पहली बार एक कड़वे सामाजिक यथार्थ के रूप में प्रस्तुत किया है।"[2]

हमारे सामाजिक संगठन का मुख्य आधार वर्ण-व्यवस्था ही है। वर्णव्यवस्था के रूढ़िवादी और परम्परागत रूप ने समाज मे ऊँच-नीच, जातिभेद, छूआछूत जैसी अनेक बुराइयों को जन्म दिया है । इस वर्ण व्यवस्था के सम्बन्ध में नागर जी का अपना दृष्टिकोण है। वे वर्ण को जन्मना न मानते हुए कर्मणा और जीवन दृष्टि से सम्बद्ध मानते हैं। "नाच्यौ बहुत गोपाल" में नागर जी ने ब्राम्हणी से मेहतरानी बनी निर्गुनियां और मेहतर मोहन के

---

1. अमृत और विष, पृष्ठ - 526
2. डॉ० विवेकी राय - "प्रकार" अंक, 8 अगस्त, 1978, पृष्ठ-1

माध्यम से उच्चवर्ग के उन मिथ्याभिमानी और पाखण्डी ब्राम्हणों की कटु निन्दा की है जो अछूतों को तो घृणा की दृष्टि से देखते हैं, पर अछूत नारियों से अवैध सम्बन्ध रखते है। ऐसी वर्ण–व्यवस्था और उसकी सामाजिक मान्यताओं के प्रति नागर जी के मन में विद्रोह का भाव है। उच्चवर्ण की उच्चता और रक्त की शुद्धता पर अनेक स्थलों पर प्रश्न–चिन्ह लगाया है। "सुप्रतिष्ठित ब्राम्हणियों, क्षत्राणियों वैश्य स्त्रियों के गर्भ से उत्पन्न होने वाली सबकी सब सन्तानें क्या ब्राम्हण, क्षत्रिय और वैश्य वीर्य से ही उत्पन्न होती है? शुद्राणियों के गर्भ में क्या केवल शुद्र बीज ही पनपता है ।"[1]

संयुक्त तथा एकल परिवारों के टूटने का बहुत बड़ा कारण है अवैध सम्बन्ध "बिखरे तिनके" उपन्यास के इन अवैध संबंधों को भी उजागर किया है। 'बिखरे तिनके' उपन्यास में नागर जी ने नयें भारत तथा उसकी गति का वास्तविक रूप प्रस्तुत किया है । इस उपन्यास में नागर जी ने सरकारी कर्मचारियों और नेताओं को उनके यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास में नागर जी ने एकल और संयुक्त परिवार दोनों को प्रस्तुत किया है। नागर जी दोनों प्रकार के परिवारों में स्वार्थ की दरारों का यथार्थवादी चित्रण करने से चूकते नहीं है। घूरेलाल की पत्नी "सुनन्दा" का डॉ0 गोयल के साथ अवैध सम्बन्ध है। "इस समय सुनन्दा और डॉ0 गोयल के अवैध रिश्ते से दुखी घूरेलाल ने अपनी नसबन्दी करवा के अपनी पत्नी को यह धमकी दी थी कि अब जो तुम्हारे बच्चे होंगे, उनका बाप कानूनी तौर पर मैं नहीं, तुम्हारा यार ही कहलाएगा ।"[2]

नागर जी ने इस उपन्यास में आज के समाज का खाका प्रस्तुत किया है। आज का व्यक्ति मात्र स्वार्थ के वशीभूत होकर किसी भी दूसरे व्यक्ति से जुड़ जाता है। उपन्यास में प्राय: अधिकांश पात्र अपने क्षणिक स्वार्थों के लिए एक दूसरे से सम्बन्ध स्थापित करते है । वास्तविकता यह है कि सब अलग है – व्यक्ति के स्तर पर भी जाति के वर्गीय आधार पर भी "रघबर के कोई भाइ ही नहीं, भतीजा कहाँ से हो गया, यह तो मनुआ

---

1. नाच्यौ बहुत गोपाल, पृष्ठ – 265

2 बिखरे तिनके, पृष्ठ –10

महाबामन का भाँजा है । हाँ है, पर पण्डित तो है ममी। बिल्लू इसे इस पैसे दे के विदाकर महाबामन को सराध नहीं जेवाऊँगी।"[1]

इस तरह की मानसिकता आज हमारे समाज में एक अमानवीय अलगाव को जन्म देती है । "बिखरे तिनके" उपन्यास में विधवा विवाह तथा अन्तर्जातीय विवाह और उनसे उत्पन्न समस्याओं को नागर जी ने "सुहागी" और सरसुतिया के विवाह के माध्यम से प्रस्तुत किया है । नागर जी हमेशा ऐसे विवाह का समर्थन किया है । "तुम शादी का अरेंजमेंट कराओ जी, मैं पाँच-पाँच रूपया चन्दा हर एक से क्लेक्ट कर लेने का वादा करता हूँ। लवमैरिज में हम साले यंग मैन काम न आएँगे तो क्या बूढ़े - खुर्राट काम आएँगे।"[2] इससे नागर जी के प्रगतिशील विचारों का अनुमान किया जा सकता है ।

"अग्निगर्भा" नागर जी का अन्तिम सामाजिक उपन्यास है। इस उपन्यास में नागर जी ने आज के समाज की भयानक समस्या "दहेज" को चित्रित किया है। आज समाज का हर वर्ग इस समस्या से ग्रस्त है । नागर जी ने नारी की आकांक्षा तथा उसकी मन:स्थिति क्या है ?इ वह समाज में किस प्रकार रहना चाहती है? इन प्रश्नों को इस उपन्यास में उठाया गया है । नागर जी ने सीता के माध्यम से नारी स्वातन्त्र्य और उसकी आकांक्षा को प्रस्तुत किया है । आज समाज में प्रत्येक स्त्री की अपनी अलग-अलग रूचि है और वह हर क्षेत्र में स्वेच्छापूर्वक चुनाव करना चाहती है। इस उपन्यास में कुछ ऐसे परिवार का चित्रण मिलता है जो पुत्री कमाई पर चलता है। सीता अपने भविष्य की चिन्ता स्वयं करती है - "कर्जो-कर्जा-कर्जा । उन्हें अपने कर्जे की चिन्ता है, तो मुझे अपने कैरियर की, आखिर मेरी भी कुछ अपनी सत्ता है । पढ़ना चाहती हूँ । पढ़ाई से जुड़ी रहना चाहती हूँ। मेरे जीवन के हर कदम माँ-पिता के कहने पर भी नहीं चल सकते। स्वयं मेरी भी अपनी कुछ सत्ता है । सीता के मन में इस समय अपने पिता के लिए बड़ी शिकायतें थी ।"[3]

---

1. बिखरे तिनके , पृष्ठ -9
2 बिखरे तिनके, पृष्ठ"9
1 अग्निगर्भा , पृष्ठ -8

नागर जी ने सीता के माध्यम से एक सार्थक सामाजिक संदर्भ प्रस्तुत किया है । सीता सामाजिक विडम्बनाओं से जूझती हर स्त्री का प्रतिनिधित्व करती है। नागर जी ने सीता के माध्यम से स्त्री की संघर्ष–कथा की भयानकता को प्रस्तुत किया है । समाज के लघु–घटक परिवार की समस्यायें नागर जी के उपन्यासों की प्रमुख चिन्ता रही हैं।

सामाजिक व्यवस्था

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है अरस्तु का यह कथन समाज तथा व्यक्ति के अभिन्न सम्बन्धों की परिभाषा प्रस्तुत करता है ! किन्तु व्यक्ति को सामाजिक घोषित कर देने से ही व्यक्ति तथा समाज के सम्बन्धों की इतिश्री नहीं हो जाती । प्लेटों जैसे विचारक से लेकर वर्तमान काल तक की विभिन्न वैचारिक प्रक्रियाओं से गुजरते हुए यह प्रश्न अधिक महत्वपूर्ण होकर उभरता है, कि "व्यक्ति समाज के लिए महत्वपूर्ण है अथवा समाज व्यक्ति के लिए ? इसके साथ ही साथ इन शंकाओं का समाधान भी आवश्यक हो जाता है कि मनुष्य अन्य जीवधारियों से किस आधार पर भिन्न है ? "सामाजिक" का क्या अभिप्राय क्या है ? किन कारणों से व्यक्ति को सामाजिक प्राणी बनना पड़ता है? क्या समाजीकरण की प्रक्रिया प्राकृतिक होती है अथवा उसके लिये प्रयास करना पड़ता है ? क्या व्यक्ति के बिना समाज का उद्‌भव हो सकता था? क्या समाज के बिना व्यक्ति का अस्तित्व सम्भव है? क्या सामाजिकता के लिये अनुकूलन अनिवार्य है ?

मैकाइवर तथा पेज ने व्यक्ति तथा समाज के सम्बन्धों को स्पष्ट करने के लिए सर्वप्रथम यह प्रमाणित करने का प्रयास किया कि मनुष्य को किस अर्थ में सामाजिक प्राणी कहा जा सकता है । उनके अनुसार सभी प्रकार के समाजशास्त्रीय अन्वेषण का प्रारम्भ–बिन्दु यही प्रश्न है कि इकाई अथवा व्यक्ति का समूह अथवा समाज से क्या सम्बन्ध होता है। इस प्रश्न के उत्तर के लिये कुछ सिद्धान्तों का परीक्षण आवश्यक है ।

सामाजिक अनुबंध का सिद्धान्त – "व्यक्ति" तथा समाज के पारस्परिक सम्बन्धों को स्पष्ट करने वाला यह पुरातन सिद्धान्त मूलतः टॉमस हॉबस, लॉक तथा जे0जे0 रूसो के विचारों पर आधारित है। ईसा पूर्व के अधिकांश दार्शनिकों ने समाज को एक ऐसा संगठन माना, जिसका निर्माण इसलिये किया गया कि मनुष्यों को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के निर्धारित

लक्ष्य प्राप्त हो सकें । प्रारम्भ में कई विचारकों का यह मत था कि आदिम काल में एक समय ऐसा भी था, जब मनुष्य "प्राकृतिक अवस्था" में रहता था तथा जीवन की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति प्रकृति के माध्यम से ही होती थी । मनुष्य उतना ही स्वतंत्र तथा स्वच्छन्द था, जितना कि पशु या पक्षी । किन्तु धीरे-धीरे जब जनसंख्या में वृद्धि हुई तो आवश्यकतायें बढ़ती गयी और पूति के साधन कम होते गये । व्यक्तिवादिता व संघर्ष की स्थिति ने जन्म लिया । शारीरिक शक्ति व संचित वस्तुओं के नाम पर समाज चार भागों में बँट गया – अमीर-गरीब, शक्तिशाली तथा निर्बल । जिसकी लाठी उसकी भैंस तथा बडी मछली छोटी मछली को खाये" वाली स्थितियाँ उत्पन्न होने लगी । जीवन में असहयोगी प्रक्रियाओं की भरमार होने लगी ऐसे स्थिति में एक समय वह भी आया जब अपनी समस्त "व्यक्तिवादिता को त्यागकर प्रत्येक व्यक्ति को (दूसरों तथा अपनी स्वतंत्रता की रक्षा के लिये तथा आवश्यकताओं की पूति के लिये) एक दूसरे का सहारा, सहयोग तथा मैत्री स्वीकार करने के लिए विवश होना पड़ा । विषय परिस्थितियों को अपने अनुकूल करने के लिये व्यक्ति ने जो उपरोक्त समझौता या अनुबन्ध मान्य किया और समूह, सहयोग या अनुबन्ध मान्य किया और समूह , सहयोग , सामंजस्य, एकता तथा सामाजिकता का जो जामा पहना, वही वास्तव में समाज कहलाया ।[1]

सामाजिक सावयवी सिद्धान्त (Social Organism Theory) के प्रवर्तकों को प्लेटो, अरस्तु, स्पैन्सर, सोरोकिन तथा लिलिन फील्ड आदि के नाम प्रमुख है। इन विचारकों के अनुसार व्यक्ति का समाज से वही सम्बन्ध है जो शरीर का अपने अंगों से होता है। सम्पूर्ण शरीर एक वृहत् समाज के समान है, जिसमें प्रत्येक अंग की अर्थवक्ता व्यक्ति से सम्बन्धित संस्थाओं तथा समितियों के समान है तथा शरीर की प्रत्येक कोशिका (cell) एक व्यक्ति की भूमिका अदा करती है ।[2]

---

1 हेमलता श्रीवास्तव : समाजशास्त्र एक परिचय, पृष्ठ-81

2. हर्बट स्पेन्सर : द प्रिन्सपल्स ऑफ सोशियोलॉजी, भाग-11, खण्ड-1,1910

समूह मन का सिद्धान्त (Group - mind Theory) के प्रवर्तकों में टी0एच0 ग्रीन, एफ.एच. ब्रेडले दुर्खीम तथा विलियम मैक्डूगल प्रमुख है। इस सिद्धान्त की मान्यता यह है कि व्यक्ति का समाज से वही सम्बन्ध है जो शरीर का मस्तिष्क से होता है । मस्तिष्क के निर्देश पर शरीर कार्य करता है तथा समाज के निर्देश पर व्यक्ति। समाज के बिना व्यक्ति का अपना कोइ अस्तित्व नहीं हो सकता। उसकी कार्य प्रणाली व्यवहार, संस्कृति, भाषा, जीवन–यापन की पद्वति , आदि सभी का निर्धारण उसका अपना समाज ही करता है । समाज और व्यक्ति के सम्बन्धों की विवेचना परस्पराश्रयता (Inter - dependence) पर पूर्णतः आधारित रहती है। क्योंकि यह सार्वभौमिक तथ्य है कि व्यक्ति के बिना समाज का उद्‌भव ही नहीं हो सकता और समाज के बिना व्यक्ति की अर्थ अर्थवत्ता पशु या पक्षी समुदाय से अधिक रही।

भारतीय जाति व्यवस्था, संसार के समस्त समाजों की संरचना से बिल्कुल पृथक, हिन्दू समाज की संरचना का वह अंग है जो हजारों वर्षों से व्यक्ति की सामाजिक स्थिति का निर्धारण करती रही है । इतिहासकारों, समाजसुधारकों, मानवशास्त्रियों तथा अनेक राजनैतिक नेताओं ने इसके विभिन्न पक्षों को विषयवस्तु बनाकर अध्ययन तथा विश्लेषण किया है, किन्तु समाजशास्त्रियों ने इस व्यवस्था को विस्तारपूर्वक विवेचित करने का प्रयास किया है । जाति–व्यवस्था एक जटिलतम संस्था है, अतः सीमित शब्दों में उसकी विवेचना करना अत्यन्त दुष्कर कार्य है । जाति एक अदृश्य धारणा है जो एक अन्तः विवाही समूह या समूहों के सदस्यों को इस आधार पर भावनात्मक रूप से बाँधती है कि उनके पूर्वज सामान्य थे । उनके व्यवसाय तथा उनकी संस्कृति सामान्य है थे । उनके व्यवसाय तथा उनकी संस्कृति सामान्य है तथा यह भी कि इसकी सदस्यता ऐच्छिक नहीं हो सकती।

औद्योगिकीकरण के कारण जिस नई सामाजिक व्यवस्था का उदय हुआ, उसमें अधिकांश लोगों की धारणा है कि आर्थिक आधार पर समाज का श्रेणी विभाजन वर्ग व्यवस्था का घोतक है, किन्तु समाजशास्त्रीय संदर्भ में जन्म के अतिरिक्त अन्य किसी भी आधार पर समूह का निर्माण वर्ग कहलाता है । सामाजिक स्तरीकरण तथा विभेदीकरण के कारण जन्म लेने वाले ऐसे सभी समूहों को वर्ग की श्रेणी में रखा जा सकता है जो समान परम्परा, समान व्यवसाय, समान पद, समान शैक्षणिक योग्यता अथवा समान आर्थिक स्थिति से सम्बद्ध होते हैं। सामाजिक स्तरीकरण के मुख्य आधार के रूप में वर्ग– व्यवस्था

समाजशास्त्र की महत्वपूर्ण विषयवस्तु है । मैकाइवर तथा पेज के शब्दों में – "एक सामाजिक वर्ग समुदाय का वह भाग है जो सामाजिक स्थिति के आधार पर दूसरों से पृथक् किया जा सके।"[1]

अमृतलाल नागर के सामाजिक उपन्यास एक सोद्देश्य भूमिका पर आधारित हैं। इनके माध्यम से ही नागर जी युग और जीवन की व्याख्या करना चाहते हैं।

"महाकाल" उपन्यास में हिन्दू–मुसलमान सभी जाति –धर्मो के लोग दिखाई देते हैं। व्यक्ति समाज से अलग नहीं, किन्तु जब वर्ग वैषम्य उस समाज को पंगु बना दे – परिस्थितियों के कारण इन्सान स्वार्थ साधन से हीन हो जायें। तब , पाप–पुण्य की सीमा–रेखा से परे एक संवेदनशील, आदर्शवादी ओर मानवता प्रिय उपन्यासकार की बौद्धिक चेतना झकझोर उठती है । पूँजीपति वर्ग के प्रति नागर जी का व्यंग्यात्मक आक्रोश इन शब्दों में फूट पड़ा है – "रईसों और अफसरों में क्या इन इन्सानों को कोई इंसान मानेगा? वे इन्हें भूत कहेंगे भूत । हालाँकि वे खुद मुर्दा इन्सानियत के भूत बनकर हमारे सिरों पर सवार हैं । हमारी भूख की नींव पर उन्होंने अपनी सोने की हवेलिया बनवाई है।"[1]

"महाकाल" ने नागर जी ने व्यक्ति की पीड़ा को चिह्नित किया है ,जो एक समूचे वर्ग की पीड़ा है। परन्तु पूंजीपति अपनी स्वार्थ–सिद्धि और सामन्तशाही में सोने–चाँदी को चमक में स्वयं जीने का और दूसरों की जिन्दगी छीनने का सर्वजीत अधिकार लेकर पैदा हुए हैं । बुद्धिजीवी वग अपनी अहंमन्यता में सब कुछ भोगता है। पाँचू की मानवीय चेतना व्यापक परिप्रेक्ष्य में समस्याओं की तह में जाकर विश्लेषण करती है तथा यथार्थ से एक बारगी पलायन की अवस्था में उसे नवजात शिशु का स्वर भूख और मौत से लड़ने की प्रेरणा देता है । वह विचारों के चौराहे पर खड़ा होकर अकर्मण्यता का तमाशा देखना फिजूल समझकर शोषक वर्ग के प्रति विद्रोह की चेतना लेकर जीवन–संघर्ष में फिर से प्रवेश करता है। अपनी निश्चल पत्नी की गोद में शिशु को देकर वह नयी आस्था, आशा और क्रान्ति के स्वर बुलन्द करता है – "इसे बचाने के लिए ही हम तुम जियेंगे ।"[2] यही मानवतावाद

---

1 मैकाइवर एण्ड पेज ,' सोसाइटी, पृष्ठ–348

2 महाकाल , पृष्ठ – 250

नागर जी का अभीष्ट है । नागर जी ने पूँजीवादी व्यवस्था की विकृतियों को मोनाई के माध्यम से मूर्त किया है । शोषण के ताने–बाने से बुना हुआ सामन्तशाही चरित्र है – दयाल जमींदार का, जिसकी स्वार्थी प्रवृत्तियाँ भी नायक के चरित्र को आर्थिक वैषम्य की सापेक्षता में विश्लेषित रूप से प्रस्तुत करती है । "महाकाल" में लेखक का सामाजिक ध्येय अपनी सम्पूर्ण अन्विति के साथ अभिव्यक्त हुआ है। "महाकाल" का यथार्थ विभीषिकाओं के मध्य से निकलकर जिस बिन्दु की ओर बढ़ता है , वह आस्था और विभीषिका का शिखर भी है और निर्माणकारी तत्वों का संकेत भी देता है ।

"महाकाल" यदि ध्वंसोन्मुख समाज की यथार्थवादी और शैल्पिक सजगता का प्रतीक है, तो "सेठ बाँकेमल" हास्य और व्यंग्य की धुरी पर घूमता हुआ एक ऐसा उपन्यास है, जिसमें जिन्दगी के यथार्थ रंग घुल गये है । एक में समाज की त्रासद स्थितियों के बिम्ब है तो दूसरे में लुप्त होती संस्कृति के वे स्तर हैं जो हास्य –व्यंग्य के रंगों से दीपित है। 'सेठ बाँकेमल' अपने अतिरिक्त उत्साह में अपने जीवन के संस्मरणों में अपनी चरित्रगत विशिष्टताये अपनी मान्यताये तथा तत्कालीन के रीति–रिवाज, के बारे में विभिन्न कहानियों के माध्यम से बताते हैं। इसी उपन्यास में नागर जी ने बड़ी सहजता से हिन्दू–मुसलमानों के साम्प्रदायिक दंगों की राजनीति तथा अंग्रेजों की हुकूमत पर भी चोट की है । नागर जी ने सेठ बाँकेमल और उनके मित्र चौबे जी के माध्यम से ब्राम्हण वर्ग की खोखली धार्मिक मान्यताओं पर करारा प्रहार किया है । चौबे ब्राम्हण हैं लेकिन शराब पीना बुरा नहीं समझते । सेठ बाँकेमल के रूप में एक पूरा युग, पुराने ढंग, समाज के आचार–विचार और परिवर्तित मानदण्डों तथा आचारों के प्रति क्षोभ की अभिव्यक्ति हुई है । वह समय स्वतंत्रता आन्दोलन का था अतः देश प्रेम का उत्कट उत्साह एवं कुंठित जीवन–दर्शन भी साकार हो गया है।

"बूँद और समुद्र" उपन्यास नागर जी के अगाध ज्ञान, अध्ययन और साहित्यिक प्रतिभा का ज्वलन्त उदाहरण है । इस रचना की भावभूमि सामाजिक और वैयक्तिक जीवन के अन्तर्बाधा अनुभूति एवं युगीन परिवेश से सम्पृक्त है । "बूँद और समुद्र" जीवन मूल्यों की सापेक्ष दृष्टि है । अपने परम्परागत मूल्यों के औचित्य का निर्धारण व्यक्ति और समाज मिलकर करते हैं। सामाजिक संदर्भों के बिना व्यक्ति का व्यक्तित्व अधूरा है और सामाजिक सम्बन्धों की स्वस्थता और अनिवार्यता व्यक्ति द्वारा ही प्राप्त होती है । पारस्परिक सार्थकता

बूँद और समुद्र को अन्योन्याश्रयी बना देती है। बूँद ओर समुद्र क्रमश. व्यष्टि और समष्टि का प्रतीक है । उपन्यास का प्रतीकात्मक शीर्षक सार्थक है । नागर जी ने सर्वत्र व्यक्ति ओर समाज को एक दूसरे का पूरक माना है । मध्यवर्गीय संस्कारों , विश्वासों, मर्यादाओं और जीवन मूल्यों की संक्रान्ति को व्यापक धरातल पर प्रस्तुत करते हुए लेखक ने भूमिका में स्वयं कहा है – "इस उपन्यास में मैंने अपना और आप का, अपने देश के मध्यवर्गीय नागरिक समाज का गुण दोष भरा चित्र ज्यों का त्यों आँकने का यथामति, यथासाध्य प्रयत्न किया है , अपने और आपके चरित्रों से ही इन पात्रों को गढ़ा है।" डाँ0 धर्मवीर भारती की दृष्टि में बूँद और समुद्र सामाजिक जीवन का यथार्थ लिए हुए है । उनके शब्द है, "लेखक ने समाज के लगभग प्रत्येक वर्ग का चित्रण किया है और हरेक की परम्परा, संस्कार, रहन–सहन, मनोवृत्तियाँ, तहज़ीब, आदतें और बोलचाल तक का इतना सजीव और मार्मिक चित्रण हुआ है कि मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं कि आज तक हिन्दी के किसी कथाकार ने उच्च से उच्च ओर निम्न से निम्न वर्ग के जीवन से इतनी निकटता और घनिष्ठता स्थापित करने और उसका चित्रण करने में इतनी सफलता नहीं पाई है ।"[1] बूँद व्यष्टि का अर्थ वहन करती है तो समुद्र समाज का प्रतीकार्थ है । व्यक्ति का अस्तित्व गौण नहीं. किन्तु व्यक्ति का कर्तव्य जनकल्याण की भावना से प्रेरित होना चाहिये। व्यक्ति –व्यक्ति अवश्य रहे, पर उसके व्यक्तिवादी चिन्तन में भी सामाजिक दृष्टिकोण का रखना अनिवार्य हो।[2]

भारतीय समाज की विविध प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व उपन्यास के विविध पात्रों ने किया है । सज्जन, महिपाल, कर्नल, बाबा रामजी, राजासर द्वारकादास, जानकीसरन आदि पात्र विभिन्न चारित्रिक विशेषताओं को उजागर करते है ।

वनकन्या, कल्याणी, शीला स्विंग, ताई, तारा, बड़ी, छोटी, चित्रा आदि नारी पात्र मध्यवर्गीय सामाजिक यथार्थ के विभिन्न पहलू प्रस्तुत करते हैं। अनेक पात्रों

---

1 सीमान्त प्रहरी (अमृतलाल नागर अंक) 15 अगस्त 1966 पृष्ठ–51

2 बूँद ओर समुद्र – पृष्ठ – 603

के माध्यम से वैयक्तिक चेतना द्वारा विशाल समाज की परम्पराओं, आस्थाओं एवं आचारों का उद्घाटन किया गया है । गली-मोहल्लों का जीवन सामाजिक , आर्थिक नैतिक, कुंठायें, सत्रांस और घुटन मध्यवर्गीय जीवन के ही तानो-बानों का रूप प्रकट करती है। इसी समाज और जीवन को ढेरों पात्रों के माध्यम से रूपायित किया गया है । नागर जी ने स्त्री पुरूष के पारस्परिक सम्बन्धों को विभिन्न पात्रों के माध्यम से विश्लेषित किया है। पाश्चात्य सभ्यता के अधिकाधिक प्रभाव एवं शिक्षा के प्रसार एवं रूढ़ियों और परम्पराओं के टूटने के साथ ही वैवाहिक परम्परा और संस्था का विघटन आरम्भ हो गया है । जीवन का कलात्मक भाषावैज्ञानिक और समाजशास्त्रीय विश्लेषण "बूँद ओर समुद्र" के वृहद् कलेवर में सहज-गम्य है। नागर जी ने आदर्श नारी के रूप में वनकन्या के व्यक्तित्व को प्रतिभाशाली , संस्कारशील, सुरूचि सम्पन्न जागरूक बिन्दुओं से निर्मित किया है । उसका दृढ़ चरित्र अन्त में सफल दाम्पत्य रूप में प्रकट होता है ।

डॉ० त्रिभुवन सिंह ने लिखा है - "रूढिग्रस्त समाज की दुर्बलताएँ, उसकी अव्यवस्थित मान्यतायें, उसके बहुमुखी परम्परा-पालित विकार एवं दुव्यर्वस्था ही वह अथाह समुद्र है जिसमें लघु बूँद की भांति प्रच्छन्न मानव विशाल लहरों की विभीषिका में अपना निजी अस्तित्व रखते हुए भी उससे पृथक् रहने को विवश है । लेकिन बूँद का अपना अस्तित्व है, यह स्वयं की इकाई में पूर्ण है ।"[1]

हिन्दू सामाजिक संगठन का आधार वर्णव्यवस्था रही है । वर्ण व्यवस्था ने ही समाज को ऊँच-नीच की श्रेणियों में बाँटा है । आज इस जातिगत भेद के कारण हमारा तथा हमारे समाज का विकास अवरूद्ध हुआ है । वर्णव्यवस्था पर आधारित "जातिवाद किसी समय भारत की शक्ति और उसके बाद हमारे निरन्तर पतन का कारण रहा है।"[2] रूढिवादी और परम्परागत विचारधारा ने समाज में ऊँच-नीच और छूआछूत जैसी अनेक बुराइयों को जन्म दिया है । अमृतलाल नागर इस उपन्यास में परम्परागत वर्णव्यवस्था पर आधारित जात-पांत के भेद को सामाजिक विकृति मानते हुए उसका विरोध किया है- "मैं जात-पांत कुछ नहीं मानता । मुझे इन सबसे घृणा है - घोर घृणा है।"[3] इसी उपन्यास में नागर

---

1. डॉ० त्रिभुवन सिंह : हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृष्ठ-524
2. बूँद और समुद्र, पृष्ठ - 534
3. बूँद और समुद्र, पृष्ठ - 107

जी ने जातिगत भेदभाव को समाज के लिए अभिशाप सिद्ध किया है – "जब तक हिन्दुस्तान में यह जटिल जातिभेद रहेगा, हम लाख सुधार करने पर भी समाज को "मानव समाज" के रूप में प्रतिष्ठित करने में असमर्थ रहेंगे ।"[1]

जाति प्रथा हिन्दू सामाजिक संगठन की महत्वपूर्ण संस्था है । आज समाज की सभी इकाइयों के साथ ही जाति की परम्परागत मान्यताएँ भी प्रभावित हुई है, और इसमें अनेक परिवर्तन दृष्टिगोचर हुए हैं। 'अमृत और विष' में भी हमें जाति प्रथा की झलक मिलती है। आज हमारे समाज में जातियों के आधार पर लोग संगठित है। जातिवाद अपने चरमोत्कर्ष पर है। 'अमृत और विष' में शादी–विवाह के अवसरों पर बर्तन आदि आवश्यक सामग्री जातीय संगठनों के द्वारा सुलभ होती है । सारस्वत् , गौड़, कान्यकुब्ज, नागर सभी जातियों के अपने–अपने पँचायती बरतन भण्डार है । पहुँच होने और आवश्यकता पड़ने पर ब्याह बारात के सबको ही बरतन मिल जाते हे ।"[2]

इस प्रकार जातीय संगठनों के विकास ने जाति–प्रथा को दृढ़ता प्रदान की है । स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त जातिप्रथा में तीव्र परिवर्तन हुए है । इस उपन्यास के रद्धू बाबू कहते हैं – "अब किसी भी जाति – बिरादरी में अपने पुराने गुन नहीं रह गये पण्डित जी । न अब वो आपके ब्राम्हण रहे, न वो हमारे ठाकुर और न इसके वे बनिये।"[3] इस प्रकार जाति अपने परम्परागत मूल्यों से हटी है । स्वार्थ एवं जीवन की विषम परिस्थितियों ने जातीय बन्धनों को तोड़ने में सहायता दी है । इस उपन्यास का ब्राम्हण पात्र रमेश अपनी बहन की शादी के लिए बर्तन प्राप्त करने के लिए बसन्तू हलवाई की विधवा भावज के पैर छूता है, – "रमेश के ब्राम्हणत्व को एक बार तो संकोच हुआ, पर गरज बावली के आगे मन के बन्धन टूट गए और उसने भी लच्छू के बाद ही दादी के घुटने छूकर प्रणाम किया।"[4]

---

1 बूँद और समुद्र, पृष्ठ – 533

4 अमृत और विष, पृष्ठ 60

3 अमृत और विष, पृष्ठ – 137

4 अमृत और विष, पृष्ठ – 64–65

"अमृत और विष"सामाजिक जीवन के प्रत्येक पहलू के असत् पक्ष का उद्घाटन कर सत् के प्रति आस्था, विश्वास और सत्य का संदेश देता है । नागर जी का यथार्थ प्रेमचंद के यथार्थ से अधिक तीखा है । वे यथार्थ के नग्न स्वरूप से सकुचाते नहीं, अपितु मानव विकृतियों का घृणित रूप स्वयं पाठकों को असत् के प्रति उपेक्षा करने के लिए प्रेरित करता है। अमृत और विष लेखक की आस्था और विश्वास एवं समाज के कुरूप के प्रति विद्रोह के परिपेक्ष्य में सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक औद्योगिक क्षेत्रों में घुमड़ने वाले विष के प्रतिकार की कहानी है ।

"नाच्यौ बहुत गोपाल" में अमृतलाल नागर जी ने वर्ण व्यवस्था पर तीखा प्रहार किया है वर्ण व्यवस्था ने ही समाज को ऊँच–नीच की श्रेणियों में बाँटा है । आज निम्न वर्ग में जन्म लेने वाला व्यक्ति कितना ही योग्य, विद्वान और धनदान क्यों न हो, वह उच्च वर्ण वालों से सामाजिक संबंध स्थापित नही कर सकता है । आज की समाज व्यवस्था प्राचीन काल से ही अपने परम्परागत रूप में चली आ रही है । आज वर्णभेद के आधार पर शोषण के विभिन्न रूप समाज में व्याप्त है । उच्चवर्ण, निम्नवर्ग के साथ अभद्र और अमानुषिक व्यवहार करता रहा है । इसी वर्णव्यवस्था के परम्परागत और रूढ़िवादी रूप में समाज में ऊँच–नीच, जातिभेद, छुआछूत जैसी अनेक बुराइयों को जन्म दिया है । बीसवीं शताब्दी के सामाजिक सुधारवादी आन्दोलनों से कुछ बौद्धिक चेतना जागृत हुई है। इस वर्ण व्यवस्था के विषय में नागर जी का अपना दृष्टिकोण है । वे वर्ण को जन्मना न मानते हुए कर्मणा और जीवन दृष्टि से सम्बद्ध मानते हैं । इस उपन्यास में नागर जी ने विशेष रूप से वर्ण व्यवस्था के जड़ संस्कारों तथा उच्च वर्ग के थोथे अभिमान और पाखण्ड पर प्रहार किया है।

"नाच्यौ बहुत गोपाल" उपन्यास में नागर जी ने ब्राम्हण से मेहतरानी बनी निर्गुनियाँ और मेहतर मोहन के माध्यम से उच्च वर्ण के उन मिथ्याभियानी पाखण्डी ब्राम्हणों की बड़ी निन्दा की है जो आछूतों को तो घृणा की दृष्टि से देखते हैं पर अछूत नारियों से अवैध संबंध रखते है । ब्राम्हण के घर में जन्मी–पली निर्गुनियों ब्राम्हणों की पोल खोलती है। "राय साहब पंडित बटुक परसाद ऊँचे कुल के ब्राम्हण होकर भी खुले आम मुसलमान

रंडी रखते थे । बाद में मेम भी रखी । उनकी उँचे कुल की ब्राम्हणी घरवाली ने अपने नौकर खड़गबहादुर को और न जाने किन–किन नौकरों, मालियों और नाते–रिश्तेदारों को अपना खसम बनाया था। आपको भी बनाया था, कौन–सी जात का आदमी छूटा उनसे ।"[1] दलित व अछूत जाति का मोहना ऊँची जाति के लोगों के प्रति घृणा व्यक्त करते हुए कहता है – "मुझे नफरत है इन सब ऊँची कोम वालों से । साले सोहबत के शौक में हमारी औरतों को अंकेले में दबोचते है। सातों करम करके बाहर से उजले बनते है। और फिर उन्हीं से जो बच्चे होते है, उन्हें छूते हुए भी घिनाते है।"[2]

ऐसी वर्ण व्यवस्था और उसकी सामाजिक मान्यता के प्रति "नागर जी" के मन में विद्रोह का भाव है । ऊँची जाति के लोगों की उच्चता पर नागर जी ने प्रश्नचिन्ह लगाया है ।"

सुप्रतिष्ठित ब्राम्हणियों, क्षत्राणियों, वैश्य स्त्रियों के गर्भ से उत्पन्न होने वाली सबकी सब सन्तानें क्या, ब्राम्हण, क्षत्रिय और वैश्य वीर्य से ही उत्पन्न होती हे ? शूद्राणियों के गर्भ में क्या केवल शुद्र बीज ही पनपता है ?"[3]

इस तरह नागर जी ने हिन्दू वर्ण व्यवस्था के खोखलेपन को उजागर करते हुए तीव्र प्रहार किया है ।

जाति व्यवस्था ने ही हमारे समाज में छूआछूत की भयानक समस्या को जन्म दिया है । धार्मिक अन्धविश्वासों द्वारा पोषित छूआछूत की भावनायें हिन्दू समाज में आज भी व्याप्त है । नागर जी ने अपने इस उपन्यास में अछूत– समस्या को मेहतर समस्या के रूप में प्रस्तुत किया है । हिन्दू समाज में सर्वाधिक अछूत भंगी को ही समझा जाता हे। अब अछूतोंद्धार आन्दोलनों तथा आधुनिक शिक्षा प्रचार से स्वयं अछूत वर्ग में नयी चेतना जागृत

---

1. नाच्यौ बहुत गोपाल – पृष्ठ – 151
2. नाच्यौ बहुत गोपाल – पुष्ठ 117
3. नाच्यौ बहुत गोपाल, पृष्ठ–265

होती जा रही है और कुछ पढ़े लिखे मेहतर जाति के नवयुवकों में अपनी वर्तमान सामाजिक स्थिति के प्रति आक्रोश का भाव दिखालई देता है –"बड़े लोग गन्दगीकरें, सभी करते हैं लेकिन हम ऐसे कमनसी व नालायक पैदा हुए है कि हमें अपनी गन्दगी भी साफ करनी पड़ती है, दूसरे की भी । भला ये कहाँ का न्या है ।"[1]

'बिखरे तिनके' तथा 'अग्निगर्भा' में वर्ण, जाति तथा अछूत समस्या पर नागर जी ने कोई विशेष विचार व्यक्त नहीं किये है। नागर जी अपने मिलनसार व्यक्तित्व तथा व्यापक सामाजिक सम्बन्धों के कारण हमें उनके उपन्यासों में मानव–जीवन की विविधता व्यापकता और संभावना दिखाई देती है । युग जीवन को उसकी समग्रता में प्रस्तुत करने के लिए ही नागर जी ने सम्पूर्ण भारतीय समाज का संदर्भ ग्रहण किया है। समाज की विभिन्न समस्याओं और मानव के अन्तर्मन की अभिव्यक्ति के प्रयास में एक ओर वर्ग प्रतिनिधित्व, करने वाले पात्रों का निर्माण किया है तो दूसरी ओर व्यक्ति के व्यक्तित्व का विश्लेषण करने के लिए व्यक्ति–रूप निमित किया है ।

समाज में नारी की स्थिति

किसी भी देश की संस्कृति, राष्ट्रीयता, सामाजिक गतिविधियॉ, राजनीतिक प्रभाव, समाज की समृद्धि और निर्धनता, मनुष्य की अस्तित्व चेतना उपन्यासों की विषयवस्तु होती है। प्रेमचन्द जी के समान ही नागर जी ने अपने उपन्यास साहित्य में सामाजिक यथार्थ को महत्व दिया है । पुरातन मूल्यों, जर्जर रूढ़ियों और आधुनिक सभ्यता के तथाकथित अधिकारों के मध्य नारी एक समस्या बन गई है। पुरूष केन्द्रित समाज में नारी अपना स्वतन्त्र अस्तित्व खोकर अन्य सामान्य समस्याओं की भाँति एक वस्तु के रूप में उपस्थित हुई है। स्त्री–पुरूषों के संबंध सामाजिक संस्कारों के कारण परम्परित मानदण्डों और परिवर्तित मूल्यों के आधार पर प्रतिष्ठित है । निश्चय ही स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् तेजी से बदलते युग वातावरण में नारी की स्थिति में आश्चर्यजनक रूप से खुलापन आया है । नागर जी का समस्त

---

1 नाच्यौ बहुत गोपाल, पृष्ठ – 93–94

साहित्य एक लम्बे युग का सांगोपांग दर्पण है। वे नारी को पुरूष की तरह ही समाज की एक स्वतन्त्र इकाई मानते है। वह भी समाज के समुद्र की एक सार्थक बूँद है। सदियों से चली आती परम्पराओं के कारण पीड़ित नारी की कराहटों ने सामाजिक चेतना को स्वतः दंशित किया है । ✓

स्वातन्त्र्योत्तर सामाजिक और पारिवारिक समस्याओं के समन्वित स्वरूप को नये परिवेश के संदर्भ में इन उपन्यासों में अभिव्यक्ति मिली है। नागर जी के समसामयिक सामाजिक उपन्यासों में नारी समस्याओं की अभिव्यक्ति प्राप्त होती है । स्वातन्त्र्योत्तर नवचेतना का सर्वाधिक प्रभाव भारतीय नारी पर पड़ा और वह परम्परागत आदर्शो का खोल उतार कर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आगे बढने के लिए उत्सुक हो उठी। भारतीय स्वतंत्रता के साथ–साथ समाज का पुराना ढाँचा टूटने लगा । पुराने मूल्यों का विघटन आरम्भ हो जाता है और नये मूल्यों के निर्माण का क्रम सामने आता है। स्वतंत्रता के पश्चात् यह परिवर्तन अचानक नहीं हुआ। इस जागृति एवं नारी मुक्ति के प्रयास स्वतंत्रता के पूर्व ही आरम्भ हो गए थे। राममोहन राय इसके अग्रदूत थे । औद्योगिकीकरण तथा तकनीकी प्रगति के कारण नर–नारी के सम्बन्धों में अभिनव क्रांति का सूत्रपात होता है। समाज में स्त्री–पुरूष के सह–प्रयत्नों से नारी वर्ग को समान अधिकार मिला है, और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नारी–पुरूष की सहधर्मिणी बनती है। इस प्रकार नारी अनेक रूपों में नागर जी के उपन्यासों में उपस्थित है।

नागर जी के अधिकतर उपन्यासों में नारी की उपस्थिति उनकी समस्याओं के साथ हैं । नारी की वास्तविक पीड़ा एक ही है, किन्तु उसकी स्थिति तथा उसकी समस्यायें प्रत्येक उपन्यास में बदलती रहती है। महाकाल से लेकर अग्निगर्भा तक अपने सभी उपन्यासों में नागर जी ने पुरूष प्रधान समाज में नारी की दोयम दर्जे की स्थिति और उसकी दुर्गति के मार्मिक चित्र प्रस्तुत किये है । ऐतिहासिक उपन्यासों में भी नारी जीवन की विवशता को नागर जी ने अपनी सम्पूर्ण संवदेना के साथ चित्रित किया है। आज भी समाज का नारी के प्रति वही सामन्ती दृष्टिकोण है कि नारी पुरूष की सम्पत्ति है। पुरूष को अपनी पूँजी का इच्छानुसार उपयोग करने का अधिकार है 'महाकाल' का एक पात्र शीबू है जिसके पास सीधा

तर्क है "पत्नी–पति की मिल्कियत है और इसीलिए कुदरतन उसे सर्वाधिकार प्राप्त है। बच्चा अपने खिलौने को जैसे जी चाहें खेले, उसे तोड़ भी डालें, इसमें खिलौने को शिकायत क्यों हो! आगे भी कहता है, यह मेरी वस्तु है । मैं इसे बेचूँगा ।"[1]

इस उपन्यास में नारी के प्रति पुरूष समाज के इस दृष्टिकोण का चित्रण मिलता है । अकाल की विभीषिका नारी की स्थिति को और भी शोचनीय बना देती है। अनेक सतियों को वेश्या बनना पड़ता है। नारी के सतीत्व पर दिन दहाड़े, डाका डाला जाता है। उनकी इज्जत लूटी जाती है। पैसे के लालच में नर–पिशाच मोनाई तथा नुरूद्दीन भूखी लाचार स्त्रियों का व्यापार करते हैं। "आबरू नाम की कोई चीज इस वक्त तक अनेक साथ नहीं रह गयी थी। उनकी बहु–बेटियाँ भी खुले आम धर्मशालाओं और अनाथालयों में भेजी जाने लगी थी। हर एक हर एक के घर का राज अच्छी तरह से जानता था, फिर आबरू शब्द की रक्षा जबान से बराबर की जा रही थी।"[2] आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर न होने के कारण भी नारी पुरूष द्वारा प्रताड़ित की जाती है । नागर जी ने आर्थिक पराधीनता को नारी समस्या का एक प्रमुख कारण माना है । आथिक दृष्टि से जब तक नारी पराधीन रहेगी, तब तक उसे सब प्रकार की यातनायें सहनी ही होगी । यहीं युग–युगों से पीड़ित, दमित नारी की करूण वेदना साकार हो उठती है। नागर जी ने नारी के करूण क्रन्दन को चित्रित कर दिया है। उसका कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं, वह पुरूष वर्ग की भूख मिटाने का एक साधन मात्र है । हिन्दू धर्म अपने वेद शास्त्रों की दुहाइ देकर भी नारी को दासी रूप से ऊपर न उठा सका, तब वह विद्रोहिणी बनकर सामने आई। शिबू की पत्नी अपने पति के प्रति भयमुक्त होकर उसे तमाचा मरती है । यह तमाचा न केवल पुरूषों के नृशंस अत्याचारों से उत्पन्न घृणा का प्रतीक है, अपितु स्त्री जाति के स्वातन्त्र्यकामी व्यक्तित्व का दिग्दर्शक भी है , और उनकी स्वच्छन्द मनोवृति, स्वावलम्बी जीवन–दृष्टि का निरूपक भी है।

नागर जी नारी स्वातंत्र्य तथा समानाधिकार के प्रबल समर्थक थे। महाकाल के नायक पाँचू गोपाल द्वारा नागर जी ने नारी स्वतन्त्रता की बात उठायी है– "उन्हें भी खाने

---

1 भूख (महाकाल), पृष्ठ– 192, 212. 19°1

2 भूख , पृष्ठ – 186

का हक है, उन्हें भी जीने का हक है । पुरूष इस हद तक स्त्री को अपनी दासी बनाकर नहीं दबा सकता।" नागर जी ने आगे भी लिखा है – "हमें सबका समान अधिकार स्वीकार करना ही होगा। जब तक एक भी स्त्री दासी रहेगी, उसके पेट से दास ही उत्पन्न होंगे। दासता जीवन को मृत्यु की जडता से बाँध देते है।"[1]

नागर जी ने नारी की दयनीय सामाजिक स्थिति में सुधार लाना अपना मुख्य लक्ष्य बनाया है । पुरूष चाहे जितनी भी प्रगति क्यों न कर चुका हो, मन में कहीं न कहीं वह धारणा छिपाये रहता है कि नारी पर उसका एकाधिकार है। नागर जी ने पुरूष की इस सामन्ती दृष्टि पर कसकर प्रहार किया है ।

"सेठ बाँकेमल" में नागर जी ने आज की आधुनिक शिक्षित नारी की चर्चा सेठ बाँकेमल द्वारा प्रस्तुत की है। सेठ बाँकेमल आज के बदले जमाने को कोस रहे हैं। वे आज की शिक्षित नारी के आलोचक है । पहले की औरते चकरी पीसती थी। वे अपने धरम की खातिर सती हो जाती थी । "अब तो जमानाई बदल गया ससुरा। आजकल की पढी-लिखी लड़कियॉ हमारी धौंस थोडी मानै हैं। तो बात जे है, भैंयो कि वो साला बाईसकोप चला है, सनीमा विसमें साले में रोज येई बात बताई जावे है। किसी भी साले ऐरे-गैरे खुसकैट के साथ आँख लड़ा ली और जो माँ-बाप भला चाने वाले मना करें है तो बिनों की छाती पै सवार हो जावै हैं ससुरी ।"[2] यही नहीं अपने युग की वकालत करने वाले सेठ बाँकेमल को अपने जमाने की नारी के सतीत्व पर गर्व है और नये युग की स्त्रियों के प्रति उनमें आक्रोश है- "इसी हमारे भारतवर्ष में औरतें सती होवें थी; बिनको देवी मान के पूजे थे। अपनी इज्जत बचाने के लिए ससुरिया आग में जल के भसम हो जाया करें थी, और अब ये जमाना आन लगा है के घर में सब औरतें-लड़कियाँ ऐसे ऐसे बाईसकोप देख-देख के रंडिया हुई चली जायें साली ? नई मै जे मई करुँ हूँ के पैले के जमाने में सब शुद्ध पवित्तर ही थें, ऐसी कोई वारदातें होवइ नई थी। नई होवे थी जरूर पर बहुत कम- और सो भी बढ़ी,

---

1 भूख (महाकाल), पृष्ठ - 150-151

2. सेठ बाँकेमल - अमृतलाल नागर, पृष्ठ-110

दबी, ढंकी, भैयो।"[1] भारतीय समाज में सबसे अधिक पीड़ित, प्रताड़ित एवं बन्धनग्रस्त नारी ही रही है ।

"बूँद और समुद्र" उपन्यास मे नारी की सामाजिक आर्थिक स्वतन्त्रता तथा नारी पुरूष के समन अधिकारों का प्रश्न उठाया गया है । नागर जी स्वीकार करते है– "नारी होना आज की सामाजिक स्थिति में अभिशाप है ।"[2] वे अभिशप्त नारी जाति के शोषण की ओर ध्यान खींचते है । "हमारे समाज में स्त्री भी सर्वहारा है। वह हद से ज्यादा सताई जा चुकी है – हद से ज्यादा ।"[3] हमारे समाज में गिने हुए घरों को छोड़कर सभी जगहों पर नारी का शोषण होता है – "सौ में मुश्किल से दस पाँच घर छोड़ दो, बाकी , हिन्दुस्तान का हर घर औरतों के लिए कसाई खाना है।[4] बूँद और समुद्र में आयी ये पंक्तियाँ नारी जीवन की विडम्बनाओं को व्यक्त करती है । ताई , बड़ी , वनकन्या की भाभी, चित्रा, पगली, सज्जन की माँ तथा महिला सेवा मण्डल की नारियों की व्यथा कथा से पुरूषों द्वारा नारी पर किये गये विविध प्रकार के अत्याचारों के चित्र उभरते हैं। आज की सामाजिक व्यवस्था में नारी की स्थिति पर उपन्यास का एक पात्र महिपाल कहता है – "मौजूदा समाज में नारी की एक अजीब सामाजिक स्थिति है । खासतौर से हमारे देश में तो यह विचित्रता और भी स्पष्ट होकर झलकती है । हम देखते हैं कि औरत इस समय आम घरों में, किसी न किसी रूप में बेइज्जती का जीवन बिताती हैं। छोटे आदमी कहलाने वाले को कौन कहे, बड़े–बड़े सभ्य रईसों और पण्डितों के घरों में भी स्त्री–जाति का दमन होता है, तरह तरह से उनका अपमान होता है । आम – जहनियत में स्त्री घर का काम काज, सबकी सेवा– टहल करने वाली और पुरूष के भोग की वस्तु होने के अलावा और कुछ भी नहीं ।"[5]

---

1 सेठ बाँकेमल – अमृतलाल नागर , पृष्ठ – 111

2 बूँद और समुद्र – पुष्ठ – 417

3 बूँद और समुद्र , पृष्ठ – 93

4. बूँद और समुद्र – पृष्ठ – 93

5 बूँद और समुद्र , पृष्ठ – 108

वर्तमान समाज व्यवस्था में स्त्री–पुरूष के संबंधों के बारे में प्रगतिशील विचार सम्पन्न वनकन्या सोचती हैं – "घर–घर में पति–पत्नी के भीषण मतभेद हैं, कलह और छल–कपट से स्त्री–पुरूष का यह अन्यतम नाता दूषित होकर आज के बहुत बड़े नागरिक समाज को अपनी सडाँध से भर रहा है ।"[1]

नागर जी यह मानते हैं कि बीसवीं सदी के आरम्भ के सुधारवादी ढंग से वर्तमान नारी जीवन का सुधार नहीं किया जा सकता है। इसलिए उनके उपन्यासों और कहानियों में चित्रित आधुनिक शिक्षित नारियों की वाणी में अपने वर्ग के शोषण के विरूद्ध विद्रोह के स्वर गूँजते है। प्रस्तुत उपसन्यास में "वनकन्या अपने निजी जीवन में समाज के लाँछनों और आक्षेपों की परवाह नीं करती, उसका अपना स्वतंत्र अस्तित्व है। वह समाज में नर–नारी समानता तथा नारी को स्वाधीनता के लिए संघर्ष करती है । वन कन्या सामन्ती नैतिकता के विरूद्ध है वह उन नैतिक मूल्यों और सामाजिक धारणाओं का विरोध करती है जो नारी के स्वतंत्र व्यक्तित्व विकास में बाधक है – "हमे अब झूठे धर्म का भय, और झूठी आबरू का मायाजाल तोड़कर कहना भी होगा और लडना भी होगा । "[2]

आर्थिक पराधीनता को नागर जी ने नारी समस्याओं का प्रमुख कारण माना है । आर्थिक दृष्टि से जब तक नारी पराधीन रहेगी , तब तक उसे सब प्रकार की यातनायें सहनी ही होंगी । वनकन्या इस स्थिति का विश्लेषण करती हुई सोचती है – "स्त्री ओर पुरूष आमतौर पर एक दूसरे की इज्जत नहीं करते है । स्त्री आम तौर पर आर्थिक दृष्टि से पुरूष की आश्रिता है, उसका व्यक्तित्व स्वतन्त्र नहीं । इस देश की स्त्रियाँ सदा से यह दुःख भार उठाती आई हैं। सती को भी सहना पड़ा था, द्रोपदी को भी।"[3] मध्यवर्गीय समाज की अधिकांश स्त्रियाँ आर्थिक पराधीनता के कारण कुंठित जीवन व्यतीत करती हैं। आज की मध्यवर्गीय नारी आर्थिक परतन्त्रता के कारण कितनी शोषित है, इसका उदाहरण है – वनकन्या की भाभी और महिपाल की पत्नी कल्याणी । आर्थिक पराधीनता कहीं नारी को आत्महत्या

---

1 बूँद और समुद्र , पृष्ठ – 463

2 बूँद और समुद्र , पृष्ठ 143

3 बूँद और समुद्र , पृष्ठ – 417

करने पर विवश करती है और कहीं मानसिक क्लेश सहने पर मजबूर करती है।

'अमृत और विष' उपन्यास में नारी स्वातन्त्र्य का संदर्भ है जिसकी आड़ मे यौन स्वातन्त्र्य की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिलता है । अपने जीवन में सुख-सुविधा और भौतिक सुख की पूर्ति के लिये समाज में अनैतिक रूप से यौन स्वातन्त्र्य को नारी से बढ़ावा दिया। आज समाज में नारी का वास्तविक रूप बदलता नजर आ रहा है । रेवती के अनुसार ओरत बच्चे ही नहीं पैदा करती , रूपये भी पैदा करती है ।"[1]

अमृत और विष में नागर जी ने "गैहाबानों" के रूप में ऐसी आधुनिक नारी के विचारों का चित्र सामने लाते है, जो विवाह के बन्धन को आवश्यक नहीं मानती और मुक्ति अभिसार में विश्वास रखकर अपने जीवन का नक्शा खुद बनाना चाहती है। स्वच्छन्द भोग उसके लिए नारी स्वातंत्र्य का मूल आधार है । इसलिए वह विवाह संस्था का विरोध करती हुई कहती है – "औरत के साथ अस्मत का जो हौआ बँधा है उसे, माफ कीजिएगा, मैं नहीं मानती । बॉयोलाजिकल अर्जेज (कामिक आवश्यकतायें) अपनी जगह पर और जिन्दगी का सवाल अपनी जगह पर ।"[2]

भारतीय समाज में नारी ही सबसे अधिक पीड़ित और बन्धनग्रस्त रही है। समाज में एक ओर पुरूषों को स्वच्छन्द जीवन भोगने के लिए अनेक सामाजिक सुविधायें उपलब्ध रही है। दूसरी तरफ नारी घर की कारा में बन्द पुरूषों के हाथ की कठपुतली बनी रही । पुरूष केन्द्रित समाज तथा परिवार में नारी काणे हीन समझकर उसे समानाधिकारों से वंचित रखा गया । फलतः वह हीन भावनाग्रस्त होकर आण्जीवन सामाजिक अत्याचार मौन रूप से सहती रही है । नागर जी ने अपने सभी उपन्यासों में नारी के शोषण और उसकी स्थिति पर विचार किया है । इस उपन्यास में भी "निर्गुनियाँ" के माध्यम से जानी जीवन की समस्याओं को उनके यथार्थ रूप से प्रस्तुत किया है । "नाच्यौ बहुत गोपाल" में भिन्न-भिन्न स्थलों पर भिन्न-भिन्न पात्रों के माध्यम से व्यक्त विचार नारी की सामाजिक स्थिति को उद्घाटित करते हैं। आज नारी पुरूष के लिए मात्र भोग की वस्तु रह गयी हे।

---

1. अमृत और विष, पृष्ठ – 646
2. अमृत और विष, पृष्ठ – 496

इस उपन्यास का एक पात्र कहता है कि – "बूटीफुल औरत मर्दो के लिए कचालू–मटर की चाट होती है ।"[1] निर्गुनियां पुरूष जाति से ही पीड़ित होकर ब्राम्हणी से मेहतरानी बनती है। साथ ही उसने नारी और दलित दोनों ही वर्गों की संयुक्त पीड़ा को सहा है जिससे वह अपने जीवन के कटु यथार्थ को उद्घाटित करती हुई कहती है – "दुनिया में दो पुराने से पुराने गुलाम है – "एक भंगी और दूसरी औरत । जब तक ये गुलाम हैं आपकी आजादी रूपये में पूरे सौ के सौ नये पैसे भर झूठी है ।"[2] वह आगे कहती है कि "औरत हर तरह से मरद जाति की दबोच में है । जब चाहता है , गला सहलाता है और जब चाहता है उसे घोंट भी देता है । जिसके पास ताकत होती है, वह कमजोर के साथ यही करता है। सदा करता आया और सदा करता रहेगा।"[3]

"नागर जी ने नारी के प्रति पुरूष की अधिकार भावना पर स्पष्ट प्रहार किया है ।"

"अग्निगर्भा" उपन्यास का मूल कथ्य नारी समस्याओं से उजागर करने के लिये लिखा है । नागर जी ने इस उपन्यास में दहेज के साथ ही नारी की आकांक्षा को भी प्रस्तुत किया है। आज की नारी की मनःस्थिति क्या है ? वह समाज में किस प्रकार रहना चाहती हैं? आदि प्रश्नों को नागर जी ने उठाया है । "अग्निगर्भा" उपन्यास की नायिका "सीता" में हमें नारी के दोनों रूप स्वतन्त्रता, आकांक्षा दिखाई देती है । नागर जी ने सीता के माध्यम से नारी स्वातन्त्र्य और उसकी आकांक्षा को प्रस्तुत किया है । सीता अपने भविष्य की चिन्ता स्वयं करती हैं "कर्जा–कर्जा–कर्जा । उन्हें अपने कर्जें की चिन्ता है, तो मुझे अपने कैरियर की आखिर मेरी भी कुछ अपनी सत्ता है । पढना चाहती हूं । पढ़ाई से जुड़ी रहना चाहती हूँ। मेरे जीवन के हर कदम माँ बाप के कहने पर ही नहीं चल सकते । स्वयं मेरी भी अपनी कुछ सत्ता है। सीता के मन में इस समय अपने पिता के लिए बड़ी शिकायतें थी।"

---

1. नाच्यौ बहुत गोपाल, पृष्ठ – 167
2. नाच्यौ बहुत गोपाल, पृष्ठ – 343
3. नाच्यौ बहुत गोपाल , पृष्ठ – 271

आगे भी वह नारी जीवन पर विचार करती हुई कहती है – "मुक्ता बहिन जी की शादी की, पर बेचारी को क्या सुख मिला ? प्रथम श्रेणी में बी0ए0 होने का क्या लाभ मिला बेचारी को ? केवल चौका–चूल्हा, तीन बच्चों, सास और पति की देखभाल, पढ़ने के नाम पर घर कोई दैनिक समाचार पत्र तक नहीं आता । कम दहेज दे पाने के कारण साधारण क्लर्क के ग्रेड का पति ही दिलवा सके , मेरी मुक्ता बहिन जी को ।"[1]

आज समाज में नारी की स्थिति पहले से काफी कुछ बदली है, किन्तु सब मिलाकर नारी की समस्यायें पहले जैसी है। नारी की अलग–अलग रूचि है और वह हर क्षेत्र में स्वेच्छापूर्वक चुनाव करना चाहती है, चाहे वह वर का चुनाव हो अथवा नौकरी का। उपन्यास की नायिका सीता नारी की स्थिति पर विचार करती हुई कहती है – स्त्री भले ही पुरूष की बराबरी में अन्तरिक्ष तक उठ गई हो, तीन–तीन लोकतान्त्रिक देशों में प्रधानमंत्री बन चुकी हो, पर आधुनिक नारी आज भी पाषाण युग की नारी की तरह ही तरह–तरह से त्रस्त ।"[2] इन परिस्थितियों के बावजूद इस उपन्यास में स्वच्छन्द और महत्वाकांक्षी नारी की सृष्टि हुई, जो अपने विचारों से एक नये समाज की रचना के लिये प्रयत्नरत दिखाई देती है। उपन्यास की एक पात्र "गीता" कहती है कि "मैं अब बालिग हूँ पापा? लीगली आप का घर छोड़ दूँगी । मुक्ता जिजिया और सीता जिज्जी की तरह आप की जीवन की फिलासफी से बँधी नहीं हूँ । अपना रास्ता आप बनाऊँगी ।"[3]

आज की स्त्री पुरानी सभी मान्यताओं से हटकर नई मान्यताएँ स्थापित करना चाहती है । "सीता" एक जगह अपने विचार स्पष्ट करती है – "तुम स्त्री को दासी और पैसे को अपना मालिक मानते हो और मैं स्त्री को पति की जीवनसंगिनी, सह अधिकारिणी मानती हूँ ।"[4]

---

1 अग्निगर्भा – पृष्ठ – 8

2. वही , पृष्ठ– 8, 9

3. अग्निगर्भा, पृष्ठ –23

4 अग्निगर्भा, पृष्ठ – 104

3 अग्निगर्भा, पृष्ठ – 144

<u>विवाह प्रेम तथा विवाहेत्तर सम्बन्ध</u>

विवाह दो विषम –लिंगियों को पारिवारिक जीवन में प्रवेश करने की सामाजिक, धार्मिक तथा कानूनी स्वीकृति है । स्त्री पुरूषों एवं बच्चों को विभिन्न सामाजिक व आर्थिक क्रियाओं में सहगामी बनाना, सत्तानोत्पति करना तथा उनका लालन–पालन एव समाजीकरण करना विवाह के प्रमुख कार्य है।

बोगार्डस के अनुसार – "विवाह स्त्री और पुरूष के पारिवारिक जीवन में प्रवेश करने की संस्था है ।"[1]

वेस्टरमार्क के अनुसार – "विवाह एक या . . -अधिक पुरूषों का एक या अधिक स्त्रियों के साथ होने वाला वह सम्बन्ध है, जिसे प्रथा या कानून स्वीकार करता है और जिसमें इस संगठन में आने वाले दोनों पक्षों एवं उनसे उत्पन्न बच्चों के अधिकार एव कर्तव्यों का समावेश होता है।"[2] **वेस्टरमार्क** ने विवाह बन्धन में एक समय में एकाधिक स्त्री पुरूषों के सम्बन्धों को स्वीकार किया है, जिन्हें प्रथा एवं कानून की मान्यता प्राप्त होती है । पति–पत्नी और उनसे उत्पन्न सन्तानों को कुछ अधिकार और दायित्व प्राप्त होते है ।

विवाह ही परिवार की आधारशिला है और परिवार में ही बच्चों का समाजीकरण एवं पालन–पोषण करता है । समाज की निरन्तरता विवाह एवं परिवार से ही सम्भव है। यह नातेदारी का भी अधिकार है । विवाह संस्था का पारिवारिक जीवन की सुदृढ़ता की दृष्टि से विशेष महत्व है । विवाह के आधार पर ही परिवार की स्थापना होती है। इसीलिए तो विवाह को परिवार का प्रवेशद्वार कहा गया है । परिवार की स्थापना एव सन्तानोत्पति के बाद ही व्यक्ति पूर्णता को प्राप्त करता है । पारिवारिक जीवन की सुदृढ़ता को आधार प्रदान करता है – विवाह ।

---

1 ई.एस.बोगार्ड्स ; सोशियोलॉजी , पृष्ठ – 75, 1957

2 वेस्टरमार्क; द हिस्ट्री ऑफ हुमन मैरिज, खण्ड–1 पृष्ठ–26

परिवर्तन प्रकृति का नियम है। जीवन और जगत के प्रत्येक क्षेत्र में परिवर्तन की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है । पिछले कुछ दशकों में भारत में शिक्षा के प्रचार व प्रसार तथा विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की प्रगति के कारण मानव जीवन में अनेक परिवर्तन आए है। आज विवाह, परिवार, जाति एवं अन्य सामाजिक संस्थायें परिवर्तन के मध्य है। इनका अब वह स्वरूप नहीं रहा है जो कुछ समय पहले तक था । औद्योगिकीकरण, नगरीकरण, पश्चिमीकरण, शिक्षा के व्यापक प्रसार, स्त्री आन्दोलन धार्मिक आस्था में कमी तथा विवाह सम्बन्धी कानूनों के उदार होने के कारणों से विवाह का परम्परागत स्वरूप बदल रहा है। नागर जी ने अपने उपन्यासों में यह भी चित्रित किया है कि विवाह मानव समाज के लिए जरूरी रस्म है. ऊँचा सिद्धान्त है, उनका यह भी मानना था कि "स्त्री–पुरूष की सहज जोडी देश काल से परे हैं। वह नित्य है । उसका अन्त नहीं।;"[1] परिवर्तन के कारण आज की समाज विवाह जैसे पवित्र संस्कार को निरर्थक घोषित कर रहा है । पश्चिमी सभ्यता एवं आधुनिक शिक्षा ने विवाह संस्था की जड़ें हिला दी है । आज समाज में विवाह के प्रति उपेक्षा सी दिखाई देती है। विवाह को स्वतन्त्र जीवन के लिए बाधक समझा जा रहा है। आधुनिक भारत में पारिवारिक जीवन का भार ढोने में असमर्थ युवक–युवतियाँ विवाह के प्रति हतोत्साहित है । यह स्थितियाँ भी लेखक ने –बूँद और समुद्र" में चित्रित की है।

"महाकाल" नागर जी का पहला उपन्यास है, जिसमें पति–पत्नी के सम्बन्धों में आई दरारों का चित्रण मिलता है। पूरा समाज अभाव और दैन्य की त्रासदी से घिरा हुआ था। किन्तु "सेठ बाँकेमल" उपन्यास में अन्तर्जातीय विवाह का नागर जी ने समर्थन किया है तथा विदेश जाकर प्रायश्चित को अनावश्यक बतलाते हुए चौबे जी गांव वालों से कहते हैं – "सरम नहीं आवे है तुम सबको जो एक गरीब बाम्हन के गले में छुरी फेट रहे हो तुम लोग? क्या किया है विस बिचारी लड़की ने जो अपने भाई के ब्याह में हाजिर नहीं हो सके हैं। विसका जे0 विलायत हो आया है , इसी से ?"[2]

---

1 बूँद और समुद्र, पृष्ठ – 268

2. सेठ बाँकेमल – पृष्ठ – 54

"बूँद और समुद्र" में वैवाहिक सम्बन्धों और उनमें आयी विकृतियों का भरपूर उद्घाटन हुआ है । विवाह संस्था के सम्बन्ध में नागर जी की अपनी मान्यता है- "शादी मानव समाज की जरूरी रस्म है, ऊँचा सिद्धान्त है।"[1]

नागर जी ने विवाह को स्त्री पुरूष के चिरन्तन सम्बन्ध के रूप में स्वीकार किया है। वस्तुतः नागर जी समाज में परिवर्तन के आकांक्षी होकर भी समाज की उन नैतिक मान्यताओं को स्थिर रखना चाहते है। बूँद और समुद्र उपन्यास में नागर जी ने अभिभावकों द्वारा आयोजित विवाहों की असफलता का उल्लेख किया है। उनकी मान्यता है कि अनमेल विवाह के कारण पति-पत्नी प्रायः व्याभिचार की ओर बढ़ जाते है। महिपाल अपने असफल विवाह के सम्बन्ध में कहता है - "मेरी शादी असफल रही, जैसे माता-पिता द्वारा तय हो गई शादियाँ आमतौर पर होती है । हमारे अस्सी फीसदी घटों में ऐसी शादियाँ जीवन भर के कर्जे की तरह निभाई जाती है ।"[2]

जिनके बल पर समाज निर्मित हुआ है और जिनके आधार पर वह टिका है।

"बूँद और समुद्र" में विभिन्न पात्र अपने अनुभवों के आधार पर विवाह से सम्बन्धित विचार प्रस्तुत करते हैं । उपन्यास का पात्र महिपाल अपने विवाह को अपने ऊपर माता-पिता द्वारा किया गया अत्याचार मानता है । वह स्पष्ट कहता है कि "मेरी शादी असफल रही , जैसे - माता-पिता द्वारा तय की गई शादियाँ जीवन भर कर्ज की तरह निभाई जाती हैं। नतीजा यह होता है कि कहीं पति, कहीं पत्नी और कहीं पति-पत्नी दोनों एक दूसरे के पीठ पीछे व्यवहार करते है ।[3] वह स्वयं इस अत्याचार से पीड़ित है। स्त्री-पुरूष के एक होकर रहने के उद्देश्य पर प्रकाश डालता हुआ महिपाल कहता है कि "दरअसल होता यह है कि इसमें से हरेक अपने लिए एक ऐसा अपोजिट सेक्स वाला साथी खोजता है जिससे उसके बहुत से विचारों, कामनाओं और आदतों की पटरी बैठ जाए । दुःख

---

1 बूँद और समुद्र - पृष्ठ - 254

2 बूँद और समुद्र - पृष्ठ - 93

3 बूँद और समुद्र, पृष्ठ - 96

दर्द , हारी बीमारी की मैटीरियल रिस्पां–सिबिलिटीज से लेकर सुन्दर, नैतिक और आध्यात्मिक धरातल तक वह अपने जीवन साथी के सहारे उठ सकें।"[1] इसके विपरीत शीला यह कहती है कि "सिर्फ ऐसी ही शादियों में क्यों लव मैरेजज में भी यही होता है । जब तक नये–नये रोमियों और जूलियर रहे . दोनों में बडा प्रेम रहा, फिर या तो तलाक या आपस में दगाबाजी यही दो रास्ते रहे जाते है ।"[2] इसी मत का समर्थन भभूति सुनार की छोटी पुत्रबधू करती हुई कहती है कि "नहीं जीजी दोनो ही बातें है । बहुत सी लव मैरिजे भी फेल कर जाती है । मैं तो कहती हूँ कि ये तारा बहन बड़े नसीब वाली है कि जो प्रेम के जाल में फँसी भी और उसके बाद भी भगवान ने जेसा सुहाग इनको दिया, वैसा सबको मिले । नहीं तो मतलब भरे का प्रेम होता है – जहाँ मतलब सधा नहीं कि प्रेमी जी चम्पत हो जाते हैं ।"[3]

'बूंद और समुद्र' में सज्जन को महिपाल एक जगह बताता है कि "महाभारत में सूर्य और कुन्ती एक डायलाग है, सूर्य कहता है कि "हे सुन्दरी तुम्हारे माता–पिता, गुरूजन किसी को भी तुम्हारे दान करने का अधिकार नहीं । कन्या शब्द का अर्थ यह है कि वह सबकी कामना पूरी कर सकती है ।"[4]

सज्जन के अनुसार लड़के का विवाह तीस वर्ष से कम आयु में नहीं होना चाहिए क्योकि इससे पूर्ण उसमें स्वयं निर्वाचन के विषय में कोई सही धारणा नहीं बनी होती। यदि कम आयु में स्वयं निर्वाचित लड़की से विवाह हो जाये तो उसकी असफलता भी सम्भव हो सकती है। कन्या इस विषय में अपने विचार व्यक्त करती हुई कहती है कि "स्त्री–पुरूष जीवन में सिर्फ

---

1. बूँद और समुद्र , पृष्ठ – 98
2 बूँद और समुद्र , पृष्ठ – 96
3 बूँद और समुद्र , पृष्ठ –63
4 बूँद और समुद्र , पृष्ठ – 97

एक ही बार एक दूसरे को ही पाते हैं, मेरा इस बात में दृढ़ विश्वास है और पाने के लिए उन्हें आपस में अपने आपको अनेक कसौटियों पर कसना होता है। ये जिम्मेदारी बहलाव का खेल नहीं ।"[1]

इस प्रकार उपन्यास के पात्र कोई सुनिश्चित सिद्धान्त अपने पक्ष के समर्थन में प्रस्तुत नहीं करते प्रत्युत वे अपने अनुभवों तथा अपने जीवन के आधार पर अपनी धारणा प्रस्तुत करते हैं। नागर जी ने इस उपन्यास किसी सुनिश्चित दृष्टिकोण या मान्यता को दृष्टि में रखकर समस्याओं को प्रस्तुत नहीं किया है। सामाजिक जीवन से प्राप्त परिणामों तथा अनुभवों की दृष्टि से समस्याओं को देखा है । नागर जी विवाह संस्था का समर्थन करते हैं, किन्तु विवाह के विकृत रूपों तथा वैवाहिक विसंगतियों विशेषकर अनमेल विवाह, तथा दहेज प्रथा के दुष्परिणामों को वह दृष्टि से ओझल नहीं होने देते ।

आज विवाह सम्बन्धी परम्परागत मान्यतायें समाप्त हो रही है और आधुनिक चेनना सम्पन्न नारी अपने स्वतन्त्र अस्तित्व के प्रति जागरूक हो रही है। उसे अब पति के रूप में एक देवता ही नहीं, जीवनसाथी की तलाश है । नागर जी "अमृत और विष" उपन्यास में "गैहाबानों के रूप में ऐसी आधुनिक नारी की अनुभूतियों का चित्र सामने लाते हैं, जो विवाह के सबंध को आवश्यक नहीं मानती और मुक्त अभिसार में विश्वास रखकर अपने जीवन का नक्शा खुद बनाना चाहती है । स्वच्छन्द भोग उसके लिए नारी स्वातन्त्र्य का मूल आधार है । इसलिए वह विवाह संस्था का विरोध करती हुई कहती है – "औरत के साथ अस्मत का जो हौआ बँधा है , उसे माफ कीजिएगा, मैं नहीं मानती । बॉयोलॉजिकल अर्जेज (कायिक आवश्यकताएँ) अपनी जगह पर और जिन्दगी का सवाल अपनी जगह पर।"[2]

सोरोकिन कहता है कि "प्रेमविवाह सम्बन्ध सफल नहीं हो पाते।"[3] मैकाइवर और पेज इस मान्यता की पुष्टि कहते है कि " प्रायः सेमांस भ्रान्ति में बदल जाता है और विवाहित सहचर ऐसे अनुभवों के क्षेत्र में पदार्पण करते हैं जो जीवन के नवीन पथों

---

1 बूँद और समुद्र , पृष्ठ – 212

2. अमृत और विष, पृष्ठ– 496

3 सेन सेक्स आर्डर, सोरोकिन, पृष्ठ–141

को प्रशस्त एवं समृद्ध तो कर सकते हैं, पर उनके लिए वे तैयार एवं प्रशिक्षित नहीं रहते ।"[1]

विवाह सूत्र में बँध जाने के बाद जब प्रेम का नशा उतरता है तो वे जीवन में घुटन और तनाव महसूस करते हैं, परिणामस्वरूप विवाह – विच्छेद तक होते हैं। नागर जी प्रेम विवाह की असफलताओं का चित्रण भी करते हैं। 'अमृत और विष' उपन्यास में भी भवानी–ऊषा, उमेशो –निर्मला, प्रेम विवाह करके असफल रहते हैं। उपन्यास का पात्र अरविन्द शंकर कहता है । "मैने अभी हाल ही में हुए दो प्रेम विवाहों की असफलता को भी देखा है । ये प्रेमिक पति–पत्नी प्रेम का नशा उतरते ही एक दूसरे को अपनी जाति जतलाने लगते है।"[2]

यौन आकांक्षा मानव की मूल प्रवृत्ति रही है । आदिम काल में प्राकृतिक आवश्यकता के रूप में स्वच्छन्द यौन सम्बन्ध था, लेकिन सभ्यता के विकास के साथ ही परिवार तथा विवाह व्यवस्था ने यौन सम्बन्धों पर अंकुश लगाते हुए उसका सामाजिककरण किया था। सभ्यता के इसी विकसनशील प्रवृत्ति के कारण आधुनिक युग में स्वच्छन्द यौन सम्बन्धों की तरह झुकाव पुनः बढ़ता जा रहा है । यह समय केवल पश्चिमी देशों का ही नहीं है बल्कि आधुनिक भारत का भी है । अपने उपन्यासों में सम्पूर्ण सामाजिक यथार्थ को चित्रित करने वाले नागर जी इस सच्चाई को और भी दृष्टिपात किया है ।

जिससे कन्या पक्ष को अनेक परेशानियों का सामना करना पड़ता है । मध्यवर्ग के लोग उच्च वर्ग की भांति प्रदर्शन करने का प्रयास करते है। इस उपन्यास में किसी पूँजीपति की बारात को देखकर रमेश के मन में भी यह इच्छा होती है, "काश कि वह भी अपनी बहन का विवाह ऐसी ही धूम–धाम से कर पाता।"[3]

---

1. मैकाइवर और पेज, समाज , पृष्ठ– 274
2. अमृत और विष, पृष्ठ – 95
3. अमृत और विषय, पृष्ठ – 60

हिन्दू- विवाह की कुछ अपनी परम्परागत मान्यताएँ रही है जैसे अपनी जाति या उपजाति में ही विवाह अन्तर्जातीय विवाहों के प्रचलन से यह प्रवृत्ति बदल रही है। अमृत और विष उपन्यास का पात्र अरविन्दशंकर कहता है, "अब तो पिछले दो वर्षों से अपने इन पुराने रूढ़-संस्कारों से जकड़े हुए गली मुहल्लों के समाज में भी अन्तर्जातीय विवाहों की धूमधाम देख रहा हूँ । और ऐसे विवाह माता-पिता की सम्मति से हो रहे है।"[1] हिन्दू विवाह की प्रवृत्ति कुलीन विवाह के पक्ष में रही है । इस मान्यता के अनुसार लड़की का विवाह सजातीय उच्च कुल में या समान कुलों में करने की रही है । किन्तु आज ऐसी मान्यताओं की उपेक्षा की जा रही है । इस उपन्यास का पात्र अरविन्दशंकर कहता है कि -"आज अनेक ब्राम्हण पुरानी मान्यता के प्रतिकूल अपने से "हीन" वर्णो की भार्या बन रही है और उनके पिता या पति कुलों के लोग अपने आपको अपराधी नहीं मानते ।"[2]

हिन्दू विवाह से सम्बन्धित अनेक समस्यायें अत्यन्त प्राचीन काल से हमारे समाज में विद्यमान है । बाल-विवाह, दहेज और वरमूल्य प्रथा का प्रचलन, विधवा-विवाह निषेध, विवाह-विच्छेद, एवं अनमेल विवाह आदि समस्यायें प्रमुख है, जिनका चित्रण 'अमृत और विष' में हुआ है । 'अमृत और विष' में रानी बालविवाह होने के बाद थोड़े ही समय में विधवा हो जाती है । वह कहती है , अब तो उसे पति की सुरत भी याद नहीं आती । खुल के देखा ही कब ? बातें ही कब हुई? और तब उमर ही क्या थी मेरा तेरहवाँ साल था।"[3] इस प्रकार नागर जी यहाँ बाल विवाह जनित समस्या को उठाकर उसके दुष्परिणाम को दिखलाते है तथा रानी का पुनः विवाह कर समस्या का समाधान भी देते है । विधवा-विवाह निषेध भी हिन्दू समाज की एक समस्या है। भाग्यवादिता, कन्यादान का आदर्श, विवाह को जन्म-जन्मान्तर का सम्बन्ध मानक नारी अशिक्षा आदि कुछ ऐसे कारक है जो विधवा स्त्री के पुनर्विवाह में बाधक रहे है । परिणामस्वरूप विधवाओं का जीवन नरकीय बन गया। "अमृत और विष उपन्यास का पात्र अरविन्दशंकर कहता

---

1 अमृत और विष, पृष्ठ -95

2 अमृत और विष, पृष्ठ-95

3. अमृत और विष, पृष्ठ - 114

है – मैंने विधवाओं और अन्तर्जातीय विवाहों के प्रति अपने समाज की ओर घृणा देखी है। ऐसे विवाह किसी समय में पाप थे, किन्तु आज पुण्य है । विधवा से विवाह करने वाला अथवा अन्तर्जातीय प्रेमविवाह करने वाला युवक अपने आपको किसी हीरो से कम नहीं समझता। समय बहुत बदल गया है।"[1]

नागर जी ने इस उपन्यास में विधवा रानी के रमेश से विवाह के रूप में विधवा के पुनर्विवाह का समर्थन किया है । रमेश और रानी के विवाह से दो क्रान्तिकारी पहलू सामने आते है। विधवा के पुनर्विवाह के अतिरिक्त यह अन्तर्जातीय विवाह भी है।

अन्तर्जातीय विवाह आधुनिक सामाजिक चेतना का एक महत्वपूर्ण पहलू है। बीसवीं शताब्दी के आरम्भिक चरण में इस प्रकार के वैवाहिक सम्बन्ध सामाजिक दृष्टि से पाप समझे जाते थे, परन्तु अब समाज बहुत बदल गया है, रूढ़ियाँ टूट रही है और जातिगत संकार्णताएँ समाप्त हो रही है । अन्तर्जातीय विवाह अब बुरे नहीं माने जाते । वर्तमान सामाजिक सन्दर्भ में अन्तर्जातीय विवाह की स्थिति पर नागर जी ने समाज के परम्परा पोषक वर्गो के मत को प्रस्तुत किया है। 'अमृत और विष' उपन्यास में नागर जी ने एक पात्र अरविन्दशंकर के विचार इस रूप में प्रस्तुत किया है – "यह अन्तर्जातीय विवाह आज के संक्रान्तिकाल में हमारे समाज द्वारा एक विचित्र स्थिति पैदा कर रहे हैं। पुराने जमाने की तरह ऐसे विवाहों पर न तो कोई विरादरी अब पूर्ण प्रतिबन्ध ही लगा सकती है, और न उसे सहज भाव से स्वीकार ही कर पाती है। ऐसे विवाह करने वाले युवक युवती अपने आपको विद्रोह की सनक भरी स्थिति में पाते है।[2]

नागर जी ने अन्तर्जातीय प्रेम विवाह का समर्थन किया है , परन्तु इनकी असफलताओं और अस्थिर स्थिति को भी स्पष्ट किया है। "यह अन्तर्जातीय प्रेम–विवाह से पहले रूढियों के प्रति बगावत करके मनुष्य को संकोर्णता से व्यापकता के दायरे में ले जाता है, लेकिन विवाह के बाद यही संकीर्ण, जातिगत चेतना पति–पत्नी के बीच कमी भी बेतुकी और चुभन भरी स्थितियाँ ला देती है ।"[3]

---

1 अमृत और विष, पृष्ठ – 609–10

2 अमृत और विष, पृष्ठ– 215

3 अमृत और विष, पृष्ठ – 94

इस तरह प्रेम विवाहों की असफलता से उत्पन्न परिस्थितियों को भी नागर जी ने प्रत्यक्ष किया है, जिनमें प्रेमी पति-पत्नी, प्रेम का नशा उतरते ही एक दूसरे को अपनी जाति जतलाने लगते हैं। "आर्यसमाजी और सिविल मैरेज कानून से किए गए विवाह कर्म का बन्धन उनके मन में बच्चों के खेल के समान ही फुसफुसा और बेबुनियाद हो जाता है ।"[1]

'अमृत और विष' उपन्यास में विवाह विच्छेद के भी उदाहरण मिलते हैं । उपन्यास के पात्र भवानी और उषा के सम्बन्धों में तनाव है । इनके सम्बन्ध से यह स्पष्ट हो जाता हे कि रोमांस , प्रेमविवाह तथा अन्तर्जातीय विवाह ने वैवाहिक जीवन में असन्तोष को जन्म दिया है , परिणामतः आज समाज में विवाह विच्छेद की स्थिति उत्पन्न हो गयी है । अब विवाह संस्था भी परिवर्तन की प्रक्रिया में है, परम्परागत मान्यतायें तेजी से बदल रही है । वैवाहिक सम्बन्धों में व्याप्त तनाव विवाह के भविष्य के प्रति व्यक्ति को शंकालु बनाता है । 'अमृत और विष' में बानो के संदर्भ में लच्छू कहता है - "विवाह से तुम्हारा मतलब - यही न कि कोई, पण्डित , मुल्ला जैसे माने जाने सामाजिक चलन से रस्म अदायगी करके स्त्री पुरूष के साथ रहे । वो नहीं मानती इस चलन को और मै पूँछता हूँ कि खास बात क्या है इसमें ।[2] इस प्रकार विवाह संस्था आस्था और अनास्था की स्थिति के कारण संक्रमण की स्थिति में है ।

"नाच्यौं बहुत गोपाल" में नागर जी ने मेहतरानी निर्गुनियाँ की कथा में प्रासंगिक रूप से रिशी देवी ओर वेदवती आदि महिलाओं के इतिहास के द्वारा विधवा होने के बाद अपनी जात विरादरी और नाते - रिश्ते के दुराचारी लोगों के फन्दें में फंसकर किस प्रकार उनका जीवन नरक बन जाता है, इसके यथार्थ रूप को नागर जी ने प्रस्तुत किया है "उनके घरवालों ने उन्हें उनकी बड़ी बहिन की तरह घर से निकाला तो नहीं पर विधवा होने के कुछ ही दिनों बाद रिशी देवी के ससुर ही उनके प्रेमी बन गए ।"[3] इस उपन्यास में नागर जी ने अनमेल विवाह से उत्पन्न विधवा स्त्री की करूण स्थितियों का चित्रण किया है।

"बिखरे तिनके" में नये भारत तथा उसकी गति का वास्तविक चित्र प्रस्तुत

---

1 अमृत और विष , पृष्ठ- 95

2 अमृत और विष 500

3 नाच्यौं बहुत गोपाल, पृष्ठ - 207

किया है । इस उपन्यास में विधवा विवाह तथा अन्तर्जातीय विवाह और उनसे उत्पन्न समस्याओं को "सुहागी" और "सुरसुतिया" के विवाह के माध्यम से प्रस्तुत किया है। नागर जी ने हमेशा ऐसे विवाह का समर्थन किया है । "तुम शादी का अरेंजमेंट कराओ जी, मैं पाँच-पाँच रूपया चन्दा हर एक से कलेक्ट कर लेने का वादा करता हूँ । लव मैरिज में हम साले यंग मैंन काम न आएँगे तो क्या बूढ़े-खुर्शट काम आएँगे।[1]

इन उद्धरणों स नागर जी के प्रगतिशील विचारों का अनुमान किया जा सकता है।

नागर जी ने "अग्निगर्भा" उपन्यास में विवाह के साथ ही साथ दहेज जैसी समस्या पर प्रकाश डाला है। आज का पुरूष समाज अर्थलोलुप हो गया है । हर पुरूष दहेज का आकांक्षी है , वह किसी भी रूप में प्राप्त हो । इस उपन्यास का नायक "रामेश्वर" भी पढ़ा लिखा होने के बावजूद पैसे का गुलाम है और पत्नी से दहेज का आकांक्षी भी। विवाह के बाद रामेश्वर सीता से एक एक पैसे का हिसाब रखता है। यहाँ तक "बैंक अकाउंट सम्मिलित है रामेश्वर कौ नम्बर दो की धनराशि अक्सर सीता की रायँल्टी के घपले में घुलती थीं । सीता के हस्ताक्षर भी बैंक, में थे, किन्तु चेक पर हस्ताक्षर रामेश्वर शुक्ल के ही होते थे । इस तरह वह राशि सम्मिलित होकर भी एक पक्षी थी। सीता को अपनी वह स्थिति अक्सर मन में गहरी चुभन देती है ।"[2]

नागर जी ने परम्परागत विवाह, प्रेमविवाह, अन्तर्जातीय विवाह सभी की स्थितियों को अपने उपन्यासों में स्थान दिया है, किन्तु वे किसी रूढ़ि तथा अन्धविश्वास का समर्थन नहीं करते ।

---

1 विखरे तिनके , पृष्ठ - 28

2. अग्निगर्भा, पृष्ठ-101

<u>वर्गचेतना</u> –

आज के समाज में व्यक्ति के महत्व का निर्णय उसकी आर्थिक स्थिति से किया जाता है। पैसा ही शक्ति और अधिकार का मानदण्ड बन गया है। पैसे का मूल्य सामाजिक प्रतिष्ठा के लिये तो आवश्यक है ही, साथ ही पारिवारिक जीवन में भी उसका कम महत्व नहीं है। नागर जी का कथा साहित्य बीसवीं सदी के भारतीय समाज के जीवनस्तर का लेखा–जोखा प्रस्तुत करता है ।

नागर जी ने "महाकाल" उपन्यास में सामन्तवादी , साम्राज्यवादी और पूँजीवादी त्रिमुखी शोषण की समस्या को उद्‌घटित किया है । सन् 1942–43 का बंगाल का अकाल केवल दैवी प्रकोप नहीं, शोषक पूँजीवर्ग द्वारा पनपाया गया था। जमींदारों, महाजनों और सरकारी अधिकारियों के भष्ट्राचार और संचयवृत्ति का अमानवीय रूप नागर जी को प्रथम उपन्यास "महाकाल" में चित्रित हुआ है जहाँ सारी दुनियाँ केवल खुदी के लिये तबाह हो रही है – "रईसों और अफसरों की दुनियाँ में क्या इन इन्सानों को कोइं इन्सान मानदेगा? वे इन्हें भूत कहेंगे, भूत। हालांकि वे खुद मुर्दा इन्सानियत के भूत बनकर हमारे सिरों पर सवार हैं। हमारी भूख की नींव पर उन्होंने अपनी सोने की हवेलियाँ बनवाई हैं।" [1] नागर जी यद्यपि प्रतिबद्ध मार्क्सवादी कथाकार नहीं है , फिर भी अपनी रचनाओं में वे पूँजीपतियों और धनिकों पर खुला प्रहार करते हुए दलितों एवं शोषितों के प्रति सहानुभूति व्यक्त करते हैं। आर्थिक शोषण के वे खिलाफ थे तथा उन्होंने अपनी रचनाओं में अनेक स्थलों पर शोषक वर्ग की निन्दा की है । वे लिखते है – "थोड़े से लोग, जो कि अमीर कहलाते हैं, बच जाएँगे मगर वे भी कब तक बचे रहेंगे ? जब अन्न पैदा करने वाला ही न बचेगा तो खाने वाला क्या खाकर जीवित रहेगा? रूपया, सोना, चाँदी और जवाहरात को क्या दाँतो से चबाया जा सकेगा?

---

1 महाकाल , पृष्ठ– 68

मोटरों और ऊँचे-ऊँचे महलों से क्या पेट का कभी न भरनेवाला गढ्ढ़ा भर पाएगा नहीं? वे भी एक दिन मरेंगे । उन्हें भी एक दिन मरना ही होगा। बड़े समाज को अपने स्वार्थ के लिए मारकर छोटा समाज भी जीवित नहीं रह सकता ।"[1]

वर्तमान युग में आर्थिक विषमता अपनी चरमसीमा पर है । नागर जी "बूँद और समुद्र" में अपने युग के यथार्थ को उद्घाटित करते है। इसीलिए इसमें "विषमता के विष से पीड़ित" महिपाल जैसे अनेक पात्र दिखाई देते हैं। समाज में व्याप्त आर्थिक विषमता के भयंकर रूप को उजागर करते हुए महिपाल कहता है – "ये पैसे की दुनियां बहुत दिनों तक नहीं रहेगी आज तो समाज का शासन ही बेईमानों और लुटेरों के हाथ में है । लोक जीवन की मान्यतायें वही है, जो वे चलाते हैं। .... जो इस धाँधलीबाजी को समाज की सौभाग्यचमक बनाकर अपना खोटा सिक्का चला रहे हैं, वे ये भूल जाते हैं कि करोड़ों बीमार भूखे और नंगे उनके पीछे "मरता क्या न करता " वाली रिपरिट लेकर पागल जोश के साथ बढ़े चले आ रहे है। इन मुट्ठी भर धांधलीबाजों को जलाकर खाक देंगे ।"[2] उपन्यास में महिपाल की कथा आर्थिक अभावों से जूझते हुए मानव की दर्द भरी कहानी है। भारतीय जनजीवन में व्याप्त आर्थिक वैषन्य के कारण ही महिपाल जैसे बुद्धिवादी प्रगतिशील विचारक को अपनी समस्त कुंठाओं का अन्त करने के लिए आत्महत्या करनी पड़ती है।

किसी भी देश के सामाजिक जीवन के क्रमिक विकास में अर्थ व्यवस्था का अपना महत्वपूर्ण स्थान होता है। अर्थ को यदि सामाजिक निर्माण की मुख्य पीठिका कहा जाए तो अनुपयुक्त न होगा । आज जीवन का हर क्षेत्र- समाज, धर्म, कला, साहित्य और राजनीति सभी अर्थ की प्रभुता से आच्छादित है। नागर जी ने समाज में व्याप्त आर्थिक विषमता एवं वर्तमान जीवन में अर्थ के उत्तरोत्तर बढ़ते हुए प्रभुत्व को अपने साहित्य में अभिव्यक्त किया है उन्होंने पैसे की अमोघ शक्ति का आंकलन कुछ इस प्रकार किया है " (आधुनिक पूँजीवादी

---

1 भूख (महाकाल), पृष्ठ- 187

2 बूँद और समुद्र, पृष्ठ – 105

युग में) पैसा भगवान और जगदम्बा है।"[1]

आज के समाज में व्याप्त आर्थिक विषमता एवं वर्तमान जीवन में अर्थ के उत्तरोत्तर बढते हुए प्रभुत्व को अपने साहित्य में अभिव्यक्त किया है । मार्क्सवादियों की भांति नागर जी तो यहाँ तक मानते हैं कि अर्थ की महत्ता से पारिवारिक सम्बन्ध और मानवीय मूल्य भी पर्याप्त सीमा तक प्रभावित हुए है । साथ ही नागर जी की मान्यता यह भी है कि "दौलत का कुछ थोड़े से लोगों में इकठ्ठा हो जाना ही हमासरी इन तमाम खराबियों की जड़ है । इन्सान के पास दौलत उतनी ही चाहिए. जितना कि दाल में नमक होता है ।"[2] हमारी आर्थिक नीति प्रकारान्तर से शोषण की नीति है ।

नागर जी मुख्य रूप से सामाजिक उपन्यासकार है, किन्तु राजनीतिक स्थिति से उत्पन्न विसंगतियाँ जीवन स्तर के परिवर्तनों को प्रभावित करती है। नागर जी ने आधुनिक जीवन की संक्रमणशील परिस्थितियों, परिवर्तनों एवं मान्यताओं की क्रिया-प्रतिक्रियाओं को ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि के साथ शब्दबद्ध किया है । नागर जी ने 19वीं और 20वीं सदी के स्वतंत्रता पूर्व भारत की विशाल पृष्ठभूमि में देश की राजनीतिक, शासनसत्ता, विघटित प्रजातांत्रिक स्थिति स्वतंत्रता के बाद के मूल्यों को सजग दृष्टि से अपने साहित्य में अंकित किया है। ब्रिट्रिश साम्राज्यवादियों के दमन चक्र और शोषण नीति के प्रति नागर जी के मन में जो आक्रोश और घृणा का भाव था, वह "महाकाल" में व्यक्त हुआ है । इस उपन्यास का एक पात्र पाँचू अंग्रेजी सरकार क़े जुल्म की कहानी बयालीस के विद्रोह के सन्दर्भ में सुनाता है।

---

1. अमृत और विष, पृष्ठ- 38
2. अमृत और विष, पृष्ठ- 285-86

"सेठ बाँकेमल" में नागर जी ने बड़ी सहजता से हिन्दू मुसलमानों के साम्प्रदायिक दंगो की राजनीति तथा अंग्रेजों की हुकूमत पर भी चोट की है । उपन्यास के पात्र "सेठ बांकेमल" राजनीतिक समस्या का हल एकता द्वारा ही मानते हैं – "जहाँ देखो साला– हिन्दू मुसलमानों का दंगा हो रहा है । वह कहते है कि हिन्दू ने मेरी निमाज बिगाड दीनी, वो कैवे है मुसलमान ने मेरी गाय काट डाली है । खुसकैट साले ? इन फौक्सों को इत्ती भी तमीज नई आई कि हम तो आपस में सिर फोड़ रये हैं, और अंगरेज साले हमारी छाती पे बैठकर खून पी रये हैं हमारा ।"[1]

बूँद और समुद्र में स्वातन्त्योतर भारतीय राजनीतिक स्थिति का परिचय मिलता है । नागर जी ने देश की राजनीतिक गतिविधियों को सर्वांगीण रूप से देखा परखा और अनुभूतियों को यथार्थरूप में अभिव्यक्त किया है । उन्होंने राजनीतिक संस्थाओं के खोलखलेपन और पदलिप्सा पर सीधे प्रहार किया है – "हमारी पोलिटिकल पार्टियाँ आमतौर पर समाज से कटकर सत्ता के पीछे दौड रही है।"[2]

इसी उपन्यास के अत में व्यक्त निष्कर्षात्मक विचार तत्कालीन राजनीतिक चेतना के यथार्थ स्वरूप का परिचय देता है – "राजनीति जिस रूप में आज प्रचलित है, वह तनिक भी प्रगतिशील शक्ति नहीं है । राजनीति केवल दाँव–पेंचों का अखाड़ा है । मानव हित के आदर्श से हीन, व्यक्तिगत अहंकार के कारण राजनीति के खिलाड़ियों की बुद्धि – चतुराई और कार्य कुशलता बहक गई है।"[3] इस प्रकार नागर जी सक्रिय राजनीति से अलग रहकर भी अपने युग की समसामयिक राजनैतिक चेतना से प्रभावित होते रहे है तथा समय–समय

---

1 सेठ बाँकेमल , पृष्ठ– 87, 88

2. बूँद और समुद्र , पृष्ठ – 145

3 बूँद और समुद्र – पृष्ठ – 582

पर अपने उपन्यासों के माध्यम से भारतीय राजनीति के उत्थान और पतन की कहानी को यथार्थ रूप में अंकित करते रहे है ।

'अमृत और विष' में भी राजनीतिक चेतना की अभिव्यक्ति हुई है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् ऐसे व्यक्ति राजनीति पर छाये है जिनका स्वतंत्रता संग्राम में कोई विशेष योगदान नहीं था। इस उपन्यास के पात्र अरविन्दशंकर के शब्दों से ध्वनित होता है कि सच्चे देशभक्तों को स्वातंत्र्योत्तर राजनीति से स्थान नहीं मिला – "सन् सैंतालीस के बाद अपने उन बुजुर्ग नेताओं के पास कुछ माँगने नहीं गया, जो मुझे बेहद चाहते थे और उस समय अपने आत्मीय और प्रियजनों के भाग्यविधाता बन गये थे । मैं अपने स्वाभिमानवश घर ही में बैठा रहा, सोचता था, वे मुझे अब बुलायेंगे और मैं भी कोई पद पा जाऊँगा । पर ऐसा न हुआ - फिर राजनीति में खुशामदी कौवों और गधों की भरती होते देखी, उन्हें शान–शौकत और रोबदाब के ओहदों पर देखा तो गहरी वितृष्णा हो गई है ।"[1]

आज की राजनीति मात्र अवसरवादियों और चाटुकारों की होकर रह गई है। इसी से स्वतंत्रता के पश्चात् सैकडों नि.स्वार्थ देश सेवक गुमनामी में खो गये और "जो इलेक्शन लड़ाने और परमिट दिलाने में पटु हुए वे महत्वपूर्ण नेता बन गये ।"[2]

प्रस्तुत उपन्यास में नागर जी ने राजनीतिक, आर्थिक समस्या को जोड़कर देखने की कोशिश की है – "यह महँगाई तो दिन–दिन बढ़ती जा रही है । लगता है कि असलियत में सारी शासन व्यवस्था ही जनचेतना से दूर होती चली जा रही है ओर वह भी हठीले समाजवादी जवाहरलाल नेहरू के रामराज्य में । लगता है , यह मिश्रित अर्थव्यवस्था ही सारी बुराइयों की जड है । शासन एक दिल से समाजवादी हो तो क्योंकर हो ? रिश्वतें देकर प्राइवेट पूँजी वाले लोग अधिकारियों – कर्मचारियों को अपने स्वार्थ में फँसाए रखते है। रिश्वतों के इन

---

1 अमृत और विष, पृष्ठ – 148

2 अमृत और विष, पृष्ठ – 38

चटोरों को सार्वजनिक पूँजी क्षेत्र में भी साझे की लूट करने के लिए सरकारी पार्टी के लोग फँसाए रखते है । जो हो. फिलहाल तो जनता पिस रही है। यह नेहरू मार्का समाजवाद धोखा है । "[1] इस उपन्यास में विभिन्न राजनीतिक दलों तथा जनता में उनकी स्थिति का भी पता चलता है । उपन्यासकार ने राजनीतिक मूल्यहीनता को सबसे अधिक चिन्ता का विषय बताया है ।

नागर जी ने स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की सभी राजनीतिक गतिविधियों को सर्वांगीण रूप से देखा परखा और अनुभूतियों को यथार्थरूप में अभिव्यक्त किया है । "नाच्यौ बहुत गोपाल" में नागर जी ने देश में लगे आपातकाल तथा उस समय में चल रहे दमनचक्र को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है । आपातकालीन चिंतन इस कृति की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इस सम्बन्ध में शमा जी और उनकी पत्नी का वार्तालाप औचित्यपूर्ण है – "अरे ज्यादा इन्सानियत की चकल्लस में न पड़ो, आजकल इमरजेंसी में मुँह से सच निकालना भी पाप है। छिः कितनी गलत धारणा है तुम लोगों की मैं ठीक इसका उल्टा समझता हूं । संघर्ष से घिसेपिटे बीमार तरीके बदलकर उसे स्वस्थ शिक्षा प्रदान करना ही इमरजेन्सी का उद्देश्य हो सकता है।"[2]

उपन्यास में लक्ष्मी प्रसाद जी के वार्तालाप के बहाने नागर जी ने सन् 1977 में भारत में लगी इमरजेन्सी की बर्बरता और पीड़ित भारतीय जनमानस की छटपटाहट को हूबहू अंकित करके डार्विन के "मत्स्यन्याय" की याद दिलाया है – "जिस समय आपातकालीन स्थिति लाई गई थी, उस समय हम में से प्रायः अधिकांश लोग यह विश्वास नहीं करते थे कि नेहरू की विराट् बौद्धिक छाया में पले हुए उनके परिवार के लोग ही अपनी करनियों में ऐसे नेहरू – विरोधी हो जायेंगे । कुपुत्रों जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।"[3]

---

1 अमृत और विष – पृष्ठ– 437–38

2 नाच्यौ बहुत गोपाल – पृष्ठ– 23

3 नाच्यौ बहुत गोपाल, पृष्ठ– 252–53

इस प्रकार नागर जी, आपात काल में जनता पर किये गये अत्याचारों और बढती हुई तानाशाही प्रवृत्ति पर खुलकर चोट करते हैं। नागर जी ने स्वयं कहा है- इस उपन्यास का अधिकांश भाग इमरजेन्सी के काल में ही रचा गया । सन् 1975 के अन्त में इसे लिखना आरम्भ किया। इमरजेन्सी के दौरान सुनी हुई बातें मेरे मन को प्रभावित करती थी। उनका असर तो कहीं न कहीं उजागर होना ही था।"[1]

"महाकाल" उपन्यास में राजनीति के साथ ही नेताओं की वास्तविकता को प्रस्तुत किया है । नेताओं की तीखी आलोचना करते हुए निर्गुनियां कहती है – "आज कल मोटे गाढे खद्दरधारी देश भक्तों के समाज में एक "बहिन जी भाई जी सम्प्रदाय" वन गया है। " टोडी बच्चा हाय हाय करते समय बहिन जी भाइ जी और सन्नाटा पा के बहिन जी दुलहिन जी और भ्राता जी भर्ता जी बन जाते है ।"[2] लोकतांत्रिक व्यवस्था में मचा हुआ अंधेरे और चमचागीरी की दूषित प्रवृत्ति भी उनकी दृष्टि से ओझल नहीं हुई है।

"बिखरे तिनके" उपन्यास का मुख्य संदर्भ राजनीति है। आज के राजनीतिक कुप्रभाव को भी नागर जी ने इस उपन्यास में प्रस्तुत किया है । हमारे संविधान निर्माताओं ने जिस समाज की रचना की स्वप्न लोगों को दिखाया था, वह धुँधला और विकृत होता जा रहा है। आज संविधान के रक्षक और उसकी कसमे खाने वाले लोग ही उसके भक्षक बने बैठे हैं। नागर जी की चिंता का विषय है । यह मूल्यगत ह्रास ।

---

1 दस्तावेज, अंक-2, सन् 1979, पृष्ठ-12

2 नाच्यौ बहुत गोपाल- पृष्ठ - 171

आज सर्वत्र भाई –भतीजावाद फैला हुआ है । राजनीति में सत्ता और अर्थ की ही महत्ता है । उपन्यास का पात्र बिल्लू कहता है, "हमारे सिद्धान्त और उद्देश्य स्वार्थ थे, अब सत्ता और अर्थ, स्वार्थ है। पहले इमरजेंसी का समय देखा फिर चार घोड़ों वाली जनताई बग्घी की सवारी देखी, अब यह समाजवादी लोकतन्त्र भी देख रहा हूँ। समय की हवा का हर झोंका जहर भरा है । जीने के लिए कहीं से भी आस्था नहीं मिलती।"[1] आज देश में जितने भी राजनीतिक दल है , वे सभी स्वार्थ के लिए झूठे नारे लगा लगाकर देश की जनता को गुमराह कर रहे है । सबकी राजनीति आज जनता का दुःख झुलाने पर आमादा है, उन्हें दूर करने के लिए कोई भी प्रयत्नशील नहीं । दुग्धालय के साइन बोर्ड सामने टांगकर सभी ने अपने अपने शराबखाने खोल रखे हैं।"[2]

आज का नेता देश के छात्रों को गुमराह कर अपना स्वार्थ सिद्ध करने में लगा है। सभी दल मात्र कुर्सी (सत्ता) के लिए ही लड रहे है। महँगाई की समस्या तो है ही, देश के विभाजन की समस्या भी आ रही है । असम गले में अटका मछली का कांटा बन गया है।"[3] उपन्यास का युवा वर्ग राष्ट्र की एकता के लिए चिन्तित है। इसी उपन्यास का एक पात्र कहता है – "असम के विद्यार्थियों को ऐसी जबर्दस्त एकता के लिए बधाई देने को जी तो चाहता है, मगर सच पूछो तो राष्ट्र के हक में यह अच्छा नहीं हो रहा ।"[4]

---

1. बिखरे तिनके, पृष्ठ– 88
2. बिखरे तिनके , पृष्ठ – 88
3 बिखरे तिनके , पृष्ठ – 59
4 बिखरे तिनके , पृष्ठ 60

का प्रयत्न करती है । बादशाह बेगम और आगामीर का संघर्ष अब भी चलता रहता है। पहले नये नबाव की "बाण्दशाह बेगम" से बनती हे किन्तु1 कुछ ही दिनों बाद उनमें बिगाड़ हो जाता है और बादशाह बेगम अपमानित की जाती है। पुनः बादशाह–बेगम को नये उत्तराधिकारी की चिन्ता होती है। और वे अपनी पुरानी चाल चलती है। पूरे राज्य में यह खबर फैल जाती है कि नये नबाव शीघ्र ही पिता बनने वाले हैं। नवाब स्वतः इस चाल को समझते है किन्तु कुछ कर नहीं पाते। उधर"नवाब" की प्रेमिका दुलारी अपने पुत्र की गद्‌दी पर बैठने के लिए तत्पर थी। दोनों नये उत्तराधिकारियों में से "नवाब" नसीरूद्‌दीन हैदर का किसी से सम्बन्ध नहीं रहता हे। वे सब कुछ देखते रहते है और अन्ततः आतंक के वातावरण में विक्षिप्त होकर नसीरूद्‌दीन हैदर चल बसते है । दूसरी तरफ बादशाह बेगम नये उत्तराधिकारी "मुन्नाजान" को गद्‌दी पर बिठा देती है। किन्तु अब तक नवाबी शासन की नींव हिल जाती है । अंग्रेजी फौजे महल में घुस जाती है। सभी लोग बन्दी बनाये जाते है । अवध की नवाबी पूरी तरह अंग्रेजों के चंगुल में आ जाती है और वे अपने मोहरे को गद्‌दी पर बिठाने में सफल हो जाते है। उपन्यास के कथानक की यही मुख्य धारा है। इसके अलावा कुछ प्रासंगिक कथाएँ भी है जिनका सम्बन्ध भी किसी न किसी रूप में मुख्य कथा से है, उपन्यास में एक कथा दुलारी और उसके जीवन की है जो स्वतंत्र रहकर बाद में मुख्य कथा से जुड़ जाती है। यह दुलारी अत्यन्त सुन्दरी तथा युवती है । दुलारी "मुन्नाजान" की आया के रूप में इस महल में प्रवेश करती है। अपने चाल–चलन से सबको प्रभावित कर नवाब नसीरूद्‌दीन हैदर को अपने जाल में फँसा लेती है। नवाब "नसीरूद्‌दीन हैदर" इसे "महिलकाऐं– जमानियाँ का खिताब देते है। एक अन्य कथा राजा शिवनन्दन ठाकुर और दिग्विजय ब्रम्हचारी की है। इनके अतिरिक्त भी अनेक गौण कथाऐं है जिनका सम्बन्ध लखनऊ के नवाबी शासन की छात्रशील भूमिकाओं तथा उनकी लपेट में सिसकते हुए सामान्य जन के जीवन से हैं।

इस प्रकार "शतरंज की मोहरे" एक ऐतिहासिक रचना की सभी सम्भाव्य प्रवृत्तियों से युक्त है । जिसमें नागर जी ने हासकालीन अवध का नवाबी शासनतंत्र, ढहती हुई सामंतीय–व्यवस्था, जमींदारी प्रथा और अंग्रेजों की सक्रियता के मध्य पिसती हुई अवध की जनता की पीड़ा, विवशता एवं आक्रोश के दबे स्वर को बड़े साहस के साथ उभारा है। "नागर जी" ने नवाबों के परिवारों के भीतर चलते वाली ऐश्याशी तथा दांव–पेच का बड़ा ही

नागर जी अपने सामाजिक उपन्यासों में उन सामाजिक समस्याओं का सविस्तार चित्र उपस्थित किया है जो समाजशास्त्रीय अध्ययन की अपेक्षा रखते हैं या जिनमें समाजशास्त्रियों की रूचि देखी जाती है । उनके कथा साहित्य में हमे समाज को यथार्थ स्थिति का अंकन मिलता है तथा उनकी कृतियाँ हमें आज के भयानक विद्रूप , कठोर सच से परिचित कराती है।

"इतिहास शब्द की व्युत्पत्ति एव अर्थ –

"इतिहास" शब्द का प्रयोग प्रायः तीन अर्थो मे किया जाता है । एक– इसके अग्रेजी पर्याय "हिस्टरी" के व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ मे, जिसका अर्थ है "गवेषणा से प्राप्त जानकारी" अर्थात् "गवेषणा की किसी प्रक्रिया से उपलब्ध ज्ञान।" दूसरा – घटनाओ के वास्तविक क्रम को द्योतित करने के लिए "इतिहास" शब्द का प्रयोग होता है । तीसरा – जिस तीसरे और महत्वपूर्ण अर्थ मे "इतिहास" शब्द का प्रयोग होता है , वह है विश्व के या उसके कुछ अशो के घटना प्रवाह का आलेखन । मुख्य रूप से इतिहास का सम्बन्ध मनुष्य एव उसके क्रिया – कलापो से है और वह अतीत कालीन घटनाओ तथा उन घटनाओं से सम्बन्धित व्यक्तियो के चरित्र का लिखित स्वरूप है । इतिहास किसी भौगोलिक परिधि एव सास्कृतिक परिवेश मे स्थित मानव जाति के रूप निर्माण और पारपरिक विकास की प्रक्रिया है ।

ऐतिहासिक उपन्यास की परिभाषा –

उपन्यासकार इतिहास की वास्तविकता का तथा इतिहासकार उपन्यास की वैयक्तिक एव कल्पना का, उपन्यासकार अपनी काल्पनिक सर्जना की वास्तविकता का आभास देने के लिए जिन यथार्थनुकारी साधनो का उपयोग करता है, उनमे इतिहास की प्रामाणिक यथातथ्यता या वास्तविकता विशेष सहायक हो सकती है । ऐतिहासिक उपन्यासकार इतिहास के बल पर पहले ही पाठक का विश्वास प्राप्त कर लेता है। डॉ0 जगदीश गुप्त के अनुसार – "वास्तव में ऐतिहासिक उपन्यास, इतिहास और कथा की इस पुरातन समीपता की नूतन समन्वयात्मक अभिव्यक्ति है, जिसके पीछे युग–युग के अतीतोन्मुखी सस्कार निहित हैं। उसकी उत्पत्ति विगत मे आत्म विस्तार की आन्तरिक मानवीय वृत्ति से हुई है। कथा की कोई भी कल्पना विगत अथवा इतिहास से उसी प्रकार अपने को मुक्त नही कर सकती, जिस प्रकार इतिहास

अपने को कल्पना से।"[1] इस तरह इतिहास विशुद्ध तथ्योन्मुखी बनकर रसात्मक साहित्य से दूर हट गया, किन्तु जब उसने संस्कृतियों, सभ्यताओं एवं समाज के विकास पर दृष्टिपात आरम्भ किया तो भावनाओं के क्षेत्र में उसने व्यापक रूप से प्रवेश किया और ऐतिहासिक उपन्यास की रचना का आधार बना । "कोई भी उपन्यास चाहे वह "ऐतिहासिक हो अथवा सामाजिक, उसका प्रधान लक्ष्य होता है जीवन की विविध मानवीय संवेदनाओं का विस्तार कर भावनाओं एवं विचारों , हदृय एवं मस्तिष्क के बीच एक नवीन सामंजस्य स्थापित करना तथा सीमित रूप में जीवन के चिरन्तन सत्य का उद्‌घाटन करना।"[2] इतिहास की प्रक्रिया बौकि व्यवस्थाश्रित होती है, जबकि उपन्यास की प्रक्रिया अन्तश्चेतनात्मक होती है।

अर्नेस्ट ई० लेजी के अनुसार – "ऐतिहासिक उपन्यास एक ऐसा उपन्यास है जिसकी घटनाएँ पूर्ववर्ती काल में प्रस्तुत की गयी हो ।"[3] वस्तुतः ऐतिहासिक उपन्यास आवश्यक रूप से अतीत की एक कल्पित कहानी को प्रस्तुत करता है जिसमें परिचित तिथियों, घटनाओं, तथा व्यक्तियों का समावेश करता है । आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ऐतिहासिक उपन्यासों के बारे में कहा है – "ऐतिहासिक उपन्यास एक ऐसा उपन्यास हे जिसमें अतीतकालीन पात्र, वातावरण एवं घटनाओं के ज्ञात तथ्यों को कल्पना से मांसल और जीवन्त बनाने का प्रयास होता है।"[4] हिन्दी उपन्यास के आलोचक डॉ० देवराज उपाध्याय ने भी "उपन्यास के आधारभूत इतिहास का साधारणतः 50 वर्ष पुराना होना स्वीकार किया है।"[5] ऐतिहासिक उपन्यास की परिभाषा

---

1 डॉ० जगदीश गुप्त – "आलोचना" का उपन्यास विशेषांक (अक्टूबर 1954) पृष्ठ– 178

2 डॉ० जगदीश गुप्त – "आलोचना" का उपन्यास विशेषांक (अक्टूबर 1954) पृष्ठ – 178

3 अर्नेस्ट ई० लेजी– अमेरिकन हिस्टरिकल नावेल, पृष्ठ–5

4. बी एम चिन्तामणिक ी पुस्तक (ऐतिहासिक उपन्यासों में कल्पना और सत्य में डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा लिखित प्रस्तावना से)

5 डॉ० देवराज उपाध्याय, साहित्य और साहित्यकार (साहित्य और ऐतिहासिक उपन्यास, शीर्षक लेख, पृष्ठ– 163

एवं इतिहास की परिसीमा को देखते हुए 50 वर्षों की अवधि को अनुचित नहीं कहा जा सकता।

जिस प्रकार ऐतिहासिक उपन्यास की रचना प्रेरणा में इतिहास का सहयोग अनिवार्य होता है, ठीक उसी प्रकार इन ऐतिहासिक उपन्यासों मे भी कल्पना का अंश विद्यमान रहता है। उपन्यास जीवन को अतीत की भूमि में प्रस्तुत कर ऐतिहासिक उपन्यास का रूप धारण कर लेता है। इतिहास किसी भौगोलिक परिधि एवं सांस्कृतिक परिवेश में स्थित मानव जाति के रूपनिर्माण और पारम्परिक विकास की प्रक्रिया है। अतीत के अध्ययन से हमें समाज के वर्तमान रूप को समझने तथा उसके भविष्यत् रूप को ढालने में सहायता मिलती है। इतिहास को समाज के , राष्ट्र के, मानव जाति के पारंपरिक अतीत की संज्ञा दी जा सकती है। इसीलिए, इतिहास व्यक्तिगत कथा न होन पर भी मनुष्य उसे अपनी कहानी समझकर सुनता है। अतीत की उपेक्षा करने पर वर्तमान अपूर्ण है और वर्तमान की ओर पीठ कर लेने पर अतीत का अध्ययन विश्लेषण निरूपयोगी और निस्सार है। इतिहास विगत के तथ्यों और वर्तमान कालीन इतिहासकार की पारस्परिक क्रिया प्रतिक्रिया का प्रतिफल है।

<u>कल्पना का स्वरूप</u>

इतिहास किसी काल विशेष में घटी घटनाओं का विवरण मात्र होता है । यहाँ घटनाओं से सम्बद्ध पात्रों का लेखा जोखा होता है तथा घटनाओं को कल्पना द्वारा आकर्षण और रमणीय बनाया जाता है – इतिहास के तथ्यों को जीवन के सत्य में परिणत करके कल्पना का प्रवेश किया जाता हे तथा ऐतिहासिकता पर कुठाराघात न करके उसकी रक्षा करने का प्रयास होता है। इतिहास की रक्षा तथा घटनाओं की विवृत्ति देना उपन्यासकार का मुख्य कर्तव्य होता है। इतिहास शुष्क अस्थियों का अवशेष है। ऐतिहासिक उपन्यास उन अस्थियों पर साकार सौन्दर्य की सृष्टि करता है, जिनमें गति और जीवन होता है और उनकों रमणीय बनाने के लिये कल्पना के धागों में सूत्रबद्ध करना पड़ता है। कल्पना का रूप समय और

स्थान के अनुसार बदलता रहता है। जिस तरह का सन्दर्भ होगा, कल्पना वैसी ही होगी। इन रूप परिवर्तनों के कारण कल्पना के विविध प्रकार होते हैं जैसे – पौराणिक कल्पना, यथार्थ कल्पना, काव्यात्मक कल्पना, वैज्ञानिक कल्पना, इतिहासमूलक कल्पना आदि। उसमें शाप, वरदान, कर्मबन्धन, नरक, स्वर्ग आदि की निश्चित धारणायें कल्पना द्वारा ही प्रत्यक्ष की जाती है अथवा अनुभूत सत्यों को लेकर प्रतीकात्मक कथायें रची जाती है । **डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी** के शब्दों में – "पुराण मनुष्य की उन कल्पनाओं का जातीय रूप है जो जगत् के व्यापारों को समझने में बुद्धि के कुण्ठित होने पर उद्भूत हुई थी और दीर्घकाल तक जातीय चिन्ता के रूप में संचित होकर विश्वास का रूप धंरण कर लेती है।"[1] जिस प्रकार ऐतिहासिक उपन्यास की रचना प्रेरणा में इतिहास का सहयोग अनिवार्य होता है, ठीक उसी प्रकार इन ऐतिहासिक उपन्यासों में भी अन्य उपन्यासों की रचना के लिए कल्पना का अंश विद्यमान रहता है। काव्यात्मक–कल्पना में भावपक्ष और संवेदन पक्ष प्रमुख होता है, और इनसे सम्पृक्त होने पर ही वस्तु का अस्तित्व माना जाता है , अन्यथा नहीं। "काव्य में कल्पना सदा सत्य को गाढ़े भाव से अनुभव करने का साधन बनी रहती है, स्वयं सत्य को आच्छादित करके प्रमुख स्थान पर अधिकार नहीं कर लेती है।[2] इस प्रकार कल्पना उपन्यास लेखन का अनिवार्य तत्व है ।

<u>नागर जी के ऐतिहासिक उपन्यास</u>

नागर जी मूलतः साहित्यकार है, किन्तु उन्हें इतिहास और पुरातत्व के क्षेत्र में भी रूचि थी । इतिहास और पुरातत्व के प्रति, नागर जी का यह लगाव, साहित्य के

---

1. डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी – साहित्य का साथी, पृष्ठ–56

2 डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी – साहित्य का साथी, पृष्ठ–56

ही नागर जी ने तत्कालीन समाज को भी प्रस्तुत किया है । नागर जी के इन ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास के साथ कल्पना का भी सम्मिश्रण हुआ है। उनके ऐतिहासिक उपन्यासों की विशिष्टता वस्तुतः उनकी सजीव ऐतिहासिक पृष्ठभूमि त्था उनमें पाये जाने वाले सामाजिक एवं सांस्कृतिक चित्रण में है। नागर जी के निम्नलिखित ऐतिहासिक उपन्यासों में तत्कालीन समाज का यथार्थ चित्रण मिलता है।

शतरंज के मोहरे

इतिहास और कल्पना – यह महत्वपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यास है । प्रस्तुत उपन्यास में इतिहास अपने यथार्थ रूप में कल्पना का अंश लिये हुए विद्यमान है, वस्तुतः कल्पना के पुट के कारण यह उपन्यास सजीव हो उठा है ।

यह उपन्यास ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित है। इस उपन्यास में लखनऊ की पतनोन्मुख नवाबी के दो नवाबों – बाजीउद्दीन हैदर तथा उसके बिलासी शाहजादे नसीरूद्दीन हैदर के विलास एवं प्रणय व्यापार की घटनाओं पर आधारित है । "शतरंज के मोहरे" के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में सामाजिक विषमता, नारी दुर्दशा एवं अपनी मान्यताओं के संकेत तथा हिन्दू मुस्लिम संस्कृतियों का सन्निवेश आदि ने कल्पना तत्वों को श्रृंखलित कर इसे रोचक बना दिया है । नागर जी ने उपन्यास की सामग्री के लिए अवध के अनेक जिलों का प्रत्यक्ष दौरा किया तथा वहाँ के बड़े – बूढ़ों से उनकी गदर कालीन सुनी–सुनाई बातों का संग्रह किया ।"[1] नागर जी की यथार्थवादी दृष्टि ने इस काल के कमजोर तथा विवश बादशाहों की अमानवीय यातना तथा अन्तर्द्वन्द्व को प्रस्तुत किया है। नवाबी परिवेश में व्याप्त षड्यन्त्र , फरेब भरे प्रेम तथा अमानवीय कृत्यों से कसमसाते परिवेश का बड़ा ही जीवन्त

---

1 शतरंज के मोहरे – तीसरा संस्करण की भूमिका

चित्र लेखक ने प्रस्तुत किया है । भ्रष्टाचार और अनाचार की चरम परिणति नवाबों के नैतिक पतन में दिखाई देती है ।

प्रस्तुत उपन्यास का प्रतिपाद्य , पात्र एवं प्रधान घटनायें सभी ऐतिहासिक है। इतिहास सम्मत पुरूष पात्रों में गाजीउद्दीन, नसीरूद्दीन हैदर, आगामीर, मुन्नाजान, कैवांजाह, हकीम मेंहदी आदि तथा मुख्य नारी पात्रों में दुलारी, बादशाह बेगम, कुदसिया बेगम आदि है। ठाकुर दिग्विजय सिंह चौहान, ब्रम्हचारी ·आदि गौण पात्र काल्पनिक है। उपन्यास का आत्मा दुलारी के जिस पूर्ववृत्त से होता है, वह यद्यपि काल्पनिक है, परन्तु उसकी पीठिका एवं दुलारी से सम्बद्ध कुछ पात्र रूस्तम अली, उसके सौतेले भाई ऐतिहासिक है। लेखक ने इतिहास के निर्वाह हेतु प्रामाणिकता के लिए अनेक स्थलों पर काल का निश्चित उल्लेख किया है – "नवाब वजीर गाजीउद्दीन हैदर को उन्नीस अक्टूबर सन् 1818 ई0 के दिन अवध का स्वतन्त्र सम्राट घोषित कर दिया गया ।"[1] इसी तरह 19 अप्रैल सन् 1835 ई0 के दिन शाही सेना ने बादशाह बेगम की कोठी को चारों ओर से घेर लिया ।"[2] नागर जी ने उपन्यास में ऐतिहासिक तथ्यों की अवगति के लिए अपने सम्पूर्ण ज्ञान तथा अनुभव का सहारा लिया है। वस्तुतः "नागर जी के सामाजिक चित्रण में वातावरण से आत्मीयता, किस्सागो की सी मस्ती और तटस्थ विवेचक जैसी व्यंग्यात्मकता है । वे परिस्थितियों का सूक्ष्य निरीक्षण कर सामाजिक शक्तियों के तत्व संचित करते है और उन तत्वों का जीवन के रचनात्मक संयोजन में भली–भांति उपयोग करते हैं।"[3] नागर जी ने तत्कालीन काल के भारत में विघटित राजनीति और समाज व्यवस्था का जीवन्त अंकन किया है। वातावरण की सजीवता ऐतिहासिक उपन्यासों की विशेषता है । इस उपन्यास के माध्यम से नागर जी

---

1 शतरंज के मोहरे – तीसरा संस्करण की भूमिका पृष्ठ–86

2 शतरंज के मोहरे – पृष्ठ – 425

3 डॉ0 शशिभूषण सिंहल – "हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ पृष्ठ– 380

ने एक ओर सामन्तीय व्यवस्था के कृष्ण रूप को प्रकाशित किया है, दूसरी ओर तत्कालीन सामाजिक स्थिति के चित्रण के माध्यम से पीड़ित जनता को स्वर दिया है ।

सामाजिक आधार

नागर जी समाज द्रष्टा थे । उनकी गहन दृष्टि समाज के प्रत्येक पक्ष और प्रत्येक कोने पर गई है । उन्होंने अपनी रचनाओं में समाज के हर वर्ग को रूपायित किया है। "शतरंज के मोहरे" नामक अपने ऐतिहासिक उपन्यास में नागर जी ने तत्कालीन समाज में नवाबों को पारिवारिक स्थिति, समाज में नारी का स्थान, के साथ ही अंग्रेजी की बर्बरता से त्रस्त अवध की जनता का यथार्थ चित्र अंकित किया है । प्रस्तुत उपन्यास की मुख्य कथा नवाब गाजीउद्दीन हैदर और नसीरूद्दीन हैदर के जीवन काल की नानाविध विसंगतियों अवरोधों और कुचक्रों के कारण उत्पन्न शासन व्यवस्थागत दुर्बलताओं का विस्तृत लेखा-जोखा प्रस्तुत करती है । नवाबों का पारिवारिक सदस्यों से सम्बन्ध बिगड़ता है जिससे घर और बाहर की स्थिति खराब हो जाती हे । नवाब गाजीउद्दीन हैदर की बेगम (बादशाह बेगम) विदुषी एवं बड़ी धार्मिक महिला है । वह अपने पति को शतरंज का मोहरा समझती है ।"शाहे अवध गाजीउद्दीन हैदर और बादशाह बेगम में – पति-पत्नी में तेज तनातनी चल रही थी।"[1] बादशाह बेगम नवाब पर अपना अंकुश जमाकर शासन सूत्र हथियाना चाहती है। इतना ही नहीं, जो बाँदिया नवाबों के सम्पर्क में आती थी, वह भी अपने को अवध का नवाब ही समझती थी। ऐसी मानसिकता पतनोन्मुख संस्कृति में ही देखी जा सकती है। राजदरबार में विभिन्न प्रकार के षड्यन्त्रों में नायब, वजीरों का ही हाथ रहता था, क्योंकि वे नवाबों के परिवार की आपसी कमजोरी का लाभ उठाकर उन्हें गुमराह करते है। यथा- "नायब आगामीर बादशाह बेगम से खार खाये हुए थे बादशाह को उनके खिलाफ भरते ही रहते थे।

---

1 शतरंज के मोहरे, पृष्ठ-41

इस पच्चीस मास के गर्भ का बहाना लेकर तो उन्होंने आम में घी डालना शुरू कर दिया ।"[1] इस तरह मुगल परिवारों में पति-पत्नी में संबंध - विच्छेद हो जाता था। नवाब गाजीउद्दीन के सम्बन्ध बाँदियों "सुबह-दौलत" तथा "सुलखियाँ" से हो जाते हैं। वे कहते है - "सुलखियाँ, तू मेरा मन बन सकेगी ? मैं खामोश मन नहीं चाहता, बोलता मन चाहता हूँ, मैं बादशाह का मन नहीं चाहता, इंसान का मन चाहता हूँ।"[2] यही स्थिति नवाब नसीरूद्दीन हैदर की भी थी । वह भी एक के बाद एक बाँदियों से अपना शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करते है । इन प्रेम प्रसंगों के परिणामस्वरूप नवाबों के चरित्रों में अस्थिरता का समावेश हो जाता है।

धर्म और जाति -

मुगलकालीन समाज में धर्म और जाति दोनों का बाहुल्य था, समाज में कई जातियाँ थी। ब्राम्हण, क्षत्रिय, कायस्थ एवं वैश्य की गणना ऊँची जातियों में की जाती थी। चमार, पासी, धोबी, नाई, सुनार, लुहार, कुमहार, आदि निम्न वर्ग के अन्तर्गत माने जाते थे, जिसका कार्य सेवा करना होता था। मुसलमानों में पात्र दो ही वर्ग थे-शिया और सुन्नी। शिया "मजबहे इमामियाँ को स्वीकार करते थे और अपना नेता हजारत मुहम्मद साहब के दामाद "हजरत अली" को मानते थे। दूसरी ओर सुन्नी लोग मुहम्मद साहब के वसूल तरीकों तथा व्यवस्थाओं के अनुसार चलते थे। सूफियों और पीरों का भी बोलवाला था। इस उपन्यास की पात्रा बादशाह बेगम एक धार्मिक महिला थी। अवध के शिया धर्म में उसने एक नवीनता का प्रादुर्भाव किया। उन्होंने इमाम मेंहदी की छठी भी मनाना प्रारम्भ किया, कृष्ठ जन्माष्टमी की तरह । मन्दिरों में स्थापित देवताओं को अर्पित देवदासियों की तरह बादशाह बेगम ने इन इमामों के लिए घर में "रौजा" बनवाकर हर इमाम को एक-एक पत्नी अर्पित की ।

---

2. शतरंज के मोहरे, पृष्ठ-41

2. शतरंज के मोहरे , पृष्ठ-64

बादशाह बेगम ने इनका नाम अछूतियाँ रखा था। वे इनका बडा सम्मान करती थी। बादशाह बेगम के महल में इन अछूतियों का बड़ा मान था। खुद बादशाह बेगम सुबह उठते ही किसी अछूती का मुख देखकर अपना दिन शुभ करती थीं। उन्हें झुककर सलाम करती थीं।"[1] ग्रामीण जीवन का भी अंकन मिलता है । उस समय ओझा, तन्त्र , मंत्र आदि पर अधिक विश्वास किया जाता था। तत्कालीन समाज अंधविश्वास से भरा था।

नारी की स्थिति

तत्कालीन समाज में नारी की दशा अत्यन्त दयनीय थी। स्त्री–पुरूष द्वारा शासित एवं प्रताडित थी । स्त्रियों पर आये दिन पुरूषों द्वारा अत्याचार किये जाते थे। शतरंज के मोहरे में कुलसुम, भुलनी, कुदसिया बेगम तथा अन्य अनेक दासियों की जीवन यात्रा में यह दृष्टि प्रतिफलित हुई है वे स्त्रियाँ जो समाज में पुरूषों द्वारा छली जाकर अन्ततः वेश्या बनने के लिए विवश हो जाती हैं। कुछ अपमानित होकर अपनी इह लीला ही समाप्त कर देती है। यही स्थिति प्रस्तुत उपन्यास में कुदसिया बेगम और भुलनी की कथा में दिखाई देती है। निश्छल कुदसिया बेगम नसीरूद्दीन से प्रेम करती है, और अन्ततः नवाब उस पर बदचलनी का आरोप लगाकर घृणा करने लगता है । वह कहती है – "तुम कम–अकल ही नहीं, कम नसीब भी हो। तुम्हें खुदा भी नहीं बचा सकता तुम एक दिन इस घेरे में घिरकर मीट जाओगे। और मैं इस मक्रोफरेब से भरी हुई दुनिया में, जहाँ इन्सान– इंसान का दिल तक न पहचान सके, एक घड़ी के लिए भी नहीं रहना चाहती ।"[2] ठीक यही स्थिति "झुलनी" और "स्मिथ" के प्रसंग में हुई है जो कटु सामाजिक सत्य का उद्घाटन करती है । भुलनी गज्जूबसोर नामक हरिजन की तेरह वर्षीया होनहार बालिका थी। वह एक दिन नीकोठी के मुनीम सिस्टर स्मिथ की वासना को शिकार होकर आत्महत्या को बाध्य होती है। नारी की करूण कथा का दृश्य अत्यन्त कारूणिक है – "अरे महिका का ? दीन धरम मात–पिता

---

1 शतरंज के मोहरे पृष्ठ– 68

2 शतरंज के मोहरे, पृष्ठ– 320

प्रति उनके लगाव से कम महत्वपूर्ण नहीं है। नागर जी का इतिहास प्रेम किसी एक कालखण्ड तक ही सीमित न रहकर भारत के प्राचीन इतिहास से होता हुआ, भारत के आधुनिक इतिहास तक पहुँचाता है।

"शतरंज के मोहरे", 'सात घूँघट वाला मुखड़ा', 'सुहाग के नूपुर', 'एकदा नैमिषारण्ये,' 'मानस का हंस', 'खंजन नयन', आदि नागर जी के ऐतिहासिक उपन्यास है।

"शतरंज के मोहरे" नामक अपने प्रथम उपन्यास में नागर जी ने सन् 1857 की क्रान्ति से पहले के अवध का बहुत ही यथार्थ एवं कलात्मक चित्र प्रस्तुत किया है। "सुहाग के नूपुर" उनका दूसरा ऐतिहासिक उपन्यास है , जो ऐतिहासिक तथ्यों को तो नहीं, अपितु दक्षिण भारत की प्राचीन ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को सामने लाता है। इस उपन्यास में सारी घटनाएँ तथा पात्र कल्पित है । परन्तु उन्होंने कल्पना की इस भूमि को इतिहास की सजीव पृष्ठभूमि द्वारा कलात्मक बना दिया है। नागर जी का तीसरा ऐतिहासिक उपन्यास "सात घूँघट वाला मुखड़ा" है । यह नागर जी के पूर्ववर्ती दोनों ऐतिहासिक उपन्यासों से लघु तथा अधिक काल्पनिक है। इसका आधार कोई ठोस इतिहास ग्रंथ नहीं, प्रधानतया किंवदंतियाँ है, जो इस उपन्यास की काल्पनिक प्रकृति की अधिकता को सिद्ध करती है। इसके बाद चौथा ऐतिहासिक उपन्यास "एकदा नैमिषारण्ये" है, जो ऐतिहासिक उपन्यास से अधिक सांस्कृतिक है। यद्यपि नागर जी ने चन्द्रगुप्त कालीन इतिहास का लेखा जोखा देने की भरपूर चेष्टा की है, फिर भी उपन्यास में कुछ ऐसे पात्रों की अवतारणा हुई है जो केवल उस समय केवल जनश्रुति परम्परा में ही आते थे। इसी परम्परा का निर्वाह करने वाला नागर जी का पांचवा उपन्यास मानस का हंस है , जो गोस्वामी तुलसीदास जी के जीवनवृत्त पर आधारित होते हुए भी ऐतिहासिक सांस्कृतिक तत्वों से युक्त है । इसी कड़ी को आगे बढ़ाने वाला नागर जी का छठा ऐतिहासिक उपन्यास "खंजन–नयन" है। यह उपन्यास महाकवि सूरदास जी के जीवन पर आधारित है। इस उपन्यास में सूरदास जी की प्रामाणिक जीवनी के साथ

भगवान मोर सबु कछु छीनि लिहिना पापी परान जाने काहे अटके हैं। कइसे निकसि हैं?"[1]

'शतरंज के मोहरे' उपन्यास में नागर जी के तत्कालीन नारी की व्यथा को यथार्थ रूप से अंकित किया है । कुछ स्त्रियाँ अपने जीवन से समझौता कर एक वेश्या के रूप में ही जीवन यापन करती है । दुलारी एक ऐसा उदाहरण है जो न तो अपने पति की होती है और न अपने प्रेमी नईम की । वह वेश्या सा जीवन व्यतीत करती है । नईम कहता है – "उस भंगी की लड़की ने शादी से और जीवित रहने से इन्कार कर दिया लेकिन तुम कहाँ पहुँच गई ? तुम्हारे इश्क की मुझे हकीकत नजर आ गई, उसमें रूहानियत न थी, महज जिस्मानी प्यार था।" [1]

तत्कालीन समाज में स्त्री मात्र भोग्या थी। समाज के कुलीन ठाकुर और ब्राम्हण भी बहुपत्नी वादी थे। समाज में भ्रष्टाचार का बोलबाला था । समाज में वेश्यावृत्ति अपने चरमोत्कर्ष पर थी। वेश्याओं का बाहुल्य होने से उनके कई वर्ग थे।" इस समय वेश्याओं में डेरेदार, नौची, गन्धर्य, रामजनी, कसबी, बेसवा, आदि अनेक उपवर्ग थे।"[2] ये उपवर्ग मुख्य रूप से तीन वर्गो में विभाजित थे। इनमें सबसे ज्यादे सम्मान डेरेदार वेश्याओं को प्राप्त थी क्योंकि "डेरेदार तवायफें सिर्फ मुजरे का पेशा करतीं, अपने सांरगिये से निकाह पढ़ा कर स्त्री के नाते उसकी होकर ही रहतीं, अथवा किसी नवाब रईस की नजरें इनायत हो जाने पर उसके हाथों नथुनी उतारती, मेंहदी चढ़ती और वह उसी की नौकरी भी हो जाती थी।[4] दूसरी कोटि में गन्धर्व आती थी । इनमें भी डेरेदारी की प्रथा थी। ये लड़कियों से

---

1 शतरंज के मोहरे , पुष्ठ – 163

2. शतरंज के मोहरे, पृष्ठ – 229

3 शतरंज के माण्हेरे , पृष्ठ – 279

4 शतरंज के मोहरे , पृष्ठ – 279

पेशा कराते , बहुओं को परदे मे रखते थे। इन वेश्याओं की तीसरी कोटि में रामजनी , कसबी, वेसवा आदि वर्गो की वेश्याएँ आती थी जो इधर–उधर से शहर में आकर बस जाने वाली होती थी और नाच–गाना करके अपना जीवन निर्वाह करती है । उस समय के समाज में डेरेदार वेश्याएँ ही सम्मान पाती थी और नवाबों के दरबारों में भी इन्हें अपने कला का प्रदर्शन करने का अवसर प्राप्त होता था। दरवारों में नाचने वाली वेश्याएँ सत्रह अठारह वर्ष के बाद नौकरी से हटा दी जाती थी। इस प्रकार दरवारों से हटने वाली वेश्याएँ या तो बाँदी बम जाती थी, या फिर बाजारों में आकर पेशा करती थी। उनका कोई भी भविष्य नहीं था। उन्हें भी अनेकों सामाजिक यातनाओं का सामना करना पड़ता था।

<u>शोषक और शोषित वर्ग</u>

'शतरंज के मोहरे' उपन्यास में नागर जी ने किसान और मजदूरों की दशा को यथार्थ रूप में अंकित किया है । "जमींदार कृषकों के शोषण में तन्मय थे। हर कृषक बन्दोबस्त के कागज पर अंगूठा लगाने के लिए बाध्य था और चूँकि किसान अपने हाथ कटा बैठा था। इसलिऐ उसके श्रमिक भी काम करने के लिए बाध्य थे । यदि काम न करें तो पठान और अंग्रेज दोनों मिलकर सताते थे। नीच कौम वाले मजदूरों की झोपड़ियाँ जला दी जाती थी, उन पर सामूहिक हमले होते , बर्बरता और बलात्कार का ताण्डव होता ।"[1] सामन्ती व्यवस्था में सर्वहारा वर्ग की स्थिति सबसे खराब थी।

<u>भिखारी वर्ग</u>

तत्कालीन समाज में भिक्षुकों की संख्या बढ़ गयी थी । लखनऊ में भिखारियों की भरमार थी। इन भिखारियों , में शाही महलों की बहुत बूढ़ी बौदियाँ, बूढ़ी लाचार वेश्यायें, दूर–दूर गांवों की उजड़ी शाही सिपाहियों, डाकुओं के बलात्कार स्वरूप घर विरादरी से निकाली

---

1 शतरंज के मोहरे , पृष्ठ– 174

गयी औरतें, बेसहारा विधवाएँ[1] भी थी। भिखारियों की संख्या समाज में अधिक थी। इन भिखारियों में लूले-लंगड़े, और अपाहिज भी थे। ये भिखारी दाता को देखते ही हुजूर दाता माई-बाप सरकार गरीब परवर का रूतबा बढ़े, उमर हजारी हो, साहबजादे- साहबजादियों की खैर, पगड़ी पुरनूर चेहरे की खैर, कीमती जेवरों, पोशाकों की खैर, हाथी घोड़ों की खैर - मनाते घिघियाते हुए सवारियों के साथ-साथ झोली फैलाये दौड़ना, कम देने वाले दाता की पीठ फिरते ही उसकी माँ-बहन-बेटियों से जवानी रिश्ते कायम करना, आपसी हिस्से बाँट नोच-खसोट करना" यही भिखारी समाज का नियम बन गया था। इन भिखारियों में ही एक ऐसी कोटि के थे जिनके मुँह से जो निकल जाये वह माँग दाता को पूरी ही करनी होती थी। "भिखारी ऐसे जर्बदस्त थे कि उनसे सल्तनत का बस भी न चलता। सल्तनत ही भिखारियों की थी बादशाह भी अंगरेजों के दरबार का भिखारी था।"[2] इन उद्धरणों के माध्यम से तत्कालीन शासन व्यवस्था, राजनीतिक व आर्थिक दशा तथा सामाजिक मूल्य का पता चलता है ।

अंततः यह कहा जा सकता है कि शतरंज के मोहरे ऐतिहासिक उपन्यास होते हुए भी एक समय के जीवन यथार्थ को उसके वैविध्य में प्रत्यक्ष करने में समर्थ है। नागर जी ने इस उपन्यास में पतनोन्मुख समाज के मानवीय सम्बन्धों की विकृतियों को रूपायित किया है। ऐतिहासिक उपन्यास होते हुए भी यह समाज के विभिन्न पहलुओं को उजागर करता है तथा तत्कालीन युग की सभी समस्याओं का सफल अंकन इस उपन्यास में हुआ है।

---

1 शतरंज के मोहरे , पृष्ठ - 294

2 शतरंज के मोहरे , पृष्ठ = 295

<u>सुहाग के नूपुर</u>

इतिहास और कल्पना –

दक्षिण भारत के प्राचीन ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर रचित यह नागर जी का महत्वपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यास है । इस उपन्यास के कथानक का प्ररण स्रोत ईसा की प्रथम शताब्दी में रचित तमिल कवि इलंगोपन का महाकाव्य शिलापादिकारम है। सुहाग के नूपुर नामकरण शिलप्पादिकारम् शीर्षक का हिन्दी पर्याय है यद्यपि इस उपन्यास का नामकरण अनुदित है, किन्तु यह उपन्यास नागर जी के कल्पना शक्ति, व्यक्तित्व व रचना कौशल के कारण मौलिक उपन्यास बन गया है । ऐतिहासिक पृष्ठभूमि निर्माण की दृष्टि स नागर जी ने डाक्टर मोतीचन्द्र कृत सार्थवाह, ब्लीच तथा एच0जी0 वेल्स लिखित विश्व इतिहास डोनाल्ड मैकेंजी कृत मिथ्स एण्ड लीजेण्डस आफ इजिप्ट तथा राबर्ट ग्रैब्ज कृत क्लाडियस का अध्ययन मनन किया।[1] नागर जी के मताण्नुसार शिप्पादिकारम् की मूल कथावस्तु अति प्राचीन काल से इस देश के साहित्य में प्रायः सर्वत्र प्रचलित है। घिसीपिटी धीम होने पर भी पापुलर उपन्यास के लिए मुझे वह अच्छी लगी, मैं अपने दृष्टिकोण में उसमें नवीनता देख रहा था।"[2] अतः इस कथन से स्पष्ट है कि उन्होंने प्रचलित कथावस्तु को ज्यों ता त्यों ग्रहण नहीं किया है, वरन् महाकाव्य की कथावस्तु को अपनी कल्पना शक्ति द्वारा जगह–जगेह बदलकर अत्यन्त रोचक और नये रूप में प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। इस उपन्यास की कथावस्तु के ऐतिहासिक वातावरण का निर्माण करने में नागर जी ने उस समय के जीवन पर प्रकाश डालने वाले अनेक ग्रंथों का अध्ययन किया है इतिहास के गौरवशाली अतीत का चित्रण नागर जी ने किया है। उस समय दक्षिण भारत का कावेरी पट्टणम् अपने कला कौशल एवं धन वैभव के कारण सम्पूर्ण भारतवर्ष में अत्यन्त प्रसिद्ध था

---

1 सुहाग के नूपुर : निपेदनम्

2 सुहाग के नूपुर : निपेदनम्

यहाँ के सेठो का व्यापार देश–विदेश तक फैला हुआ था। ये सेठ अपने धन–वैभव तथा आचार विचारों के कारण सम्पूर्ण दक्षिण भारत के प्रतिष्ठित व्यक्ति माने जाते थे। उस समय की समाज व्यवस्था में इनका बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। ऐसे समाज में कुलवधू की सर्वाधिक प्रतिष्ठा थी। वह परिवार की लक्ष्मी मानी जाती थी। कुलवधुओं के साथ–साथ समाज में नगरवधुओं का भी पर्याप्त आदर होता था। ये नगरवधुओं का भी पर्याप्त आद होता था। ये नगरवधुयें धनिकों के मनोरंजन का साधन थी। संगीत और नृत्य उनका प्रमुख पेशा था। प्रतिवर्ष राजकीय उत्सव में सर्वश्रेष्ठ नर्तकी को राजा स्वयं सम्मानित करता था। साधारण जन मानस की नाच और गान में पर्याप्त रस लेती थी। सुहाग के नूपुर उपन्यास की कथावस्तु इसी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित एवं विकसित है । नागर जी की दृष्टि उत्तर भारत के साथ–साथ दक्षिण भारत के इतिहास एवं वहाँ की संस्कृति को अंकित किया है। नागर जी इतिहास को एक साहित्यकार और समाजशास्त्री की दृष्टि से देखते थे।

'सुहाग के नूपुर' को ऐतिहासिक उपन्यास कहा जा सकता है, किन्तु इसका प्रतिपाद्य वेश्या बनाम कुलवधू जनित नारी पीड़ा है जिसे नागर जी की कल्पना शक्ति ने सामाजिक अभिव्यक्ति प्रदान की है । इस उपन्यास की सामाजिकता ही उसे सर्वकालीन बनाने में सक्षम है। नागर जी ने सुहाग के नूपुर उपन्यास में नारी के दोनों रूपों को समान रूप से उभारा है। एक तरफ तो नगरवधु की पीड़ा है, दूसरी ओर उससे उत्पन्न कुलवधुओं की पीड़ा की अभिव्यक्ति भी समान रूप से चलती रहती है। इस सामाजिक व्यवस्था में कराहती नारी की स्थिति बड़ी दयनीय है । एक नारी नगरवधू के रूप में पीड़ित होकर समाज में न्याय पाने के लिए असफल संघर्ष करती है । दूसरी ओर कुलवधू की मर्यादा में बंधकर घर की चारदीवारी में आँसू बहाती है । यह घुटन मूलतः नारी जीवन की घुटन है, जिसे नागर जी ने ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में सामंती वैभव तथा अलंकरण के साथ यथार्थ रूप से अंकित किया है ।

नारी की विवशता की इसी पृष्ठभूमि में नागर जी ने नगरवधू बनाम कुलवधू की समाज में प्रतिष्ठा की समस्या को स्वर दिया है । नागर जी ने बहुत ही व्यंग्यपूर्ण शैली में पुरूष की स्थिति पर कटाक्ष किया है – "प्रतिष्ठा न इसकी है न उसकी दुमदार अकेला मैं ही हूँ"[1] नागर जी ने वेश्या वर्ग से अक्षरशः सहानुभूति रखते हुए भी कुलवधू की महिमा को सर्वग्राह्य बतलाया है । इस दृष्टि से नागर जी अपनी परम्परा से अलग नहीं हो पाते ।

सामाजिक आधार

नागर जी की दृष्टि समाजशास्त्रीयहैजिसका परिचय हमें उनके हर तरह के उपन्यासों में दिखाई देता है । वे जिस काल का कथानक लेते हैं, उस काल के समाज तथा सामाजिक व्यवस्था को उभारने की भरपूर कोशिश करते है । इस तरह नागर जी के ऐतिहासिक उपन्यासों में भी हमें तत्कालीन सामाजिक जीवन में व्याप्त विसंगतियों का परिचय मिलता है । नागर जी ने दक्षिण भारत के प्राचीन, ऐतिहासिक वातावरण की पृष्ठभूमि में सुहाग के नूपुर उपन्यास को प्रतिष्ठित किया है । लेखक ने एक समाजशास्त्री की दृष्टि से वातावरण का रेशा रेशा बुना है ।

तत्कालीन समाज

'सुहाग के नूपुर' उपन्यास में दक्षिण भारत के समाज के उन सेठ– साहुकारों का चित्रण किया गया है, जिनकी सामाजिक और व्यापारिक प्रतिष्ठा देश में ही नहीं , बल्कि विदेशों तक फैली हुई थी। समाज में रहने वाला व्यक्ति सामाजिक मर्यादा के प्रति सचेष्ठ रहता हुआ समाज को जीवित रखना चाहता है । इसी प्रसंग में नायक कोवलन कहता है – माधवी तुम्हारें प्रेम में मैं अपना और अपनी कुल–प्रतिष्ठा व्यवसाय, वाणिज्य, धनवैभव,

---

1 सुहाग के नूपुर – पृष्ठ – 104–105

सब कुछ उत्सर्ग कर चुका, किन्तु समाज को न करूँगा और यदि तुम मुझे रूप दिखलाओगी तो मैं यहाँ रहना भी छोड़ दूँगा।"[1] उस समय समाज में कुलवधू को अत्यधिक प्रतिष्ठा प्राप्त थी। कुलवधू घर की लक्ष्मी होती थी। ऐसे समाज में एक तरफ तो नारी को कुलवधू के रूप में प्रतिष्ठा तो मिलती है, किन्तु वह एक सीमित दायरे में रहकर घुटन की जिन्दगी जीने को मजबूर रहती है । उपन्यास का नायक कोवलन जो पूरे समाज में बहुप्रचलित पुरूष मनोविज्ञान का प्रतिनिधित्व करता है, पत्नी के विषय में कहता है। "पत्नी के रूप में पुरूष एक स्त्री को दासी बनाकर अपने घर लाता है।"[2] यही नहीं, संस्कारों से युक्त कुलवधू कन्नगी स्वयं को पति को दासी ही मानती है। नारी के जीवन का मूल्यांकन उसके दाम्पत्य जीवन की सफलता के आधार पर किया जाता ठे । कन्या को प्रारम्भ से ही यह शिक्षा दी जाती हे कि वह विवाह के पश्चात पतिव्रत धर्म का निर्वाह करती हुई आदर्श जीवन व्यतीत करें, वह दुर्भाग्य से भारत में अधिकांश परिवार दाम्पत्य जीवन में माधुर्य का अनुभव नहीं कर पाते। सदा से पुरूष की स्वेच्छाचारिता एवं एकाधिकार की भावना नारी को भोग की वस्तु के अतिरिक्त कुछ नहीं समझ पाती । वह उसे दासी की तरह खरीदकर उससे अमानुषिक व्यवहार करता रहा है । यही स्थिति कन्नगी की भी है । कन्नगी में भारतीय नारी के समस्त गुण विद्यमान है । वह विनम्रता और नारी सुलभ गुणों की दिव्य प्रतिमा है। सुहागरात का माधवी के सम्मुख अपमानित होकर भी वह अपने शील को तिलांजलि नाहीं देती । उसका शील अचल और अडिग है, झंझावात भी उसे कंपित करने में असमर्थ रहता है। माधवी, कोवलन के सामने ही उससे पूँछती है कि "मेरे पति कोवलन जैसे दिव्य-श्रृंगारी आत्मा को रिझाने के लिए भी तुम्हारे पास कौन -कौन से गुण है।"[3] इतना ही नहीं वह उसे घुंघरू

---

1. सुहाग के नूपुर, पृष्ठ 180
2. सुहाग के नूपुर, पृष्ठ - 88
3. सुहाग के नूपुर, पृष्ठ -94

बाँधकर नृत्य करने को भी बाध्य करना चाहती है । तब कन्नगी के मुख से इतने ही शब्द निकलते कि बहन ये घुँघरू तुम्हारे ही पैरों में शोभा पाएँगे।"[1] इन उद्वरणों से कन्नगी का एक भारतीय नारी का रूप दिखाई देता है । एक जगह उसके इसी गुण से प्रभावित होकर उसके श्वसुर मासात्तुवान कहते है – "बेटी तुम्हारा शील तुम्हारे पितृकुल की यशोगाथा गा रहा है और तुमहारा असत्य भाषण मेरे कुल की लाज बचा है ।"[2]

अपनी पत्नी "कन्नगी" के सर्वगुणी होने पर भी उसका पति कोवलन उससे घृणा कर माधवी नामक वेश्या के साथ रहने लगता है और उसका दाम्पत्य जीवन दुखमय बन जाता है। कोवलन के पूँछे जाने पर कन्नगी कहती है – "दासी का दुःख नहीं पूँछा जाता स्वामी । मुझे आपके सुख में ही सुख मानने का संस्कार मिला है ।"[3] इस उत्तर को सुनकर कोवलन के अहं को ठेस पहुँचती है ।

भारतीय समाज में स्त्री को कुलवधू के रूप में भी नाना प्रकार की यातनाओं को झेलना पड़ता है । इन यातनाओं में भी नारी अपना धर्म मान लेती है। कन्नगी का लौकिक धर्म मानते हुए भी विश्वास है कि नारी को जीवन में संस्कारित और मर्यादित रहना चाहिए क्योंकि पुरूष अपना धर्म भूल जाएँ तो क्या स्त्री भी मर्यादा के बन्धन ढीले कर देगी।"[4] नागर जी का भी विश्वास है कि द्विविधा में बंधी हुई स्त्री कभी किसी पुरूष को बल नहीं दे सकती । वह कभी एक भाव में रहेगी , कभी दूसरे में । एकनिष्ठ सती ही अपने

---

1. सुहाग के नूपुर, पृष्ठ 95
2 सुहाग के नूपुर , पृष्ठ – 101
3 सुहाग के नूपुर, पृष्ठ–154
2. सुहाग के नूपुर, पृष्ठ 161

पुरूष को बल प्रदान कर सकती है, क्योंकि वह द्विविधा से रहित है।"[1]

तत्कालीन समाज में, अपने ढेर सारे गुणों के बावजूद, भी पारिवारिक जीवन अशांत था। इस काल में लोगों को नृत्य और संगीत से काफी लगाव था, जिसके लिए नगर न सेठों के समा ज के साथ ही वेश्याओं का भी समाज सुलभ था, जो सामाजिक और पारिवारिक विघटन का मुख्य कारण बना हुआ था।

वेश्या समाज

'सुहाग के नूपुर' उपन्यास में चित्रित और वर्णित वेश्या समाज दो वर्गों में विभाजित था। इन रूपजीवाओं की दुनिया में कुलीनता-अकुलीनता का बहुत भेद माना जाता था। इनमें राजम्मावंश-परम्परा से प्रतिष्ठित वंजिकुल (वेश्या कुल) में आती थी। तत्कालीन वेश्या समाज में राजम्मा को वही प्रतिष्ठा प्राप्त थी, "जो कावेरीपट्टणम् के धनी-मानी कुलों में मासातुवान और मानाइहन का था।"[2] पेरियनायकी की गणना अकुलीन वेश्याओं में की जाती थी। पेरियनपायकी की पोष्यपुत्री माधवी है जो बचपन में ही पेरियनायकी द्वारा मोल ली जाती है। किन्तु माधवी वेश्या कुल में रहने के बाद भी एक कुलवधू के अधिकारों के लिए प्रारम्भ से ही प्रयत्न तथा संघर्ष करती है । समाज से न्याय पाने के लिए माधवी संकल्प लेती है - "मैं भी न्याय लूँगी। वेश्या बनाने के लिए डाकुओं कट्टनियों का जाल फैलाकर जब हमें व्यवसाय की वस्तु बनाया जाता हे तब सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रश्न क्यों लुप्त हो जाता है । मैं स्वेच्छा से वेश्या के यहाँ बिककर नहीं आइ थी। मैं भी सती हूँ । मेरे सम्मुख भी अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न है।"[3] वह कोवलन के प्रति तन और मन से समर्पित हो जाती है , किन्तु फिर

---

1 सुहाग के नूपुर, पृष्ठ 265

2 सुहाग के नूपुर, पृष्ठ 5 18

3 सुहाग के नूपुर , पृष्ठ- 165

भी पुरूष वर्ग और समाज उसे वेश्या जीवन ही देता है।

प्रस्तुत उपन्यास में नागर जी ने माधवी के माध्यम से समाज की समस्त भोग्या या भोगविलास की वस्तु समझी जाने वाली नारी को अधिकार दिलाने की कोशिश की है। कोई भी स्त्री वेश्या का जीवन जीना नहीं चाहती । वह किसी भी प्रेमिका और पत्नी बनना चाहती है । माधवी की भी यही आकांक्षा है । उपन्यास के अन्त में माधवी कहती है – "पुरूष जाति के स्वार्थ और दम्भभरी मूर्खता से ही सारे पापों का उदय होता है। उसके स्वार्थ के कारण ही उसका अर्धांग–नारी जाति–पीड़ित है । एकांगी दृष्टिकोण से सोचने के कारण ही पुरूष न तो स्त्री को सती बनाकर सुख दे सका, और न वेश्या बनाकर ही।"[1] उसे अपने वेश्यारूप से घृणा है । वह अपनी नृत्य गुरू चेलम्मा से भी अपनी हार्दिक इच्छा व्यक्त करती है । माधवी, कोवलन की विवाहिता बनकर और एक पुत्री की माँ के रूप में जब समाज में अपनी पुत्री के लिए अधिकार की मांग करती है , तब कोवलन अस्वीकार कर देता है – "पिता विलासी, माँ रूपजीवा। दोनों ने सन्तान की इच्छा से जिस बेटी को जन्म दिया, उसकी माँ सुहाग के नूपुर पहनने योग्य नहीं और न उसका पिता ही पिता कहलाने योग्य।"[2] माधवी को कोवलन (पुरूष जाति) से घृणा हो जाती है। नागर जी ने माधवी के माध्यम से पुरूष की दोहरी नैतिकता को उभारा है , उसके मिथ्या अभिमान को उजागर किया है। माधवी के आत्मालोचना युक्त शब्दों में वेश्या–जीवन की कुंठा और समाज के प्रति उसके विद्रोहात्मक आक्रोश की बड़ी ही तीखी अभिव्यक्ति हुई है । यथा – "मै वेश्या नहीं हूँ न जन्म से, न कर्म से । सात भाँवरों का खेल न खेलकर भी मैंने तुम्हारा (कोवलन का) वरण किया है । मैं सती हूँ।"[3] फिर भी पुरूष प्रधान समाज उसे वेश्या कहता है

---

1 सुहाग के नूपूर , पृष्ठ – 267

2 सुहाग के नूपुर, पृष्ठ 159

3 सुहाग के नुपुर, पृष्ठ – 147

"सुहाग के नूपुर की महत्वाकांक्षा से इसके नृत्य के घुंघरू अब कभी न बोरायेंगे।"[1] हमारे समाज में एक ओर पुरूषों को स्वच्छन्द जीवन भोगने के लिए अनेक सामाजिक सुविधा उपलब्ध रही है , किन्तु दूसरी तरफ नारी घर के कारागार में बंद पुरूषों के हाथ कठपुतली बनी रही है। वह आजीवन सामाजिक अत्याचार मौन रूप से सती रही है। आधुनिक युग में शिक्षा के प्रचार-प्रसार से नवीन चेतना जागृत हुई है । देश के नये संविधान में नारी को पुरूष के समान अधिकार मिले ।

नागर जी ने इस उपन्यास में नारी जाति के शोषण, एवं अत्याचारों को व्याख्यायित किया है – "मै नारी है – मनुष्य समाज का व्यथित अर्धांग ।"[2] नागर जी ने एक समाजशास्त्री की भांति स्त्री-पुरूष के सम्बन्ध का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है । इस उपन्यास में नागर जी ने सामंती समाज रचना के माध्यम से अन्तर्विरोधों से युक्त सामाजिक मूल्यों एवं मान्यताओं को उजागर किया है ।

<u>सात घूँघट वाला मुखड़ा</u>

इतिहास और कल्पना –

प्रस्तुत उपन्यास नागर जी द्वारा रचित ऐतिहासिक लघु उपन्यास है । इस उपन्यास में इतिहास से अधिक कल्पना है । इसमें प्रयुक्त इतिहास प्रामाणिक होते हुए भी किंवदंतियों से भरा हुआ है । स्वयं नागर जी ने इसके बारे में कहा है – "यह इतिहास नहीं, ऐतिहासिक चरित्र- प्रधान उपन्यास है । तिथियों और घटनाओं के क्रम मनोवैज्ञानिक स्थितियों के अनुसार परिवर्तन कर दिये गए हैं, क्योंकि बेगम समरू का इतिहास प्रामाणिक होते हुए भी उसकी बहुचर्चा के कारण किंवदंतियों से भरा हुआ है।"[3]

---

1 सुहाग के नूपुर , पृष्ठ 253

2 सुहाग के नूपुर , पृष्ठ 267

3. विज्ञप्ति – सात घूँघट वाला मुखड़ा

इस उपन्यास की पात्र बेगम समरू कई नामों से सम्बोधित की गयी है जैसे– "मुन्नी" दिलाराम, जुआना आदि। बेगम समरू का चरित्र विवादास्पद है। वह नवाब समरू की विवाहित थी। कुछ सूत्रों के अनुसार वह दिल्ली की बेगम कहीं जाती है । उसके विषय में किंवदंतियों है कि उसका कई पुरूषों से यौन समबन्ध था। नागर जी ने भी उपन्यास में बेगम समरू को बेहद कामुक और काम–पीड़िता के रूप में चित्रित किया है । नवाब की मृत्यु के बाद उसने "ली वायस" नामक फ्रांसीसी युवक से विवाह कर लिया। सेनापति अंग्रेज अफसर टॉम्स से उसका सम्बन्ध था। ली वायस (लवसूल) से विवाह करने पर उसकी प्रजा ने विद्रोह खडा कर दिया, फलतः लवसूल ने आत्म हत्या कर ली। ऐतिहासिक तथ्यानुसार बेगम का दूसरा विवाह सन् 1793 में हुआ और सन् 1795 में वह कैद कर ली गई थी। उतार चढ़ाव से भरी बेगम की जीवन लीला लम्बी बीमारी के बाद 27 जनवरी, 1836 को 86 वर्ष की उम्र में समाप्त हो गयी ।"[1]

किंवदंतियों पर आधारित इतिहास में भी नागर जी ने अपनी कल्पना शक्ति द्वारा कथा में परिवर्तन एवं नया रंग भरा है । टामस और लवसूल के आपसी सम्बन्धों के विषय में ऐतिहासिकता तो यह है कि टामस और लवसूल में कुछ सैनिक मामलों पर खीचंतान हो गयी थी किन्तु नागर जी उस मनमुटाव का कारण मानता है बेगम समरू का फ्रांसीसी युवक लवसूल के प्रति आकर्षण टामस द्वारा सरधना में सुव्यवस्था कायम करने वाली कथा न तो इतिहास परक है और न उपन्यास में कथा की दृष्टि से विश्वसनीय लगती है। उपन्यासकार ने कथानक को रोचक बनाने के लिए बेगम समरू के जीवन से सम्बन्धित ऐतिहासिक घटनाओं में किंचित फेर बदल किया है। उपन्यासकार ने उपन्यास में जुआना की काम पिपासा को शान्त करने वाले टॉमस को चित्रित किया है । बेगम समरू के जन्म स्थान के सम्बन्ध में भी इतिहास मौन है. किन्तु उपन्यासकार को इससे कुछ सरोकार नहीं वह तो मुन्नी उर्फ

---

1. कादम्बिनी–दिसम्बर, 1973 पृष्ठ–100

दिलाराम, उर्फ जुआना, उर्फ बेगम समरू का जन्म सौन्दर्य के देश काश्मीर में दिखलाने की चेष्टा करता है । आगे चलकर यही काश्मीरी लडकी बेगम समरू के नाम से प्रसिद्ध होती है। नागर जी ने उसके मोहक सोन्दर्य का चित्रण किया है । इस उपन्यास में नागर जी ने ऐतिहासिकता में अपनी काल्पनिकता का समावेश करके उपन्यास को रोचक बनाने की कोशिश की है ।

सामाजिक आधार

हर कथा में चाहे वह पौराणिक हो या ऐतिहासिक उसके पीछे कोइ न कोई सामाजिक आधार जरूर होता है। 'सात घूँघट वाला मुखडा' उपन्यास में भी ऐतिहासिक कथा के सामाजिक आधार है इस उपन्यास की कथा का इतिहास अठ्ठारहवीं शताब्दी के अन्तिम पच्चीस वर्षों की गाथा है । इस युग में विदेशी शक्तियों मराठा साम्राज्य को नष्ट कर हिन्दुस्तान में अपना प्रभुत्व जमाने की कोशिश में लगी थी। इस उपन्यास में चरित्रों और घटनाओं के भीतर झाँककर उपन्यासकार ने तत्कालीन सामाजिक विघटन और पतन का चित्र खींचा है। उस समय महलों और हरमों में होने वाली ऐय्याशी, परस्पर अविश्वास तथा सन्देह ही घोर पतन का कारण बना । तत्कालीन सामाजिक जीवन जड़ और निष्प्राण हो चला था। फलतः जो शासक आया, प्रजा ने दीन भाव से उसकी व्यवस्था स्वीकार कर ली ।

नागर जी ने समाज में फैले अविश्वास, नारी–अपहरण, चोरी, फरेब, मक्कारी, आदि दुष्कर्मो को चित्रित किया है। बेगम समरू भी चोरी की ही माल थी , उसे बशीर खाँ का बाप लाता है । बेगम समरू दिलाराम के रूप में बशीर खाँ के घर रहते हुए उससे प्रेम करती है, किन्तु बशीर उसे धोखा देता है । वह कहती है – वह आदमी ही क्या जिसे दिल की कद़ न हो । इंसान का दिल दुनिया की सारी दौलत से भी कहीं ज्यादा कीमती है । इस लालची ने मेरे दिल की कदर न की । बड़ा धोखेबाज निकला।[1] रूपयों के लालच

---

1 सात घूंघट वाला मुंखड़ा – पृष्ठ– 10

में वशीर खाँ दिलाराम को समरू के हाथ बेच देता है । हर काल में नारी का शोषण होता रहा है, किन्तु फिर भी नारी पुरूष पर विश्वास कर अपना सब कुछ लुटा देती है । दिलाराम बशीर खाँ से कहती है – "मैने तुम्हें अपना बेशकीमती दिल दिया था। दिल ही नहीं तुम्हारे फरेब में आकर परसों रात में तुम्हें अपनी वह सबसे बड़ी दौलत भी सौंप चुकी जो औरत किसी को जिन्दगी में सिर्फ एक बार ही दे सकती है ।"[1] नारी पुरूष की वजह से कभी बबसी में , और कभी अपने चरित्र पतन के कारण समाज से संघर्ष कर रही है।

उपन्यास में चित्रित समाज फरेब और मक्कारी से भरा हुआ था। पुरूष का वर्चस्व कायम था। कभी तो नारी स्वेच्छा से और कभी पुरूषों के बल प्रयोग से अपने मूल रूप मे परिवर्तन के लिए तैयार होती थी। इस उपन्यास की पात्र दिलाराम स्वयं नहीं, बल्कि बशीर खाँ द्वारा ही सियासत की चालों को समझ कर बेगम समरू का रूप ले लेती है । वशीर खाँ कहता है – "याद रखो दिलाराम, कि सियासत भी पेशे पर रक्कासा होती है उसके पास दिल नहीं होता और हुस्न की मलिका, ऐसी बेदिल सियासत को अपनी चेरी बनाएँ बगैर तख्तोताज की मलिका बन ही नहीं सकती ।"[2] यहीं से चरित्रहीन बेगम समरू का उदय होता है, जो अपने रूप और गुण का प्रयोग कर तत्कालीन राजनीतिक में प्रवेश कर भारत की राजनीति में चर्चित होती है । तत्कालीन समाज में चुरा कर लड़कियों को राजमहलों तक पहुँचाया जाता था , जहाँ वे नवाबों के हवस का शिकार बनती है । इन सभी दोषों के बावजूद भी तत्कालीन समाज में पर्दाप्रथा का प्रचलन था। महलों में नवाबों के सारे अच्छे और बुरे कार्य पर्दे में ही होते थे। इस उपन्यास में पतनोन्मुख समाज का चित्रण हे। पुरूष विलास से जर्जर है, स्त्रियाँ अधूरी महत्वाकांक्षाओं में घुटने के लिए अभिशप्त। सन्देह ,

---

1. सात घूँघट वाला मुँखड़ा– पृष्ठ– 12

2 सात घूँघट वाला मुँखडा , पृष्ठ– 13

अविश्वासग्रस्त, मर्यादाहीन और काम पीड़ित पुरूष– नारी वर्ग का चित्रण है तथा बर्बर प्रतिहिंसा चारों तरफ व्याप्त है । उस समय भारत को कई विदेशी शक्तियाँ हड़पना चाहती थी और हिन्दुस्तान की नियति यह है कि उसकी भीतरी पहचान ही खो गयी है। ताकत और मजबूरी के द्वन्द्व में फँसी मानव चेतना को छुटकारा का कोई मार्ग नहीं दिखाई देता था। नागर जी के पास कथाकार की दृष्टि के साथ ही साथ एक जागरूक समाजशास्त्री की तथ्य संग्रही पैनी दृष्टि भी है जो घटनाओं के देशकाल को मूर्त करने की दिशा में सतत् प्रयत्नशील है समाजशास्त्रीय दृष्टि से देखा जाय तो नागर जी की दृष्टि एकांगी नहीं है। उन्होंने इतिहास रचना के मूल में कार्यरत राजनीतिक चेतना और परिस्थितियों के दबाव को भी लक्षित किया है। उनके उपन्यासों में इतिहास रचना के सामाजिक आधार का विश्लेषण भली–भांति हुआ है।

नागर जी का सम्पूर्ण कथा साहित्य भारत की प्राचीन संस्कृति से जुडा हुआ है। मानव मात्र के लिए अनुकरण करने की प्रवृत्ति सदैव से प्रेरक रही है। साहित्य वास्तविक जगत का विशिष्ट चित्र उपस्थित करता है। उस भाषा- चित्र को सजोने के लिए उसे विभिन्न प्रवृत्तियो का आयाम ढूँढना पडता है। इसके अन्तर्गत विशु मानवीय भावो का प्राधन्य होता है। नागर जी के उपन्यासो मे सास्कृतिक सस्पर्श इतना गहरा होकर आया है कि उनकी रचनाये इतिहास, पुराण, धर्म और दर्शन की छवि बनकर पाठकीय सवेदना को अभिभूत करती है। उन्होने भारतीय समाज की पौराणिक, ऐतिहासिक , सास्कृतिक और सामाजिक सस्कृति को पोर-पोर कुरेदा है और समूची भारतीयता को मथकर पूरी निष्ठा से भारतीयता से जुड़े रहकर भी उसकी सडी गली काई को दर्शाने मे समर्थ रहे है ।

<u>सस्कृति शब्द का अर्थ</u> -

संस्कृति का अर्थ सस्कार- सम्पन्न जीवन है । वह जीवन जीने की कला और विशिष्ट पद्धति है । सस्कृति एक ऐसा विराट् तत्व है जिसमें सभी कुछ समाविष्ट हो जाता है । मानव जीवन के इच्छा, ज्ञान और क्रिया तीन पक्ष है जिसे दूसरे शब्दो मे हृदय, बुद्धि और व्यवहार कहा जा सकता है । इन तीनो तत्वों का जब पूर्ण सामजस्य होता है , तब सस्कृति होती है ।[1] सस्कृति विचार, आदर्श-भावना और सस्कार-प्रवाह का एक सुसगठित और सुस्थिर सस्थान है जो मानव को सहज ही पूवेजो से प्राप्त होता है । सच्ची सस्कृति भूत, भविष्य और वर्तमान इन तीनो को एक सूत्र मे गूँथती है ।

---

1 देवेन्द्रमुनि शास्त्री : साहित्य और सस्कृति, भारतीय विधा प्रकाशन, प्रथम प्रकाशन, वाराणसी, 1970

"संस्कृति" शब्द का अर्थ परिष्कृत करना है । संस्कृति का भावार्थ शाब्दिक अर्थ की अपेक्षा अधिक विशद एवं व्यापक है । अपने व्यापक अर्थ में संस्कृति से अभिप्राय किसी समाज की जीवन पद्धति से है, जिसमें उसकी कला, शिल्प, विश्वास, मूल्य, संस्कार, प्रथायें, धर्म , नीति आदि समाहित है। धर्म और संस्कृति का प्रगाढ सम्बन्ध है। सामाजिक तथा सांस्कृतिक गतिविधियों का मूलाधार भी धर्म ही रहा है । धर्म में भी प्रायः वे ही संस्कार आते है जो संस्कृति में है । हमारे यहाँ धर्म व्यापक शब्द है। वह हमारे जीवन को शासित करता है। धर्म और संस्कृति में अन्तर केवल इतना ही है कि धर्म में केवल श्रुति स्मृतियों और पुराणग्रंथों का आधार रहता है, किन्तु संस्कृति में परम्परा का आधार रहता हैं।"[1]

संस्कृति किसी समाज की ऐसी जीवन पद्धति है जो सदैव पूर्वजों के अनुभवों से संयुक्त होकर पीढ़ी–दर–पीढ़ी को विरासत के रूप में प्राप्त होती रहती है।

संस्कृति की आधारशिला पुरातन होती है। विगत का प्रभाव और समसामयिक परिवर्तन इसे प्रवाहशील बनाते हैं। आज भी हमारा आदर्श हमारा अतीत है। संस्कृति किसी भी देश की अस्मिता को जीवंत और सतत् प्रवहमान बनाये रखने में सहायक होती है।

नागर जी का साहित्य समस्त नवीनताओं को वैज्ञानिक दृष्टि से अपना कर भी भारतीय सांस्कृतिक गरिमा से आप्लावित हैं। इतिहास संस्कृति का सहोदर है। इतिहास में सांस्कृतिक संस्पर्श इतना गहरा होकर आता है कि रचना इतिहास, पुराण, संस्कृति, धर्म और दर्शन की प्रतिच्छवि बनकर पाठकीय संवेदना को अभिभूत कर लेती है। नागर जी द्वारा रचित पौराणिक – सांस्कृतिक उपन्यासों में **"एकदा नैमिषारण्ये"**, **"मानस का हंस"**, **"खंजन–नयन"** आदि प्रमुख है। नागर जी ने सांस्कृतिक दृष्टि से अपने उपन्यासों में उन घटनाओं का सजीव चित्र उपस्थित किया है, जिनकी जड़ अतीत में सोयी हुई है।

---

1 बाबू गुलाब राय, भारतीय संस्कृति, पृष्ठ–3

पौराणिक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर आधारित नागर जी का यह उपन्यास विपुल ज्ञान का भण्डार है । शीर्षक और पौराणिक पृष्ठभूमि के अनुरूप संस्कृतनिष्ठ भाषा में लिखा गया यह आख्यान अपने उद्देश्य का बहुत दूर तक प्रसार करता है । यह उपन्यास पौराणिक संदर्भों से युक्त, ऐतिहासिक घटनाक्रम में, राजनीतिक और सामाजिक पृष्ठभूमि को प्रस्तुत करता है । लेखक की व्यापक एकदेशीयता ने एक विशेष भूखण्ड को समक्ष रख के भी सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति को ही दृष्टि में रखा है और उसे मानवताबोध की आधुनिक संवेदनशीलता से सम्पुष्ट किया है । भारतीय संस्कृति और सभ्यता के आदि रूप का प्रसार कहाँ से हुआ, विश्वव्यापी अनेकता को एकता के सूत्र में बाँधने का भावात्मक प्रयास किसके द्वारा किन परिस्थितियों में हुआ, इन प्रश्नों का उत्तर लेखक ने खोजा है। सम्पूर्ण भारतीय सभ्यता, संस्कृति को एक भावात्मक सूत्र में बाँधने के उद्देश्य को लेकर लेखक ने परम्परित एकदा नैमिषारण्ये ...... से प्रेरणा ली । समस्त आर्यावर्त में पौराणिक कथाओं का आरम्भ इसी वाक्य से होता है । अतः निश्चय ही सुदूर अतीत में नैमिष में एक महान सांस्कृतिक आन्दोलन अवश्य हुआ होगा। इस आन्दोलन को ऐतिहासिक तथ्यों से संयोजकर तत्कालीन धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिकि स्थितियों का ताना-बाना बुना गया है । लेखक ने भूमिका में उपन्यास के मूल उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए कहा है – "नैमिष आन्दोलन को ही मैंने वर्तमान भारतीय या हिन्दू संस्कृति का निर्माण करने वाला माना है। वेद. पुर्नजन्म, कर्मकाण्डवाद, उपासनावाद. ज्ञान मार्ग आदि का अंतिम रूप से समन्वय नैमिषारण्य में ही हुआ। अवतारवाद रूपी जादू की लड़की घुमाकर परस्पर विरोधी संस्कृतियों को घुला-मिलाकर अनेकता में एकता स्थापित करने वाली संस्कृति का उदय नैमिषारण्य में हुआ, और यह काम मुख्यतः एक राष्ट्रीय दृष्टि से ही किया गया था।"[1]

---

1. एकदा नैमिषारण्ये, अपनी बात, पृष्ठ - 13

पौराणिक कल्पना

पौराणिक कल्पना के अनुसार उस आन्दोलन में एक लाख श्लोकों वाली महाभारत संहिता का पारायण तथा अन्य पुराण ग्रन्थों के पठन–पाठन से एक धर्म की समन्वयकारिणी भावना को प्रश्रय दिया गया। तत्कालीन आर्यो के विश्रृंखलित विभिन्न दल और वर्ग देश की शक्ति को क्षीण कर रहे थे। भारतीय संस्कृति और विदेशी संस्कृतियों की (विशेष रूप से मिश्र, ईरान, अरब आदि देशों) पौराणिक कल्पनाओं में आधारभूत समानताओं के कारण यह प्रश्न सहज ही उठता है कि सुदूर अतीत में अवश्य ही वहाँ के लोग यहाँ आये होंगे। वाह्य जातियों का यहाँ आना, मूलनिवासियों से संघर्ष और उनका यहाँ बस जाना भी संस्कृति का अंग है। वेदों की महिमा एवं अनेक देवी–देवताओं की कल्पना ने चमत्कारों और आडम्बरों को जन्म दिया। समय–समय पर अनेक महापुरूषों ने धर्म को स्वच्छ दृष्टि दी, किन्तु कालान्तर में उनके अनुयायियों द्वारा तथा विदेशी संस्कृतियों के सतत् आक्रमणों से धार्मिक आडम्बरों की बहुलता हो गई । उपन्यास की पृष्ठभूमि में इन विविध धर्माडम्बरों का व्यापक रूप दिखाई देता है । विशेषतः सांस्कृतिक, धार्मिक विचारधारा दो श्रेणियों में बंटी हुई थी – ब्राम्हण और श्रमण विचारधारा।"

ब्राम्हण संस्कृति वेदों को अपौरूषेय मानती थी – और चार वर्ण, चार आश्रम, पशुबलि, यज्ञादि में विश्वास करती थी। श्रमण परम्परा में यज्ञ, योगादि कर्मकाण्ड के बजाय आत्मविद्या को महिमा थी । आत्मचिंतन, संयम , समभाव, सत्य, अहिंसा, तप, दान उपवास, सन्यास आदि श्रमण संस्कृति की विशेषतायें है।"[1] पौरूषेय धर्म परम्परा में बौद्धों का आडम्बर और मिथ्याचार भी जनमानस को विक्षुब्ध किये थे। ब्राम्हण संस्कृतियों में वर्ण व्यवस्था का बोलबाला था। क्षत्रिय, वैश्य बाहुबल और धनबल के द्वारा प्रतिष्ठा बनाये थे

---

1. एकदा नैमिषारण्ये, अपनी बात, पृष्ठ – 13

किन्तु शुद्र और इतर जातियाँ अस्पृश्यता में पिस रही थीं। ब्राम्हणों में अनेक देवी देवताओं की पूजक जातियाँ धर्म के नाम पर मार काट मचा देती थी। शिव और विष्णु के पूजक परस्पर कट्टर शत्रु थे । शेष साम्राज्य के अन्तर्गत नाग जाति का आधिपत्य यज्ञ योगादि तंत्र, मंत्र आदि को प्रश्रय दे रहा है और दूसरी ओर विष्णु पूजक वैष्णवी परम्परा को लेकर चले हैं। राम और कृष्ण की पूजा अवतारवाद की पोषक है। बौद्ध और जैन धर्मो के अपने अलग सिद्धान्त है ।

विभिन्न धर्मो की संघर्षो स्थितियों में नैमिषारण्ये के महासत्र की पृष्ठभूमि भार्गव ऋषि सोमाहुति और कण्प वंश परम्परा के नारद देवव्रत के स्वप्नों के भाव जगत द्वारा तैयार की जाती है।

वैष्णव मुनि नारद की व्यापक चेतना और भार्गव व्यास को भाव निष्ठा और तपोबल ने देश के बिखराव को समन्वयकारिणी प्रतिभा से बाँधने का संकल्प लिया। सोमाहुति भार्गव अपने पिता के संकल्प पुत्र थे। "भार्गव वंश की व्यास परम्परा ने सैकड़ों वर्षों के कठिन श्रम से प्राचीन ऋषि ओर राजकुलों की वंशावलियों और उनके सहधर्मो एवं शुभचरणों का इतिहास पुराण संकलित किया था। इसके अतिरिक्त अठारह विधाओं, सात सिद्धान्तों, तीन सौ शास्त्रों और सत्तर महामंत्रों से सम्बन्धित ग्रन्थों का संग्रह मेरे पूज्य पुरखों ने किया था।"[1] सोमाहुति को उनके पिता ने एक लाख श्लोकों वाली महाभारत संहिता कंठस्थ करवाई थी – लिखित प्राते चूँकि उनके दुष्ट गुरू भाई बौद्ध स्थावर भृगुवत्स द्वारा नष्ट करवा दी गई थी, अतः वे गिरा गुरू नाग गणपति महाराज को महाभारत लिखवाते हैं। गिरा गुरू ने प्राचीन ब्राम्हणी लिपि का परिष्कार किया और उसे शिरोरेखा युक्त बनाया । देवकाव्य का निमित्त बनने के कारण लिपि देवनागरी कहलाइ ।

नागर जी ने महाभारत लिखने वाले व्यास जी की संज्ञा भार्गव सोमाहुति को दी है और गणेश जी की कल्पना गणपति महाराज में की गई है । वे विद्यावारिधि है,

किन्तु उनकी कतिपय विशिष्टतायें परम्परित "गणेश" को विशेषताओं से साम्य रखती है, यथा उनका स्थूल शरीर मोदकों का शौक । गणेश, विनायक को उन्होंने गणचिन्ह के प्रतीक रूप में लिया है । पौराणिक कल्पना का यह अभिनवकरण न केवल मोहक है, अपितु तथ्यों को वर्तमान तार्किक दृष्टि भी देता है । सूत, शौनकादि द्वारा नैमिषारण्ये में भागवत, पुराणों का पठन–पाठन करके जनमानस को भावात्मक एकता दी गई थी, इसका सूत्रान्दोलन भार्गव व्यास द्वारा किया गया । अस्थिर लोकमानस को जीने के लिये आस्था का चुम्बक चाहिये।[1] इस आस्था को प्रबुद्ध करने के लिये राजनैतिक और सामाजिक धर्म क्रान्ति आवश्यक हैं। राजनीति, अर्थनीति और सम्प्रदायों तथा जनजातियों की संगठन नीति लोकजीवन को शासित और प्रभावित करती है । इसलिये नारद की व्यापक दृष्टि और भार्गव व्यास की भावनिष्ठा लोकशासिका नीति–रीतियों को प्रभावित करना आवश्यक मानती है । इसी हेतु नैमिषारण्ये का सांस्कृतिक आन्दोलन राजनीतिक और सामाजिक गतिविधि से सम्बन्धित है। इसलिये यह सांस्कृतिक उपन्यास भी बन जाता है ।[2] नागर जी ने पौराणिक पात्रों की कल्पना भागवत पुराण के अनुसार की है । उपन्यास का आरम्भ एशिया भ्रमण करके आये हुए नारद के महत् उद्देश्य और देश की विकृत सामाजिक स्थिति के चित्रण से होता है।

इस उपन्यास के नारद कण्व वंश के देवव्रत हैं। जो माता की सर्पदंश से मृत्यु के बाद विमाता के कारण घर से भाग निकले और भार्गव सोमवर्मा व्यास के शिष्य बने तत्पश्चात अपने भ्रमण काल में एक वयोवृद्ध नारद की सेवा करने के बाद, नारद गद्दी के उत्तराधिकारी बने नारद उपाधि धारण की । नागर जी ने नारद के समस्त महत्व को आँकते हुए भी उनके माया भ्रम का रूप चित्रित किया है । श्री नरेन्द्र शर्मा ने लिखा है – "नारद परम्परा अनिकेनम् घुमक्कड़ों की है। इस परम्परा ने महाभारत के भौगोलिक

---

1. एकदा नैमिषारण्ये, पृष्ठ – 246

2. श्री नरेन्द्र शर्मा, एक सांस्कृतिक आन्दोलन की पृष्ठभूमि, एकदा नैमिषारण्ये,

ज्ञान को भले ही सम्पन्न किया हो, लेकिन नारायण–भक्त होते हुए भी यह परम्परा लोकसापेक्ष दृष्टि से गृहस्थ मान्य नहीं है । नागर जी ने नारदी परम्परा के भटकाव को स्पष्ट करने के लिये ही शायद मथुरा में और मथुरा–कांड के पश्चात् नारद की गत बनाना शुरू किया है। नारद बिखरने लगते है । ...... वे साम्राज्य संस्थापना के प्रचारक. छद्मश्रावक आत्म–प्रताड़क और अंततः हिमप्रस्थ के निर्गुण साधक बनते गये है। अनिकेतन की स्थिति क्या यही है ?[1] वन्दनीय प्रेरक. उपदेशक के रूप में नारद की छवि मध्य में कहीं खंडित होकर भी अक्षुण्ण रहती है , किन्तु अन्त में त्रिपुरा प्रकरण में नारद की गृहस्थ रूप भागवत में वर्णित एक युग के मायाभ्रम के समान ही प्रतीत होता है । वस्तुतः भार्गव सोमाहुति के साथ नैमिषारण्ये को वापिसी और अन्त में निवृत्ति मार्गी होना ही उनके गौरव के अनुरूप लगता है । ऋषि गृहस्थाश्रम को अपनाते है । सद्गृहस्थ ऋषि ही इस आश्रम के सात्विक रूप को प्रतिबिम्बित करते हैं। भार्गव सोमाहुति व्यास की व्यक्तिगत जीवनी इस उपन्यास की केन्द्रीभूत रसधारा है । काश्यपी कन्या इज्या का तेजस्वी स्वरूप उसके नाम को सार्थक करता है। नागर जी ने उसके स्वरूप निर्माण में उसके रूप सौन्दर्य के साथ ही इज्या शब्द को पाँचों धर्मो को साकार कर दिया है – "फूल छड़ी सी देह, गौरवर्ण आँखे, अग्नि और अमिय से भरी बड़ी–बड़ी कटोरियों जैसी, उनमें ज्योति रस बनकर छलक रही थी।"[2]

नागर जी आधुनिक युग के जागरूक साहित्यकार हैं । उन्होंने प्राचीन और आधुनिक संस्कृति मार्ग को पाटने का प्रयत्न किया है । उनके पौराणिक उपन्यासों के मूल में पौराणिक संस्कृति को आधुनिक दृष्टि से देखने की प्ररणा ही है । वे चमत्कारिक संयोजन को भी वैज्ञानिक चेतना से बाँधने का प्रयत्न करते हैं। श्री नरेन्द्र शर्मा ने लेखक की वैज्ञानिक

---

1. नरेन्द्र शर्मा , एक सांस्कृतिक आन्दोलन की पृष्ठभूमि, एकदा नैमिषारण्ये धर्मयुग, 11 जून, 1972 , पृष्ठ–21
2. एकदा नैमिषारण्ये, पृष्ठ – 30

शैली का विश्लेषण करते हुए कहा है – "चमत्कार का आवरण यथार्थ को ढकता है या यथार्थ को उद्घाटित करता है , आज भी यह प्रश्न मन में उठता है। नागर जी यथार्थ का पक्ष ग्रहण करते हैं। पुराण को नागर जी इतिहास के रूप में देखते हैं। नागर जी आधुनिक मनीषा के समर्थक हैं, जो पुराण ही नहीं, वेद में भी इतिहास देखती है, किन्तु वेद का मूल स्वर इति नहीं , नेति के पक्ष में है । निगम अर्थात् वेद परोक्षवाद का प्रतिपादक है। इतिहास नहीं वेद में नेतिहास है, आधुनिक परिभाषा का इतिहास शायद पुराणों में भी नहीं है जिन्हें आगम की संज्ञा दी जानी है ।

वेद अकाल निसर्ग को वाणी देते है । पुराणों में सर्ग, उपसर्ग, निसर्ग से कालक्रम में आगत और उसी में निर्गत है। पुराण सृष्टि प्रलय की कथाएँ कहते हैं। उन्हें वेद की मंत्र संहिता से अलग परिभाषित करने के लिये तंत्रग्रंथ भी कहा जाता है। उन्हें सूत्रात्मा द्वारा बुना हुआ ताना बाना तंत्र भी कहा जा सकता है । इस ताने बाने में इतिहास पुष्पों का आविष्कार आकाश कुसुम को खोजने जैसा भी हो सकता है ।"[1]

नैमिषारण्य में चौरासी हजार संतों के सम्मेलन में "भावात्मक एकता" का नारा बुलन्द किया गया । लेखक ने आधुनिक चिंतन दृष्टा के रूप में सांस्कृतिक– सामाजिक आन्दोलन को एक नये सिरे से आधुनिक परिवेश से नूतन चिंतना का स्पर्श देते हुए प्रस्तुत किया है । किन्तु एकदा नैमिषारण्ये के कथा फलक में उस आन्दोलन की पृष्ठभूमि अधिक उभर आई है अपेक्षा कृत सांस्कृतिक सम्मेलन की क्रियात्मकता की गतिविधि के उपन्यास समाप्ति पर पाठक को समस्त कार्यक्रमों की सूचना मिलती है और प्रथम, द्वितीय सत्र का परिचय भी प्राप्त होता है। भार्गव सोमाहुति अपने पुत्र प्रचेता को व्यास गद्दी सौंपकर आप्तकाम होते है ।

---

1. पं० नरेन्द्र शर्मा, धर्मयुग 11 जून, 1972, पृष्ठ –37

प्रचेता भगवत गीता की रचना से जनमानस को अमूल्य रत्न उपलब्ध कराते है, फिर भी राजनीतिक, सामाजिक व्यापकता को खोजने के लिए बार–बार नैमिषारण्ये में भटकना पड़ता है । किन्तु समग्रतः एक अछूते विषय को नवीन परिप्रेश्य में प्रस्तुत करने का प्रयत्न आधुनिक जीवन मूल्यों को नयी दृष्टि देता है । यह उपन्यास नागर जी के एक लम्बी अवधि के मानस मंथन का परिणाम है । नागर जी की अन्तर्दृष्टि अतीतोन्मुखी होकर पाठक को पूर्ण शक्तिभत्ता से पौराणिक युग में ले गई है। विभिन्न देशी विदेशी विद्वानों की पुस्तकों में उन्होंने विश्व के विभिन्न देशों की पुराण कथायें पढ़ी और मिश्र , असीरिया–बेबिलोनिया वाले खण्डों से अनेक भारतीय देवी, देवताओं और पुराण कथाओं के अन्तर्राष्ट्रीय नाते उजागर हो गये । व्यापक अध्ययन और गहन मानस मंथन ने विपुल संचित ज्ञानराशि का आगार उपन्यास रूप में प्रस्तुत कर दिया एक ओर यह ज्ञान राशि स्पृहणीय है दूसरी ओर दुरूह और कहीं कहीं अगम्य भी । नागर जी का कलाकार मानस समस्त कोश को उपन्यास रूप में ही प्रस्तुत करने को उत्सुक हुआ।

"एकदा नैमिषारण्ये" सम्पूर्ण आर्यावर्त के इतिहास में मानववाद की प्रतिष्ठा करता है । बसुधैव कुटुम्बकम् की भावना इस समग्र ऐतिहासिक चेतना का मूल स्वर है। यह मूल स्वर ही प्राचीनता को नवीनता का संदेश देता है । नागर जी ने प्राचीन मनीषा और आधुनिक मनीषा के मध्य सेतुबन्ध का प्रयास किया है । अनासत्त कर्म योग, आस्था, ज्ञान, भक्ति और कर्म का समन्वय पौराणिक लोकभूमि पर अवस्थित होकर भी चिरन्तन जनमानस के लिए कल्याणकारी है । जीवन मूल्य युगानुसार परिवर्तित होते हैं। किन्तु दृष्टि भेद समयानुसार अपना अवलम्ब खोज लेते हैं। व्यक्ति और समाज का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध जनहित के लिए हर युग में आवश्यक रहा है । चाहे शास्त्र सत्ता राजतांत्रिक हो अथवा प्रजातांत्रिक । आवश्यकता तो इस बात की है कि व्यक्ति की युक्ति समाज की शक्ति बनकर

मुखरित हो। जहाँ लोक की निष्ठा राष्ट्र परक हो सके, वही मानव धर्म–शाश्वत सत्य है। इसी मानव धर्म की भावात्मक एकता का प्रयत्न सुदूर अतीत में राजा अधिसीम कृष्ण के समय में नैमिष में आयोजित प्रथम महासत्र में "अवतारवाद" की स्थापना द्वारा किया गया था– पश्चात् भागवत, पुराणों के माध्यम से व्यास और नारद की प्रेरणा से गुप्त काल में भक्ति आन्दोलन चला । प्रकारान्तर से उसी मूल भावना की आवश्यकता चिरन्तन सत्य को उजागर करने की प्रेरणा बने , यही इस उपन्यास का उद्देश्य है और सार्थकता है । पं0 नरेन्द्र शर्मा ने इस सार्थकता को वैज्ञानिक तर्क देते हुए कहा है – 'पौराणिक दृष्टि सम्भवतः सदा स्वच्छ नहीं रही । इसलिए आगम ग्रन्थों में स्वामी दयानन्द सरस्वती की आस्था नहीं थी। वे तथाकथित इतिहास, रामायण और महाभारत को भी प्रमाण ग्रन्थ नहीं मानते थे। उन्हें श्रुति और स्मृति ही मान्य है।

"एकदा नैमिषारण्ये" लेखक के परिपक्व प्रबुद्ध मानस मंथन का अमूल्य रत्न है। इसकी कथा–कांति में जो भास्वरता है, वह जीवन के सांस्कृतिक पहलू को उजागर करती है। उपन्यास में संस्कृति के मनके पिरोना आसान हो सकता है । किन्तु संस्कृति के मनकों से रोचक, किन्तु आधुनिक संदर्भ–संकेतों की औपन्यासिक– माला कोई प्रबुद्ध चेता और संस्कृत कलाकार ही गूँथ सकता है ।

'**मानस का हंस**' नागर जी की परिष्कृत एवं ख्यातिलब्ध रचना है। गोस्वामी तुलसीदास की प्रामाणिक जीवनी को आधार बनाकर लिखा गया यह महाकाव्य उपन्यास है । तुलसीदास बिखरती हुई संस्कृति और आस्था को समेटने वाले महान मानव के रूप में अमर हैं अतः उनके मध्यकालीन स्वरूप काण सामंजस्य वर्तमान चेतना में बिठाने के लिय नागर जी ने तुलसीदास के समाण्जसुधारक रूप के साथ–साथ "ड्रामा प्रोड्यूसर" और "कथावाचक" का रूप भी दर्शाया है । नागर जी ने काव्यात्मक और कलात्मक शिल्प सौष्ठव द्वारा उसी दार्शनिक व्याख्या को कल्पना के रंगों से उपन्यास में बांधा है ।

'खंजन नयन' महाकवि सूरदास जी के जीवनवृत्त पर आधारित सांस्कृतिक उपन्यास है । खंजन नयन के सूरदास पारिस्थितियों के थपेड़ों से परिचालित , मानवीय सबलताओं और दुर्बलताओं से युक्त संवेदनशील मानव है। इस उपन्यास में सच्चे बीतरागी भक्त के रूप में, सूरदास हमारे सामने आते है । नागर जी ने सूरदास के व्यक्तित्व को कवि की अपेक्षा एक संवेदनशील संयमी भक्त के रूप में अंकित किया है ।

सामाजिक व्यवस्था का आधार

नागर जी के अन्य उपन्यासों की भांति एकदा नैमिषारण्ये की कथा के पीछे तत्कालीन समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, अव्यवस्था है। तत्कालीन समाज में देश की अखण्डता, छोटे-छोटे राज्यों में बँटकर नष्ट हो चुकी थी। व्यवस्था के नाम पर सर्वत्र लूट-खसोट का बोलबाला था। व्यक्तिगत स्वार्थों से पीड़ित राजे-महाराजे परस्पर संघर्षरत थे। वातावरण में सर्वत्र युद्ध की काली घटा घिरी हुई थी । इन सामाजिक अव्यवस्थाओं को चित्रित कर नागर जी ने एकदा नैमिषारण्ये में, सोमाहुति भार्गव के द्वारा भावात्मक और सांस्कृतिक एकता का शंखनाद करवाते है । तत्कालीन भारतीय समाज में नानाविध धर्म सम्प्रदायों वैदिक-अवैदिक, जैन-बौद्ध, वैष्णव-शैव-कर्मकाण्डवाद, उपासनावाद आदि का समग्र समन्वय नैमिषारण्य में सम्भव होता है । इन मतवादों के पारस्परिक मतभेद को उपन्यास के ही पात्र नारदमुनि ने एक विनोदी कथावृत्त के माध्यम से समाप्त करने का प्रयत्न करते हैं। उनका कहना था- प्राचीनता में चमत्कार भरने से आत्मविश्वास बढ़ेगा। देव ऋषि पितृ आदिकों के क्रिया कलापों को अलौकिक रूप से ही जनमानस में प्रतिष्ठित कीजिये । ..... दूध पानी के समान मिले हुए इन बहुदेशीय संस्कारासें के समाज को बाँधने के लिए कथाओं में उक्ति - चमत्कार लाना नितान्त आवश्यक है । पूर्वजों के अलौकिक वर्णनों से ही लोकमानस में श्रद्धा प्रतिष्ठित होगी ।"[1]

---

1. एकदा नैमिषारण्ये, पृष्ठ- 106, 107

प्रस्तुत उपन्यास इन्हीं वैचारिक हलचलों से उपजी कल्पनाओं का कथा समुच्चय है। नागर जी ने भी अपना मत स्पष्ट करते हुए लिखा है कि मुझे "भारशिवों और वाकाटकों के शासनकाल में एक महान सांस्कृतिक, सामाजिक आन्दोलन चलाये जाने की बात पढ़कर नैमिषारण्य के चौरासी हजार सन्तों वाले मेले की याद आई। सोचा, हो न हो यह मेला इसी समय जुड़ा होगा। बात को ऐतिहासिकता का सहारा मिला, तो वह क्रमशः जोर पकड़ती रही । .... "विष्णु पुराण" का भारतगीत- गाथन्ति देवाः किल गीतकानि , धन्यास्तुये भारतभूमि भागे" - पढ़कर तो मेरी यह धारणा पक्की हो गयी कि चौरासी हजार सन्तों का पौराणिक सेमिनार को धार्मिक तमाशा या गण नहीं है , उसके पीछे राष्ट्रीय महत्व का कुछ इतिहास भी है ।"[1] तत्कालीन समाज की अस्थिरता को दूर करने के लिए ही, नैमिषारण्य के धर्म सम्मेलन में सूतशौनकादि ऋषियों ने विभिन्न पुराणों का पठन- पाठन कर जनमानस को भावात्मक एकता के सूत्र में आबद्ध करने का प्रयास किया । अस्थिर लोकमानस को जीने के लिये राजनीतिक और सामाजिक धर्म क्रान्ति आवश्यक है। राजनीति, अर्थनीति और सम्प्रदायों तथा जन जातियों की संगठन-नीति लोक जीवन को शासित और प्रभावित करती है । इसलिए नारद की व्यापक दृष्टि और भार्गव व्यास की भावनिष्ठा लोकोपासिका नीति, रीतियों को प्रभावित करना आवश्यक मानती है। नैमिषारण्य का सांस्कृतिक आन्दोलन राजनीति और सामाजिक गतिविधि से सम्बन्धित है ।"[2]

तत्कालीन समाज विघटन और कलह के साथ ही कर्म-चेतना शून्य और आर्थिक दृष्टि से विपन्न हो गया था । "हमारा देश इस समय विन्न है विपन्नावस्था का वैराग्य पराजय से उत्पन्न होता है । वह हमें कर्म से दूर ले जाकर कायर बनाता है।

---

1. एकदा नैमिषारण्ये, अपनी बात, पृष्ठ-8

2. नरेन्द्र शर्मा- एक सांस्कृतिक आन्दोलन की पृष्ठभूमि एकदा नैमिषारण्ये, शीर्षक लेख, धर्मयुग 11 जून, 1972 , पृष्ठ-21

और कायर के पास भला ब्रम्ह कैसे आएगा, तुम्हीं कहो? इस समय हमारे देश को कर्म और धन की सम्पन्नता, संगठन की एकसूत्रता तथा ज्ञान, विवेक और संयम की महाशक्ति चाहिए।"[1] इन सारी परिस्थितियों के अतिरिक्त समाज में कुछ ऐसी कमी थी, जो किसी भी राष्ट्र को कमजोर बनाती है ।

नागर जी द्वारा रचित 'मानस का हंस' एक प्रौढ़ एवं परिष्कृत रचना है । एक ऐतिहासिक सांस्कृतिक धरातल पर अवस्थित भक्त मनीषी का जीवन वृत्त अंकित करना नागर जी के वैज्ञानिक मानस की अभिव्यक्ति है । नागर जी यथार्थवादी और सम्पूर्ण आधुनिकता बोध के साथ–साथ वे मानवता में अखंड आस्था के समर्थक भी है । मानस का हंस में नागर जी ने तत्कालीन समाज को उसकी विविधता में चित्रित किया है ।

'खंजन नयन' की ऐतिहासिक कथानक में तत्कीन समाज में तथा मुसलमान शासकों द्वारा किये गये अत्याचार को नागर जी ने चित्रित किया है । खंजन नयन में नागर जी ने उस सम्पूर्ण समाज को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करने का यत्न किया है , जो मध्यकालीन कवियों के समय में था। सूर स्वामी के जीवन वृत्त के माध्यम से ही नागर जी ने उस काल की सम्पूर्ण व्यवस्था को चित्रित किया है ।

वर्णव्यवस्था

एकदा नैमिषारण्ये उपन्यास में चित्रित समाज में कई रूढ़ियाँ व्याप्त थी, जिनमें सबसे प्रमुख जातिभेद की रूढ़ि थी। प्राचीन काल से ही हिन्दू समाज के संगठन का आधार वर्णव्यवस्था ही रही है । वर्ण जन्मता है अथवा कर्मणा ऐसा विवाद आम जनता में बहस का विषय बन चुका था। एकदा नैमिषारण्ये में नागर जी ने वर्णव्यवस्था तथा जाति विषयक मूल्यों को अभिव्यक्त किया है । वर्ण–व्यवस्था के सम्बन्ध में नागर जी की अपनी मूल्य

---

1. एकदा नैमिषारण्ये, पृष्ठ 395

दृष्टि है । वे वर्ण को जन्मना न मानते हुए कर्मणा और जीवन दृष्टि से सम्बद्ध मानते है प्रस्तुत उपन्यास में उन्होंने यह चित्रित किया है कि चन्द्रगुप्त के शासनकाल तक आते–आते हमारी समाज व्यवस्था में अनेक जड़ मूल्यपनप गये थे, जो भारत की सामाजिक व्यवस्था को खोखला बना रहे थे। उन जड़ मूल्यों में जाति और वर्ण–व्यवस्था प्रमुख थी। ये जड़ मूल्य आज तक समाज के विकास में बाधक रहे है । नागर जी ने जाति तथा वर्णव्यवस्था सम्बन्धी मौलिक प्रश्नों को इस उपन्यास में उठाया है । भार्गव से गणपति पूँछता है – "ब्राम्हण मैं भी ब्राम्हण कुल में जन्मा हूँ, परन्तु सच पूँछिए तो ब्राम्हण है कौन । क्या यह जीव, जो हमारी छाया में रम रहा है, वह ब्राम्हण है । " भार्गव गणपति के इस प्रश्न का समाधान प्रस्तुत करते है – "नही" । जन्म जन्मान्तरों में यह जीव तो कीट–पतंग, सिंह, खान, चाण्डाल, वैश्य, क्षत्रियादि अनेक छायारूपों में विचरता है, इसलिए वह ब्राम्हण नहीं हो सकता ।"[1]

नागर जी ब्राम्हण को ज्ञान, कर्म तथा धर्म से परे उच्चासन पर प्रतिष्ठित करते हैं, किन्तु वर्ण तथा जाति व्यवस्था में जिसे ब्राम्हण कहा जाता है उसे वे ब्राम्हण मानने के लिये तैयार नहीं । सोमाहुति भार्गव के माध्यम से नागर जी ब्राम्हण को परिभाषित करते हुए कहते हैं – ज्ञान, कर्म, धर्म को भी मैं ब्राम्हण नहीं मानता। ज्ञान और धर्म अपने पूर्व कर्मानुसार सभी को प्राप्त हो सकता है । क्षत्रियों में भी अनेक परम ज्ञानी महापुरूष हुए है । दान धर्मशीलता वैश्यों और शुद्रो में भी प्रायः देखने को मिल ही जाती है । अतएव जीव, देह, जाति, धर्म ज्ञान आदि का दम्भ नहीं कहा जा सकता । ब्राम्हण मनुष्य की वह दृष्टि है, जो काया और मानवी–चेतना के विभिन्न भेदों की दीवार हआकर विशुद्ध सतय को देखती है ।"

---

1. एकदा नैमिषारण्ये, पृष्ठ – 252

नागर जी का यह विश्वास है कि जातीय विधान सामाजिक विकृतियों का परिणाम है । प्राचीन भारतीय जीवन इस प्रकार के संकुचित दृष्टिकोण से मुक्त रहा होगा– भला आदि कवि के वंशज को अस्पृश्य बनाने वाला नियम विधान इस देश में कौन बना सकता है। महादाश्चर्य, श्रीराम के अनन्य यशोगायक आदिकवि के वंशज को अस्पृश्य माना जाए।"[1]

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन समाज अनेक जातियों में विभाजित था और इस विभाजन से ही समाज में बिखराव आ रहा था। सोमाहुति का कहना था– "अनेकता निःसन्देह माननीय है, किन्तु अनेकता में एकता के दर्शन करने वाला ही श्रेष्ठ श्रद्धावान होता है। आज फिर श्रद्धा के इस बीहड़ अंधेरे भरे जंगल को महद भावयुक्त श्रम से रम्य उपवन बनाने का दिन आया है । हम सभी को अपने और लोक कल्याण के लिए इस समय इस कार्य में लगना ही चाहिये ।"[2] इस प्रकार नागर जी सोमाहुति के माध्यम से भारत में व्याप्त इस जाति भेद को समाप्त कर नाना प्रकार की समन्वयात्मक शक्तियों को एकनिष्ठ बनाना चाहते है और इसी एकनिष्ठता के लिए युगों से पददलित और शक्ति विश्रृंखलित भारत भूमि की युक्ति और उसके महान व्यक्तित्व की पुनर्प्रतिष्ठा के लिए ही सोमाहुति भार्गव ने नैमिषारण्य में महासत्र का आयोजन किया और सांस्कृतिक एकता की पताका फहरायी ।

'मानस का हंस' में वह समस्त समाज चित्रित है जो तुलसीदास की रचनाओं का स्रोत है। तुलसीदास के रचना संसार के समानान्तर जो जीवन और जगत मानस का हंस में रचा गया है, वह पूर्ण विश्वसनीय, सहज एवं प्रमाणपुष्ट है। नागर जी यह मानकर चलते है कि तुलसीदास ने इसी जीवन और जगत के आधार पर रामकथा को चित्रित किया

---

1. एकदा नैमिषारण्ये, पृष्ठ– 96

2. एकदा नैमिषारण्ये , पृष्ठ – 427

होगा। उसी तरह नागर जी ने भी अपने जीवन और जगत के अनुभव के आधार पर तुलसी को चित्रित और कल्पित किया है। नागर जी के तुलसीदास हिन्दू है, हिन्दुओं में भी ब्राम्हण और वह भी वर्णाश्रमधर्मी। किन्तु मुसलमान को लेकर उनके मन में अन्यथा भाव नहीं उत्पन्न होता। अपनी भावात्मक अभिव्यक्तियों में तो हिन्दू और मुसलमान के एकत्व की बात सदैव करते हैं, साथ ही व्यवहारिक जीवन में भी बकरीदी काका उनके अत्यन्त मुँह लगे और आत्मीय व्यक्ति है । उपन्यास में वर्णित यह प्रसंग भारत में हिन्दू– मुस्लिम ऐक्ट की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। तुलसीदास की कृतियों में जो सामाजिक चिन्ता दिखाई देती है उसे वाह्य साक्ष्य से पुष्ट करते हुए, नागर जी ने इस उपन्यास का ऐसा कथात्मक ढाँचा निर्मित किया है जिसमें मध्यकालीन सामाजिक विसंगतियाँ यथार्थ रूप में अभिव्यक्त है। नागर जी के कथानायक, तुलसीदास समाज में निर्मम विकृतियों का सामना करते हैं। मानस का हंस में अनेक सामाजिक तथ्य है जो एक अतीत की रूपरेखा को प्रस्तुत करते है।

नागर जी के 'मानस का हंस' में भी वर्णाश्रम एवं जाति व्यवस्था विषयक मूल्यों की अभिव्यक्ति हुई है।[1] तुलसीदास जनमानस के कवि थे। इसीलिये उन्होंने अपने काव्य को जनभाषा अवधी में लिखा तथा ब्राम्हण होकर वर्णाश्रम धर्म की महत्ता को स्वीकारते हुए भी प्रत्येक वर्ग के साथ सहानुभूति दी ।

नागर जी ने तुलसी के माध्यम से अपने वर्ण एवं जाति विषयक मूल्य बोध को स्पष्ट किया है । नागर जी ने उपन्यास के आमुख में तुलसी के जनवादी दृष्टिकोण को स्पष्ट किया है । "रूढ़िपंथियों से तीव्र विरोध पाकर यदि ईसा आर्तजन समुदाय को संगठित करके अपने हक की आवाज बुलन्द कर सकते थे तो तुलसी भी कर सकता था। समाज संगठन कर्ता की हैसियत से सभी को कुछ न कुछ व्यावहारिक समझौते भी करने पड़ते है, तुलसी और हमारे समाज में गाँधी जी ने भी वर्णाश्रमियों से कुछ समझौतें किए, पर उनके

---

1. हेमराज कौशिक : अमृतलाल नागर के उपन्यास (नये मूल्यों की खोज) प्रकाशन संस्थान दिल्ली प्रथम संस्करण, 1984

बावजूद उनका जनवादी दृष्टिकोण स्पष्ट है। तुलसी ने वर्णाश्रम धर्म का पोषण भले ही किया हो पर संस्कारहीन, कुकर्मी, ब्राम्हण , क्षत्रिय आदि को लताड़ने में वे किसी से पीछे नहीं रहे । तुलसी का जीवन संघर्ष विद्रोह और समर्पण भरा है । इस दृष्टि से वह अब भी प्रेरणादायक है ।"[1]

नागर जी ने "मानस का हंस" के कथानायक तुलसी के माध्यम से अपने वर्ण एवं जातिविषयक मूल्य बोध को स्पष्ट किया है । तुलसी के संघर्षमय जीवन का प्रारम्भ भी संघर्षमयी परिस्थितियों से होता है । अमुक्त नक्षत्र में जन्मा शिशु रामबोला माता–पिता के लिए कालरूप होता है । तुलसी के पिता आत्माराम मुनिया कहारिन के माध्यम से उसे भिक्षुणी सास पार्वती के यहाँ पहुँचा देते है । शैशवावस्था से ही उपेक्षित परित्यक्त रामबोला भिक्षावृत्ति से निर्वाह करने लगता है। उसका स्वाभिमान भिक्षा मांगना बुरा मानता है। सबसे अधिक ठेस रामबोला को उस समय लगती थी । – "मेरे ब्राम्हण संतान होने और मेरे दुर्भाग्य की बातें सुनाकर वे मेरे प्रति सहानुभूति जगाया करती थी। बड़ी कठिन तपस्या ही यह।"[2]

नागर जी ने एक अन्य स्थल पर तुलसी की सेवाभक्ति तथा जाति वर्ण व्यवस्था सम्बन्धी दृष्टि को व्यक्त किया है । "हिन्दू, मुसलमान, अमीर–गरीब में कोई भेद नहीं, सबकी जात और वर्ग एक है , वे आर्तजन है, उनके तनमन नाना बाधाओं से पीड़ित होकर घबरा उठे है, उन्हें सहारा और प्रेम चाहिये। तुलसी, राम का खास गुलाम अथक भाव से रामजनों की सेवा करता रहा ।"[3] तुलसी के माध्यम से नागर जी ने जाति एवं वर्ण विषयक मूल्यों की नवीन सीमाओं को उद्‌घाटित किया है । तुलसी ने यह कार्य तद्‌युगीन समाज एवं धर्म के विरूद्ध किया तथा अकाट्य तर्कों द्वारा इन मूल्यों का समर्थन किया। तुलसी जाति

---

1. मानस का हंस , आमुख, पृष्ठ – 8
2. मानस का हंस, पृष्ठ – 51
3. मानस का हंस, पृष्ठ– 30

एवं वर्णव्यवस्था के सम्बन्ध में कहते है – "जाति पांति , वर्ण–वर्ग आदि सब कुछ अपनी जगह पर ठीक है, पर एक जगह मनुष्य केवल मनुष्य होता है, घर–घर में एक ही राम रमते हैं।"[1] एक अन्य स्थल पर जाति पांति के सम्बन्ध में कहते है – " न तो मेरी कोई जाति –पांति है और मैं किसी की जाति–पांति से प्रयोजन रखना चाहता हूँ।"[2]

"खंजन नयन" भी मानस का हंस की ही परम्परा का निर्वाह करने वाला उपन्यास है । "मानस का हंस" में तुलसी दास की जीवन गाथा है तो 'खंजन नयन' में महाकवि सूरदास जी का जीवन वृत्त । जीवन वृत्त होने के साथ ही साथ खंजन नयन ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर रचित उपन्यास है।' खंजन नयन' की ऐतिहासिक कथा के पीछे तत्कालीन समाज में व्याप्त कुप्रथाओं और मुसलमान शासकों द्वारा किये गये अत्याचार को नागर जी ने अत्यधिक महत्व दिया है। "खंजन नयन में नागर जी ने उस सम्पूर्ण समाज को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करने की भरपूर कोशिश की है, जैसे मध्यकालीन कवियों को भोगना पड़ा था। सूर स्वामी के जीवनवृत्त के माध्यम से ही नागर ने उस काल की सम्पूर्ण व्यवस्था को देखा है। 'खंजन नयन' के सूरदास परिस्थितियों के थपेड़ों से परिचालित , मानवीय सबलताओं और दुर्बलताओं से युक्त संवेदनशील मानव है। इस उपन्यास में सूरदास सच्चे बीतरागी भक्त के रूप में हमारे सामने आते है। नागर जी ने सूरदास के व्यक्तित्व को कवि की अपेक्षा एक संवेदनशील संयमी भक्त के रूप में अंकित किया है । सूर के काव्य में उपलब्ध अनुभव सम्पन्नता तथा अनुभूति प्रवणता के स्रोतों की ओर संकेत करते हुए नागर जी ने लिखा है, कभी बाहर की दुनियां में कानों में पड़े बच्चों का खेल सूर के मनो जगत में दृश्यमान होकर कृष्ण–लीलाओं का रूप धारण कर लेते हैं ।

"खंजन नयन" में भी नागर जी ने जाति और वर्ण व्यवस्था सम्बन्धी मूल्यों

---

1. मानस का हंस, पृष्ठ– 325
2. मानस का हंस, पृष्ठ– 337

के परिवर्तन को दिखाया है , वर्ण-व्यवस्था के सम्बन्धी मूल्यों के परिवर्तन को दिखाया है, वर्ण-व्यवस्था के सम्बन्ध में स्वामी जी सूर से कहते हैं – "वर्ण चेतना अब निर्लज्ज बनकर पछाड़े खाने का खोखला अभिनय करती है ।"[1]

सीताराम एक अन्य स्थल पर शुद्र कही जाने वाली जातियों के सम्बन्ध में कहता है – "धन्य हो कालूराम इस कलिकाल में शुद्र जातियों में जितनी भावबुद्धि है उतनी उच्च वर्णों में नहीं रही ।"[2]

इस वर्ण और जाति व्यवस्था विषयक मूल्य विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि नागर जी वर्णों के अस्तित्व को जन्म के आधार पर न स्वीकार कर कर्म के आधार पर मानते है । उनकी दृष्टि में ऐसा दृष्टिकोण राष्ट्र की उन्नति में बाधक और द्योतक है । जातीय विधान नाना सामाजिक विकृतियों को जन्म देता है, इसलिए नागर जी वर्ण और जाति व्यवस्था विषयक प्राचीन धारणा का प्रतिकार करते हैं। इनकी दृष्टि में वह ब्राम्हण जो पुरानी सामाजिक व्यवस्था में सर्वोच्च माना जाता था, निन्द्य है, जो आचरणहीन और विवेकहीन हो । "एकदा नैमिषारण्ये" और मानस का हंस में लेखक ने वर्णाश्रम व्यवस्था के उच्च पदपर आसीन ब्राम्हण को नवीन संदर्भो में व्याख्यायित किया है तथा ब्राम्हण सम्बन्धी प्राचीन दृष्टिकोण का खण्डन किया है। इस प्रकार नागर जी ने वर्ण और जाति विषयक नवीन मूल्यों की प्रतिष्ठा की है ।

तत्कालीन समाज

तत्कालीन समाज जिस प्रकार अनेक वर्णो में विभाजित था, वैसे ही उस समाज में सभी वर्गों के परिधान भी अलग-अलग थे । सभी वर्णों के लिए अलग अलग

---

1. खंजन नयन, पृष्ठ – 102
2. खंजन नयन, पृष्ठ – 13

रंगों के वस्त्र निर्धारित थे। ब्राम्हण गृहस्थ श्वेत वस्त्र, राजन्य वर्गो के लोग नीले, सूतजन पीले तथा हल्के लाल रंग के परिधान पहने थे।"[1] समाज के सभी वर्णों के लोग आभूषणों का भी प्रयोग करते थे। "केयूर (बाजूबन्द), कुण्डल, मालाओं और मुंदरियों से अलंकृत उनकी धातुओं सोने-चाँदी -राँगें आदि से अपनी-अपनी हैसियतें झलका रहे थे। साथ ही चंदन, तुंग तगर, नागकेश्वर कृष्ण अगरू" आदि भी लोगों के सौन्दर्य प्रसाधन के काम आते थे।"[2] समाज के सभी वर्गों के लोग अपनी-अपनी स्थिति के अनुरूप अपने वेश और आभूषणों के लिए सतर्क रहते थे ।

'मानस का हंस' में तत्कालीन समाज भ्रष्टाचार , अराजकता, लूटपाट, हत्या से जूझ रहा है । कोई भी स्त्री अमानुषिक व्यवहार का शिकार हो सकती थी। 'मानस का हंस' में ऐसी घटनायें कई जगहों पर हमें मिलती है । अयोध्या से काशी यात्रा के समय तुलसी बाबा को रास्ते में एक स्थान पर कुछ शव मिलते है ।" कुछ और सिपाही भी रहे होंगे जो बदला लेकर चले गए। लेकिन उनकी स्वामी-भक्ति देखों, अपने सरदार तक का शव ठिकाने नहीं लगा गए। वस्त्र मूल्यवान है किन्तु रत्नालंकार एक भी नहीं दिखाई दे रहे हैं। दृष्टि उन्हें लेकर आगे बढ़ गए । वाह रे स्वार्थी दुनिया ..... ।" उपन्यास में तुलसी बाबा के शब्दों कलियुग को परिभाषित करते हुए कहा गया है - "स्त्री और धन की लूअ का नाम ही कलिकाल है। सारे पाप यही से आरम्भ होते हैं।"[3] इन्हीं दिनों अयोध्या से लेकर काशी तक भीषण अकाल पड़ा था। सामान्य जन रोटी रोटी के लिए मोहताज हो गया था। ऐसी स्थिति में समाज में व्याप्त ऊँच-नीच का भेदाभेद समाप्त हो गया था। प्रस्तुत उपन्यास में देश की आर्थिक और राजनीतिक परिदृश्य का चित्रण मिलता है । अकाल की विषम परिस्थितियों में स्त्री व्यापार समाज के दुष्ट लोगों की मुख्य पेशा बन गया था। "दो

---

1. एकदा नैमिषारण्ये, पृष्ठ - 43
2. एकदा नैमिषारण्ये , पृष्ठ - 43
3. मानस का हंस, पृष्ठ - 101

तगड़े लठैत मुच्छाड़िये जवान दस–पंद्रह फटेहाल जर्जर किन्तु सलोनी नाक नक्शोंवाली जवान लड़कियों को लिए हुए एक पीपल के तले बैठा है । एक सफेदपोश अधेड़ उन लड़कियों का निरीक्षण कर रहा है । किसी की ठोढ़ी ऊपर उठाकर चेहरा देखता है, किसी के गाल पर चुटकी काटता है। उसकी सुरमीली आँखें किसी न किसी को देख–देखकर भूखे–भेड़ियें की जीभ जैसी निकाल पड़ती है । वह एक लठैत से कहता हे – "झूब्बूलाल माल बहुत उम्दा नहीं लाये । ये सबकी सब ससुरियां बस चौका – बरतन और झाड़– बुहारू करने लायक ही है । इन्हें कोई नहीं खरीदेगा ।"[1]

तत्कालीन समाज में सर्वत्र लूट–खसोट तथा धर्म के नाम पर बदले की भावना व्याप्त थी। सिकन्दर सुल्तान के शासनकाल में कितने ही हिन्दू परिवार जबरन मुसलमान बना दिये जाते थे। "न इज्जत बची न लक्ष्मी। गांव के लोग सामना करने आए तो मारकाट के शोर से पड़ोसी गांव की आग शहर में भी फैल गई । धर्म के नाम पर बदला लेने के लिए स्त्री और धन की लूट कुछ लोगों के लिये पुण्य कार्य बन गई ।"[2] समाज में सर्वत्र ब्राम्हण और गौ का अपमान हो रहा था " बहुत से घाटों पर साधु और गौमाता के कटे सिर टंगे हैं।"[3] समाज में व्याप्त कुसंस्कार धीरे–धीरे घरों को भी बिखरा रहे थे, जिससे लोगों की मानसिक शान्ति नष्ट हो रही थी, आपसी भाईचारे का सम्बन्ध भी समाप्त हो रहा था। हमारे समाज में यह व्यर्थ की अकड़–फूँ बहुत है। घृणा और द्वेष बहुतों को धर्म परिवर्तन करने को प्रेरित करता है ।

✓ 'खंजन नयन' में नागर जी ने जातिवाद पर केवल चोट ही नहीं की है, बल्कि उस नवीन समाज की संरचना का मार्ग भी दिखाया है जो आज की आवश्यकता है। तत्कालीन समाज की विसंगतियाँ, कुरीतियाँ और गिरावट की झलकियाँ पाठक को समसामयिक सामाजिक स्थितियों को समझने में बहुत सहायक होती है । सारा संत साहित्य जातिवाद को एक जबरदस्त

---

1. मानस का हंस, पृष्ठ–336

चुनौती देता है । ऐसे संत सूर बाबा के माध्यम से "नागर जी" अपने मन की बात कहने में कभी चूकते नहीं– "धन्य हो कालूराम इस कलीकल में शूद्र जातियों में जितनी भावबुद्धि है, उतनी उच्चवर्णो में नहीं रही ।"[1] नागर जी ने इस उपन्यास में जाति को बड़ा नहीं माना बल्कि उच्चतम भावनाओं को स्वीकारोक्ति दी है । इसी उपन्यास में वर्णित "दिलखश शाह प्रसंग हिन्दू–मुस्लिम–ऐक्य की भावना से युक्त है । प्रेम और ज्ञान के मिलन का संकेत स्थल है भक्ति । यह अनुभूति हिन्दू धर्म और इस्लाम के बीच किसी दूरी को स्वीकार नहीं करती । भक्ति को मन्दाकिनी में स्नान करने का सबका समान अधिकार है , विभिन्न धर्म सम्प्रदायों की जड़ में यही सच्ची भावात्मक एकता है। जो आज की दृष्टि से भी मूल्यवान है।

'एकदा नैमिषारण्ये' उपन्यास में वस्तुतः आधुनिक युग की समस्याओं को पौराणिक कथा पटल के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है । नागर जी ने प्राचीन और आधुनिक मनीषा के मध्य सेतुबन्ध का प्रयास किया है । व्यक्ति और समाज का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध जनहित के लिए हरयुग में आवश्यक रहा है । 'एकदा नैमिषारण्ये' लेखक के परिपक्व प्रबुद्ध मानस मंथन का अमूल्य रतन है । दूसरी कथा में जो भास्वरता है, वह जीवन के सांस्कृतिक पहलू को उजागर करता है।

'खंजन नयन' में नागर जी ने तत्कालीन वेश्या समाज को चित्रित किया है। वेश्या समाज की संस्कृति तथा उनके द्वारा लोगों के पथभ्रष्ट होने का चित्र नागर जी ने खंजन नयन में प्रस्तुत किया है । वेश्याओं के निवास के पास से गुजरते ही लग जाता है कि हम वेश्या हाट में आ गये है । "बोल पैरो की थाप, घुँघरू परवावज. आनन्द आ गया। लगा कि वेश्याओं की हाट में आ गए है । कोई कह रही थी, अरी बुग्गो अब तोरा पाशुपताचार्य

---

1. खंजन नयन, पृष्ठ – 13

नहीं आवता है का । कैसे आवै बिचारा, अपनी जूठी मदिरा पिलाय ...... पिलाय के भरी हाट में नचवाय दिया उसे । आधी शिखा काट के गिरौरखी लौ है कि दस दिनारै लाओं सुवरन की , छुड़ाय लै जाओं। हः हः हः । अरे इन गलियन में बड़े-बड़े सन्यासी , वेदज्ञ, बुद्ध, सरावगी क्रादी न जाने कौन कौन आय के अपना मुख काला नहीं करवाता है।"[1] इन प्रसंगों के माध्यम से नागर जी ने तत्कालीन समाज में व्याप्त सभी विसंगतियों को उनके यथार्थ रूप में प्रस्तुत करने की भरपूर कोशिश की है और सूर बाबा जैसे चरित्र के माध्यम से पतनोन्मुख समाज को सही दिशा प्रदान करने का प्रयास किया है।

अमृतलाल नागर हिन्दी के मूर्धन्य उपन्यासकार है । उनके मौलिक प्रेरणा, सूक्ष्य पर्यवेक्षण शक्ति, गहन आनुभूतिक धरातल, मानव मनोविश्लेषण की गंभीर पैठ और देशकालानुसार सामाजिक समस्याओं को चित्रित करने की विलक्षण प्रतिभा विद्यमान है । उन्होंने जीवन को भली-भांति देख सुनकर और गहरी संवेदना के धरातल पर प्रतिष्ठित कर उसका विधिवत् आंकलन किया है। जीवन की भावी संभावनाओं को दृष्टि में रखकर अपने प्रयोगों के माध्यम से नवीन मूल्यों की सृष्टि की है । उन्होंने स्वतंत्रता पूर्व के भारत को भी जिया है और उस समाज के बदलते हुए मूल्यों को सूक्ष्मता से देखा और परखा है । नागर जी ने अतीत और वर्तमान दोनों को ही अपने औपन्यासिक सृजन में समेटा है । नागर जी ने वर्ण व्यवस्था और जातिविधान के सम्बन्ध में अपनी धारणा इन पौराणिक और सांस्कृतिक उपन्यासों में व्यक्त किया है । वे वर्ण को जन्मना न मानते हुए कर्मणा मानते है । नागर जी ने जातिव्यवस्था का प्रतिकार किया है । सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में नागर जी का धार्मिक मूल्य बोध, ईश्वर विषयक मूल्य दृष्टि जीवन के प्रति आस्था जिजीविषा और मानवतावाद मानव जाति से प्रेम और मानव जाति की सेवा और हित को ही धर्म समझते है। वे मानव धर्म को महत्व देते है ।

---

1. खंजन नयन, पृष्ठ - 169

पौराणिक पृष्ठभूमि पर रचित "एकदा नैमिषारण्ये (1971) नागर जी की सांस्कृतिक चेतना का संदेशवाहक अभिसर्ग है। भारतीय संस्कृति में सन्निहित भावात्मक एकत्व और उसके लिये किये गये अविच्छिन्न प्रयासों ने हमारी राष्ट्रीय एकता को अक्षुण्ण रखा है। इस देश में विविध संस्कृतियों के संघर्ष–विघर्ष और सामंजस्य का क्रम अत्यन्त प्राचीनकाल से चलता रहा है। अतः तत्सम्बद्ध सूत्रों को लेकर आधुनिक संदर्भ में भावात्मक ऐक्यविधान की दृष्टि से नागर जी ने एकदा नैमिषंरण्ये की रचना की ।

"एकदा नैमिषारण्ये" ज्ञान, कर्म और भक्ति का वह संगम है, जहाँ नागर जी के चिन्तन की गरिमा और भावना के औदात्य की गंगा–जमुनी प्रवाहित है। यह उनके सांस्कृतिक चिंतन की भव्यता का विशाल प्रासाद है जिसमें ज्ञानविज्ञान , धर्म अध्यायत्म, समाज, सभ्यता , संस्कृति, कला, राजनीति आदि की बहुरंगी प्रकाश रश्मियाँ दीप्तिमान है। इन्हीं के मध्य सांस्कृतिक एवं भावात्मक एकता का स्वर मुखरित है।

'मानस का हंस' की एकात्मवादी सांस्कृतिक चेतना मध्ययुगीन समाज को मूर्तित तो करती ही है , वर्तमान युग संदर्भ में भी सर्वथा समीचीन और प्रासंगिक है । इस उपन्यास के नामकरण में प्रतीकात्मक शैली का प्रयोग किया गया है । मानसरूपी सरोवर में नीर–क्षीर विवेकी तुलसीदास रूपी हंस अपने गन्तव्य राम तक पहुँचना चाहता है। लहररूपी कठिनाइयाँ उनके मार्ग में बाधा बनकर उपस्थित होती है। वे उनसे जूझते हुए अपने अभीष्ट राम को प्राप्त कर लेता है। 'मानस का हंस' के तुलसीदास का महामनुजत्व सर्वोपरि होकर पग पग पर भास्वर है। यह नागर जी की समाजैतिहासिक यथार्थ मूलक दृष्टि और रचनाधर्मिता की अनुपम उपलब्धि है। एकदा नैमिषारण्ये के माध्यम से नागर जी ने जिस सांस्कृतिक जागरण का सिद्धान्त निरूपण किया है, वहीं मानस का हंस के नायक गोस्वामी तुलसीदास के व्यक्तित्व में रूपायित है।

संस्कृति शब्द मनुष्य की जीवनी शक्ति और राष्ट्र के वैभव को बढ़ाने की भावना से युक्त है । यदि वह कालचक्रवश घटके की परिस्थिति में आ भी जाता है तो भले

ही वहाँ तक आ जाय कि सब कुछ खंडहर हो जाय, फिर भी राष्ट्र का वैभव अपने खंडहर में बोलता रहता है । विगत वैभव राष्ट्र को सदा आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है। नागर जी ने जीवन के यथार्थ से गहरा साक्षात्कार किया और उसमें निहित जीवन दृष्टि को उभारते हुए सांस्कृतिक विरासत को प्रस्तुत किया है – "अति प्राचीन काल में किसी एक ही परम तपोनिष्ठ ज्ञानगुरू चेतन मानव–समूह ने सारी पृथ्वी के मानवों को सभ्यता के संस्कार दिये थे।"[1] ये संस्कार आधुनिक चेतना को परम्परा की समृद्धि तथा नव्यतम उपलब्धि प्रदान करते हैं। अनास्थाओं परप्रहार करते है और संतुलित समरस दृष्टि जीवन को द्वन्द्वरहित करती है। संस्कृति वाह्य संघर्षों से टकराती है, उसके मूल्य बिखरते है, किन्तु नागर जी ने कालातीत युग के व्यापक परिप्रेक्ष्य में प्रश्न और शंकाओं की अग्नि परीक्षा से गुजर कर अपनी आस्था को निखारा है, यथार्थ की विषमता विकृति को स्वीकार कर अथवा युग की विषाक्त समस्याओं का सामना करके उनकी अमृतमयी आस्था ने अपनी सुदृढ़ता की मोहर लगायी है।"[2]

यह नागर जी की समाजैतिहासिक यथार्थमूलक दृष्टि और रचनाधर्मिता की अनुपम उपलब्धि है । नागर जी ने अपने कथा साहित्य और व्यक्तित्व को अत्यन्त आन्तरिकता के साथ घुला मिलाकर प्रस्तुत किया है – "कविता और भक्ति की पंखुड़िया–दर–पंखुड़िया खिलती जाती है और इनकों समेटे हुए तुलसीदास का व्यक्तित्व जीवन की सम–विषम परिस्थितियों को झेलता हुआ रस खींचता रहता है । उनका व्यक्तित्व और कृतित्व निषेधवाद का जबरदस्त खंडन करता है। वे जीवनवादी कवि है। इनके राम लोकमंगल के विधायक है।"[3]

---

1. एकदा नैमिषारण्ये, पृष्ठ– 38
2. डॉ0 सत्यपाल चुघ, आस्था के प्रहरी, पृष्ठ – 135
3. आलोचना अंक 28, पृष्ठ – 74

पौराणिक ऐतिहासिक – सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर रचित "एकदा नैमिषारण्ये", "मानस का हंस" और "खंजन नयन" उपन्यास नागर जी की प्रौढ़ता के प्रतीक है । एकदा नैमिषारण्ये पौराणिक संदर्भों से युक्त ऐतिहासिक, सामाजिक और राजनीतिक पृष्ठभूमि पर आधारित होने के साथ ही भारतीय सांस्कृतिक, सभ्यता, राष्ट्रीय भावात्मकता एकता, सांस्कृतिक मूल्यों और नवजागरण का संदेशवाहक है। बहुविध घटना प्रसंग और दृश्य चित्रण मूलकथा के पूरक है। कथावस्तु की रोचकता, प्रवाहमयता और संवेद्यता उपन्यासकार की सर्जनात्मक प्रतिभा को उजागर करती है ।

कहानी का स्वरूप –

अभिव्यक्ति के अनेक प्रकारों में साहित्य का और साहित्य के अनेक प्रकारों में कहानी का महत्वपूर्ण स्थान है । साहित्य की विभिन्न विधाओं में कहानी ही एक ऐसी विधा है जिसका उदय मानवीय अभिव्यंजना के क्षेत्र में सर्वप्रथम हुआ । कहानी का सम्बन्ध भावभिव्यंजन से है – ऐसी भावाभिव्यंजन जो भावनाओं को प्रायः उसी रूप में, उसी तीव्रता के साथ उसी प्रभाव के साथ व्यक्ति तक प्रेषित कर सके, जिस रूप में उसका उदय रचनाकार के अन्तर्मन में हुआ। इसी रूप में कहा जा सकता है कि कहानी समस्त साहित्यिक विधाओं की जननी है । "कहानी ही वह मूल है जिसका वृक्षरूप साहित्य है और साहित्य की अन्य विधायें उसकी शाखा है, किन्तु जिस पकार वृक्ष जड़ का अंग नहीं माना जाता, बल्कि जड़ ही वृक्ष का अवयव मानी जाती है, उसी प्रकार कहानी भी साहित्य का अवयव मानी जाती है ... कहानी की स्थिति, सचमुच ही, उस माँ की तरह प्रतीत होती है जो एक से एक सुन्दर, योग्य और अपनी छाती के दूध से उनका पोषण करके परिवार की रचना करती है, पर बाद में उसी परिवार का एक अपेक्षाकृत कम महत्वपूर्ण सदस्य मानी जाने लगती है ।[1]

हिन्दी का प्रारम्भिक कथा साहित्य मूलतः भारतीय एवं पश्चिमी संस्कृतियों के संघर्ष में से उत्पन्न हुआ, जोकि उस युग का (उन्नीसवीं शताब्दी उत्तरार्ध एवं बीसवीं शताब्दी पूर्वार्ध) सर्वाधिक महत्वपूर्ण संघर्ष था । हिन्दी के प्रारम्भिक कथाओं विशेषतः श्रद्धराम फुल्लौरी, श्रीनिवास दास, रामजी दास वैश्य, वृजनन्दन सहाय आदि की मूल प्रेरणा भी इसी संघर्ष में से प्रादुर्भूत लगती है। भारतीय इतिहास के इस समय

---

1 डॉ0 सन्तबख्श सिंह : नयी कहानी, नये प्रश्न, साहित्यालोक, कानपुर, प्रथम संस्करण, 1981 पृष्ठ – 165

के स्वरूप देखने परखने से लगता है कि भारतीयता का यह संघर्ष निश्चय ही उस युग को देखते हुए अत्यन्त महत्वपूर्ण था। सामाजिक क्षेत्र में इसी संघर्ष की परिणति स्वरूप विभिन्न सामाजिक एवं धार्मिक आन्दोलनों- आर्य समाज, ब्रम्ह समाज, थियोसोफिकल सोसायटी आदि का जन्म हुआ । साहित्यिक क्षेत्र में हिन्दी के प्रारम्भिक लेखकों का रचनात्मक साहित्य प्रायः इसी प्रकार के आदर्शो का सृजनात्मक स्वरूप था।

हिन्दी कथा साहित्य में व्यक्ति पात्रों का उदय पशिचमी आन्दोलनों तथा मान्यताओं के प्रभाव द्वारा सामने आया । प्रेमचन्दोत्तर कथा लेखकों में जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द जोशी के अलावा यशपाल, भगवतीचरण वर्मा, उपेन्द्रनाथ अश्क, अमृतलाल नागर, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, विष्णु प्रभाकर इत्यादि का नाम उल्लेखनीय है । प्रेमचन्दोत्तर कथाकार अपनी बौद्धिक जागरूकता के कारण विश्व की नवीनतम उपलब्धियों तथा आवश्यकताओं के साथ जुड़ चुके थे। इस प्रकार इस युग में भारतीय जनता के बौद्धिक चेतना का सूत्रपात हो चुका था। इन कथाकारों के द्वारा प्रस्तुत किये गये विभिन्न राजनैतिक, मनोवैज्ञानिक सामाजिक ताथा आर्थिक आन्दोलनों के पशचिम के माध्यम से परवर्ती युग में इस बात की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी कि व्यक्ति को उसकी सम्पूर्णता के साथ चित्रित तथा मूल्यांकित किया जाय। हिन्दी का स्वातन्त्र्योत्तर कथा साहित्य इसी युगीन आवश्यकता की उपज है।

हिन्दी कहानी, विधा की दृष्टि से अत्यन्त आधुनिक है । "कहानी अपने पुराने रूप में उपन्यास की अग्रजा है और नये रूप में उसकी अनुजा । वृत्त या कथासाहित्य की वंशजा होने के कारण कहानी और उपन्यास दोनों में ही कई बातों की समानता है.... कहानी की एकतथ्यता ही उसका जीवन रस है और वही उसे उपन्यास से पृथक करता है ।"[1]

---

1 गुलाब रायः काव्य के रूप , पृष्ठ-125-216

"असल में तो एक कहानी से या पुस्तक से कुल मिलाकर एक प्रभाव पड़ना चाहिये। उस प्रभाव की एकता में नाना तत्वों की अनेकता तो रहेंगी ही । किन्तु उन तत्वों के नानात्व में रचना के श्रेय को भी नानाविध नहीं देखना होगा।"[1]

"कहानी का आधार अब घटना नहीं, अनुभूति है । आज लेखक केवल कोई रोचक दृश्य देखकर कहानी लिखने नहीं बैठ जाता । उसका उद्देश्य स्थूल सौन्दर्य नहीं है। वह तो कोई ऐसी प्रेरणा चाहता है, जिसमें सौन्दर्य की झलक हो, और इसके द्वारा वह पाठक की सुन्दर भावनाओं को स्पर्श कर सके।"[2]

प्रयोग की दृष्टि से जितनी अधिक सम्भावना कहानी विधा में है, उतनी साहित्य की अन्य विधाओं में नहीं मिलती । कहानी अभिव्यंजना की वह विधा है जिसके स्वरूप में अगणित विविधतायें समय-समय पर जुड़ता रही है और मिटती रही है। यही कारण है कि कहानी की कोई ऐसी परिभाषा, जिसके माध्यम से कहानी के सम्पूर्ण स्वरूप को समझा-परखा जा सके, निर्मित नहीं हो सकी ।"[3]

आज के प्रायः सभी कहानीकार, एक ही सामाजिक प्रतिक्रिया के परिणाम और एक हीं से साहित्यिक संस्कारों में पले और बढ़े है अतः उनके प्रेरणास्रोत भी इतने समान है कि प्रायः उनको शब्दावली और सोचने का ढंग कहीं कहीं एक -सा दिखाई देता है। अतः आज की कहानी अधिक यथार्थदृष्टि प्रामाणिकता और अधिक ईमानदारी से अपने आस-पास के परिचित परिवेश में ही किसी ऐसे सत्य को पाने का प्रयत्न करती है जो टूटा हुआ, कटा-छँटा या आरोपित नहीं- बल्कि व्यापक सामाजिक सत्य

---

1. जैनेन्द्र कुमार, साहित्य का श्रेय और श्रेय, पृष्ठ-14, 1953
2. प्रेमचन्द: साहित्य का उद्देश्य, एस.के. पब्लिशर्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1991
3. बटरोही: कहानी: रचनाप्रक्रिया और स्वरूप, अक्षर प्रकाशन, 1973 , दिल्ली, पृष्ठ-75

का एक अंग है।[1]

अनुभूतियों की समग्रता यदि उपन्यास में आकार पाती है तो उसकी क्षणविशेष की पकड़ कहानियों में । मेरी दृष्टि में कहानी अनुभूति की तीव्रता का नाम है और उपन्यास उस तीव्रता की श्रृंखलाओं की विस्तृतीकरण । दोनों का अपना दायरा है, अपना संदर्भ है, किन्तु प्रभाव की सघनता कहानी में जितनी संभव है, उतनी उपन्यास में नहीं। कहानी जीवन का एक रंग है – गहरा रंग और उपन्यास कई रंगों के मेल से बना एक रंगीन संसार है जिसमें यथार्थ का ताप भी है और आदर्शों की उष्मा भी । वस्तुतः कहानी में जीवन के एक अंग अथवा अनुभूति को शब्दबद्ध किया जाता है । मनुष्य जीवन को छोटे-छोटे टुकड़ों अथवा अंशों में जीता है, भोगता है। विविध घटनायें उसके जीवन में घटित होती है । जिनका प्रभाव उसके मन पर गहरा पड़ता है । संवेदनशील कलाकार जीवन की विविध घटनाओं को चुनकर कहानी के रूप में अभिव्यक्ति देता है। इसमें सम्बद्ध घटना, पात्र, विचार परम्परा अथवा वैयक्तिक विशेषताओं का समावेश रोचक ढंग से हो जाता है ।

नागर जी ने भोगे हुए, जिये हुए अपने आस-पास के विविध अंशों को कहानीबद्ध किया है । वस्तुतः वे सामाजिक यथार्थवाद की कथाधारा के सशक्त लेखक है जिन्होंने भारत के स्वातन्त्र्य पूर्व और परवर्ती समाज के बदलते प्रतिमानों का सूक्ष्मता से विश्लेषण किया है और उसकी संगतियों - विसंगतियों को पैने हास्य-व्यंग्य से चित्रित किया है एक ओर जहाँ पाठक उन विसंगतियों पर हँसता है, वहीं अपने ही समाज के विद्रूप एवं सच्चाई पर तिलमिला भी उठता है । सामाजिक यथार्थ के धरातल पर व्यक्ति की अन्तर्पीड़ा को मथकर उसे नवजीवन का संदेश देना नागर जी की कहानियों का मूल

---

1. राजेन्द्र यादव, कहानी, स्वरूप और संवेदना , नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नयी दिल्ली , तृतीय संस्करण, 1988, पृष्ठ-81

उद्देश्य है । नागर जी की कहानियाँ सामाजिक यथार्थवादी होते हुए भी युगानुरूप मानवीयता का चित्रण करती है। समाज की समस्याओं के विस्तृत मानवीय संघर्षों, राष्ट्रीय और विश्वव्यापी परिवर्तनों को यथा तथ्य रूप में चित्रित किया गया है ।

डॉ0 सुरेश सिन्हा में आज की कहानी के यथार्थ को प्रेमचन्द की कथाभूमि के यथार्थ से भिन्न बतलाते हुए लिखा है – "यह स्मरणीय है कि उस समय संयम , मर्यादा, मूल्यों की प्रतिष्ठा तथा आदर्श की स्थापना आदि प्रश्न कहानीकारों के सामने थे, पर आज उनके सामने प्रश्न यथार्थ का है।"[1] इस यथार्थ में समस्याओं का समाधान बताया नहीं जाता, ध्वनित होता है । "अश्क" की कहानियाँ मध्यवर्गीय समाज की अंतरंगता को चित्रित करती है । मनुष्य की महत्वाकांक्षाएँ, भौतिक संघर्ष, आर्थिक सम्पन्नता की प्राप्ति, वर्गभेद की भावना और इन सबमें इन्सान की इन्सानियत की पहचान मानवीयता के यथार्थ स्वरूप का चित्रण "अश्क" की पिंजरा कहानी में हुआ है। यशपाल जी की कहानियों में जीवन के यथार्थ की तीव्र सम्प्रेषणीयता मिलती है । उन्होंने सामाजिक विषमताओं पर तीखे व्यंग्य किये है । वस्तुतः उनकी दृष्टि साम्यवादी विचारधारा का पोषण करती है।

अतः शोषण के विरूद्ध क्रान्तिकारी विद्रोही स्वर उनकी रचनाओं में मिलता है। इस व्यंग्य के साथ जीवन के संवेदनशील चित्र भी उन्होंने खींचे है। इन्हीं कथाकारों के समकालीन लेखक भगवतीचरण वर्मा की कहानियाँ यथार्थ जीवन के कटु सत्य को उजागर करती है । निश्चय ही इन लेखकों की कहानी परम्परा का विकसित रूप नागर जी की रचनाओं में है । सन् 1935 के पश्चात् के भारतीय सामाजिक, राजनीतिक परिवेश के चित्र उनकी कहानियों में मिलते है । स्वतंत्रता पूर्व के भारत, संघर्षकालीन

---

1 डॉ0 सुरेश सिन्हा, हिन्दी कहानी, उद्भव और विकास, पृष्ठ–431

भारतीय समाज पर पाश्चात्य प्रभाव एवं लखनऊ नगर की मुस्लिम सभ्यता के विविध रंग को नागर जी की सशक्त कलम ने ज्यों का त्यों उतार दिये है लखनऊ के परिवेश और संस्कृति के सजीव चित्रण में उनकी कला "रेणु" जी की आंचलिक कलाके निकट है। अपनी कहानी रचना के विषय में नागर जी ने स्वयं ही लिखा है– "मेरी ये रचनायें जीवन के यथार्थ बोध से निःसन्देह जुड़ी हुई है और कहानियों का शिल्प इनमें निहित बातों से ही उमगा और संवरा है। मैंने शिल्प के लिये ही शिल्प का मन्त्र आज तक नहीं साधा। इधर कुछ वर्षों से मैंने प्रायः एक भी कहानी नहीं लिखी । इसका एक कारण यह भी है कि साहित्य के आलोचकों ने मेरी कहानियों का कोई विशेष नोटिस नहीं लिया । कारण जो भी हो पर यह स्थिति मेरे सृजनशील मन को कहानियाँ रचने लायक प्रफुल्लित नहीं कर पाती । पत्र–पत्रिकाओं के द्वारा मुझ से अब भी कहानियाँ माँगी जाती है पर सिर्फ आर्डर सप्लाई के लिये ही लिखना मुझे अच्छा नहीं लगता है।"[1]

कहानी विषयक अवधारणायें –

नागर जी की कहानी विषयक यथार्थता के सम्बन्ध में डॉ0 रामविलास शर्मा का अभिमत ध्यान देने योग्य है – "जीवन के सबसे निचले स्तर तक बैठने और अप्रत्याशित वीभत्सता का उद्घाटन करने में वे अद्वितीय है । साथ ही वे हास्य रस के जाने माने लेखक है । हास्य के लिये वे आस–पास के सामाजिक जीवन के आलम्बन ही नहीं चुनते , पौराणिक गाथाओं और भटियारिनों के किस्से, कहानियों का भी सहारा लेते हैं। आदमी हिम्मत के हैं, निर्भीकता से सामाजिक समस्याओं पर लिखते हैं– आदमी, नहीं । नहीं । "एटम बम", "मरघट के कुत्ते, एक था गाँधी, आदि उनकी ऐसी ही सोद्देश्य रचनाये है।"[2]

---

1. अमृतलाल नागर, मेरी प्रिय कहानियाँ , भूमिका
2. डॉ0 रामविलास शर्मा, "आस्था और सौन्दर्य, पृष्ठ–133

नागर जी की कहानियों में जिन्दगी की गहराइ, मनुष्य की आशा–आकांक्षाओं का वेग, ध्वंस– निर्माण का स्वर किस्सागोई के आवरण में लिपटा हास्य–व्यंग्य तथा विनोद का मधुर– तिक्त आस्वाद, एक साथ उतर आया है ।

अश्क जी ने उनकी कहानियों की हास्यप्रियता को यथार्थ से समन्वित बताते हुए कहा है – "हास्य व्यंग्य मूल रूप में उनकी रचनाओं की गम्भीरता, यथार्थता, सोद्देश्यता में विद्युत गोट सा चमकता है । नागर जी का व्यंग पैना अचूक, सहसा हँसा देने वाला और दृष्टि प्रगतिशील है । खड़ी बोली के बोलचाल के रूपों पर उनकी पकड़ पीढ़ी है और इसके प्रयोग से वे ऐसा असर पैदा करते है जो मन को बाँध लेता है ।"[1]

नागर जी कहानी में संवेदना को तो महत्व देते हैं, किन्तु संवेदनाओं की विविधता भी उन्हें काम्य है । कहानियों में कथा तत्व की अनिवार्यता पर नागर जी ने पर्याप्त जोर दिया है, उनकी स्वयं की कहानियाँ इसका प्रमाण है।

हिन्दी कथा साहित्य का समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण अभी पूर्ण परिपक्व नहीं हुआ है। साहित्य और समाजशास्त्र के बीच पूर्ण सामंजस्य रहता है। आधुनिक साहित्य की महत्वपूर्ण विधा कहानी में एक ऐसा मोड़ बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध के आस–पास लक्षित होता है , जहाँ कथ्य और संप्रेषण दोनों में हिन्दी कहानी अपने पूर्वार्द्ध की कहानी से अलग लगने लगती है। पूर्वार्द्ध बीसवीं सदी की कहानी प्रेमचन्द्र के बाद से लेकर जैनेन्द्र कुमार, इलाचन्द्र जोशी आदि तक अपनी संवेदना में मूलतः ग्रामीण सहज संवेदना, भावप्रवणता और अक्सर भावुकता से भरी होती थी । अनुभव के स्थान पर कल्पना

---

1. उपेन्द्र नाथ अश्क – हिन्दी कहानी, एक अंतरंग परिचय, पृष्ठ– 329

और किसी ऊँचे करूणा– प्रेरित आदर्श की प्रेरणा ही उसकी मूल आत्मा होती थी। ये आदर्श पुरूष–नारी और समाज दोनों को लेकर थे ...... कहानी में एक ऐसा अनुकरणीय व्यक्तित्व रख लिया जाता था, जिसके आधार पर कहानी आगे बढ़ती थी और जिसके प्रति हमारे मन में बरबस संवेदना और सहानुभूति जाग उठती थी। उस आदर्श के प्रति प्रेरित और प्रभावित करने की एक अतिरिक्त चेष्टा किसी न किसी रूप में रहती थी एक ऐसा व्यक्ति और समाज अभीष्ट होता था, जिसकी अमिट छाप जनमानस पर अनन्तकाल तक बनी रहे । प्रायः अधिकांश कहानियों में यह अभीष्ट इतना प्रतिध्वनित रहता था कि उसे कहानी से अलग कर पाना संभव ही नहीं होता था, यों कभी–कभी वह आरोपित भी लगने लगता था। सन् सैंतालीस की आजादी ने भारत को एक नयी आधारभूमि पर ला कर खड़ा किया , पर अगले चार–पाँच बरसों ने यह सिद्ध करना शुरू कर दिया कि जिस जमीन पर हम खड़े हुए थे, वह कच्ची है और हमारे पैरों के नीचे धँसने लगी है । जिन बड़े बड़े आदर्शों के लिये बीस–तीस बरसों से हम लगातार लड़ते आ रहे थे, उन्हीं की दुहाई देकर स्वतंत्र भारत की नई सरकार बनी । हमारे नेताओं ने ऊँची नैतिकता, ईमानदारी, निःस्वार्थ सेवा, त्याग और समानता की शपथ खाई। बड़ी–बड़ी भाषणों में बड़े–बड़े आश्वासन दिये गये । पर सन् पचास तक आकर ये सपने बिखरने लगे। जो सत्य हमें दिखाया गया था। वह या तो विकृत था, या उस पर कोई बड़ा पर्दा डाल दिया गया था । सांस्कृतिक मूल्यों और सामाजिक मान्यताओं पर इन घटनाओं से जबरदस्त आघात लगा, आदमी के सामने आदमी का यथार्थ नंगा हो गया । ऊँची नैतिकता के स्थान पर कालाबाजारी, रिश्वत , घूसखोरी क्रमशः धीरे–धीरे समाज में पनपने लगी । समानता का स्थान जातिवाद, प्रान्तीयवाद लेने लगे .... भाई–भतीजा वाद नियुक्ति और पदोन्नति के नियम बनने लगे । इन सबको लेकर आखिर एक जबर्दस्त मोहभंग हुआ ..... पचास के आस–पास, भारतीय समाज और जनमानस का .... और एक बैचेनी तथा असन्तोष की स्थिति समाज में हर कहीं महसूस होने लगी। यह

छटपटाहट थी, नया कुछ खोज पाने की , विघटित हो रहे मूल्यों, आदर्शों के बीच उभरते सत्य को पकड़ पाने को, अपने मानस पर पड़े दबावों और तनावों को महसूस कर अन्तर में उठने वाली पीड़ा की अभिव्यक्ति देने की।

उन्नीस सौ पचास के आस–पास तक आकर हिन्दी के नये उदित हो रहे युवा कथाकारों ने भी इसी के समानान्तर एक ऐसी छटपटाहट अपने अन्दर महसूस करनी प्रारम्भ की, जिसे अभिव्यक्ति देने के लिए उन्हें अब तक की प्रयुक्त की गई संवेदना और भाषा दोनों नाकाफ़ी लगी । कहानी की ग्रामीण संवेदना और भावुकता जिसे प्रेमचन्द्र के बाद के कथाकार मुखर करते आ रहे थे, आज के परिवर्तित हो रहे संदर्भों में असामयकि ही नहीं लगने लगा, बल्कि तत्कालीन यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिए अनुपयुक्त और असमर्थ लगने लगा। इन कथाकारों की दृष्टि आजादी के बाद परिवर्तित हो रहे भारतीय समाज के यथार्थ पर सीधे गई । इस समग्र दृष्टिकोण (इण्टीग्रेटेड अप्रोच) के फलस्वरूप जो कहानियाँ नये कथ्य, नयी संवेदना और नये स्तर लेकर सामने आई, उन्हें नयी कहानी का नाम और अन्दाज मिला ।

नागर जी मूलतः उपन्यासकार है और वे उपन्यासत्व को ही कहानियों में प्रस्तुत करते रहे हैं। नागर जी की कहानियाँ और उनके कहानी विषयक वक्तव्य प्रमाणित करते हैं कि वे कहानी को यथार्थ की प्रतिकृति मानते है । यद्यपि उन्होंने अपनी कहानियों के सम्बन्ध में कुछ भी स्पष्ट नहीं कहा है , किन्तु मेरी प्रिय कहानियों के अन्तर्गत जो संक्षिप्त सा कथन है, वह नागर जी की कहानी विषयक अवधारणाओं को स्पष्ट कर देता है। नागर जी की कहानियाँ यथार्थ बोध से जुडी हुई है । उनकी कहानियों में जिन्दगी की गहराई, मनुष्य की आशा– आकांक्षाओं का वेग, ध्वंस–निर्माण का स्वर, किस्सागोई के आवरण में लिवश हास्य – व्यंग्य तथा विनोद का मधुर तिक्त आस्वाद, एक साथ उतर आया है ।

नागर जी कृत दस कहानी–संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। जिनके नाम निम्नलिखित है– "वाटिका" (1935), हम फिदाये लखनऊ (1973), तुलाराम शास्त्री (1941), एटम बम (1950), पीपल की परी (1962), कालदण्ड की चोरी (1963), मेरी प्रिय कहानियाँ (1970), पाँचवा दस्ता और सात अन्य कहानियाँ (1970), "भारतपुत्र नौरंगीलाल (1971) और सिकन्दर हार गया (1973)।

कहानियों का वर्गीकरण –

नागर जी की कहानियों की रचना विविध प्रवृत्तियों को लेकर की गई है। सामाजिक धरातल पर अंकित , हास्य–व्यंग्य से तराशी हुई ये रचनायें जीवन के सर्वांगीण चित्रों का एलबम पेश करती है । विषय की दृष्टि से इन्हें चार भागों में विभाजित किया जा सकता है–

1. सामाजिक यथार्थपरक कहानियाँ
2. राजनीतिक पृष्ठभूमि पर आधारित कहानियाँ
3. मनोवैज्ञानिक कहानियाँ
4. आंचलिक कहानियाँ

सामाजिक कहानियाँ –

(क) **मध्यवर्गीय –**

नागर जी ने प्रत्येक वर्ग और वातावरण का सजीव चित्र खींचा है । चाहे वह मुस्लिम निम्नवर्गीय हो या मुस्लिम नवाबों का समाज, चाहे हिन्दुओं का भक्त समाज हो, चाहे आधुनिक उच्चवर्ग। दैनन्दिन छोटी रचनाओं को उन्होंने बारीकी से चुका है और व्यावहारिक व वैचारिक भूमि पर उन्हें जमाया है । उनकी कहानियों में वातावरण का सजीव चित्रण दिखाई देता है । लखनऊ नगर की पृष्ठभूमि इन कहानियों की विशिष्टता है। समाज की प्रत्येक समस्या को उन्होंने अपनी कलम के सारे गति दी है । समस्त अत्याचारों को व्यंग्यात्मक

बाना पहनाकर पीडित पात्रों को पीड़ा को स्वयं भोगते हुए उनका मानवीय रूप उभारा गया है ।

मध्यवर्गीय समाज से सम्बद्ध कहानियों के अन्तर्गत "गोरखधंधे" धर्मसंकट, जुलाब की गोली, शहर का अंदेशा, दफीने की खुदाइ, आदि कहानियाँ आती है। गोरखधंधे में शिक्षित बेरोजगार व्यक्ति की विवशता पीड़ा एवं संघर्ष का चित्रण है। आर्थिक अभाव और परवशता जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप है । पढ़–लिखकर भी बेरोजगारी, गृहस्थी का दायित्व मनुष्य को निराश कर देता है । रोटी–रोजी के लिये मन में नाना विकल्प पलते है, नई–नई तरह की तजवीजें बनती है और ये गोरखधंधे केवल मन में ख्याली पुलाव बनकर रह जाते हैं। यह बेरोजगारी की समस्या वर्तमान भारत के मध्यवर्गीय समाज की सबसे बड़ी और अहम् समस्या है। शिक्षा के पश्चात् की यह घुटन कुंठाओं और सत्रांस को जन्म देती है किन्तु गृहस्थी के बोझ से दबे हुए एक बेरोजगार आदमी के नौकरी किये गए गोरखधंधे उसकी विवशता का मजाक उड़ाते है । अर्जियाँ लिखने के लिए दो पैसे की स्याही भी न जुटा पाने वाला व्यक्ति बच्चों के लिए खाना कहाँ से जुटायेगा ? 1939 ई0 के स्वतन्त्रता संघर्ष में जूझने वाला यह वर्ग अन्त में कांग्रेस का सदस्य बनकर जेल में जाना बेहतरसमझता है। माता–पिता जेल में और बच्चे अनाथालय में । आर्थिक दीनता का यह समाधान राष्ट्रीयता के नाम पर विद्रुप ही कहा जायेगा, परन्तु वर्तमान संदर्भ में तो अनाथों की शरण यह "कांग्रेस" भी विवश व्यक्ति की अपनी संस्था नहीं कहीं जा सकती । स्वतंत्रता पूर्व का यह काल्पनिक समाधान स्वतन्त्र भारत की कल्पना से भी बाहर है ।

धर्मसंकट में एक परिवार को केन्द्र बिन्दु बनाकर समाज की बहुबिध समस्याओं का अंकन किया गया है । इस कहानी के माध्यम से नागर जी ने एक औसत भारतीय पर पड़ने वाले अंग्रेजी प्रभाव, उसकी मनः स्थितियाँ, परिवर्तित रूढ़ियाँ , नारी की स्थिति, सामाजिक न्याय जैसी समस्याओं तथा उनके समाधान को प्रस्तुत किया है । कहानी का नाटकीय आरम्भ पाठक की उत्सुकता जगाता है और पड़ोसी को प्राप्त होने वाले पत्र द्वारा

राय बहादुर गिर्राज किशन बी.ए. का इतिहास स्पष्ट होने लगता है। वे उन अंग्रेज परस्त हिन्दुस्तानियों के प्रतीक हैं, जो अपने ही देश में स्वयं को नकली बना डालते हैं।

अंग्रेजी सभ्यता ने उनकी पत्नी को घुट-घुट कर मरने के लिये विवश कर दिया, किन्तु अपने बेटे के लिये वे एक बड़े दहेज की मांग करने लगे । बाद में अपने लड़के के लिये देखी हुई लडकी से स्वयं विवाह रचाया, किन्तु पढ़ी-लिखी लड़की विवाह की सात भाँवरों के बन्धन तोड़ उनके बेटे की पत्नी बन बैठी । नारी द्वारा रूढियों को तोड़ना उसके नये विकास का सूचक है । राय बहादुर अपनी वसीयत में अपनी पत्नी के नाम मकान करके उसे उसका धर्म याद दिला गये थे, किन्तु उनकी धर्म पत्नी रीता ने तथाकथित वैधव्य साधकर, उनके पुत्र के हाथों अपनी मांग में सिंदूर भरवा कर समाज के सामने एक कसौटी रखी - "मुझे राय बहादुर साहब का घर और दस हजार स्पष्ट पाने की इच्छा नहीं । मेरे पति ने मुझे सुहाग की छाँव दे रखी है । लेकिन मैं आपके सामने कसौटी रखती हूँ- बोलियें, घर किसका ? "[1] किन्तु यह समाज निर्णय नहीं कर पाता कि तन, मन से सच्चरित्र रीता क्या केवल सात भँवरों के खेल से ही आजीवन वैधव्य भोगने को विवश है? क्या छप्पन वर्षीय राय बहादुर अपने बेटे के लिये पसन्द की गई अठारह वर्षीया रीता से विवाह करके भी निरपराध है और प्रतिष्ठित है? क्या नारी का स्वतन्त्र कदम उठाना रूढियों को तोडना गलत है ? ये प्रश्न स्वातन्त्र्योत्तर भारत के करवट बदलते हुए सामाजिक मूल्यों का परिचायक है । एक वर्ग पुराने से चिपका हुआ है और दूसरा उसे तोड़ रहा है । सन् 1961 में लिखी गई यह कहानी तत्कालीन भारतीय समाज की इसी द्विविधा-ग्रस्त स्थिति को साकार करती है और नागर जी ने इस परिवर्तन को सहानुभूति पूर्वक समाज के सामने रखा है ।

---

1. धर्मसंकट - अमृतलाल नागर, पृष्ठ-111
   (कहानी)

'जुलाब की गोली' में वेश्या बनाम कुलवधू की समस्या एवं सामाजिक विरोधाभास का व्यंग्यपूर्ण चित्रण है । स्वतंत्रता पूर्व भारतीय समाज विशेषतः लखनवी मुस्लिम समाज एक ओर कोठेवालियों के पास जाता था, दूसरी ओर घरवालियों के इखलाक का गुणगान करता था। घरवाली को "जुलाब की गोली" की संज्ञा दी गई। पत्नी का सीधा सरल रूप भी तेज असर वाला होता है । इसी बात को लखनवी रंग में कहा गया है ..... "..... किस्मत तो हमारी खुलने को थी कि अगर आज इससे शादी न होती या इससे ऐसा इखलाक न होता तो हजरत, आज हमको कब्रिस्तान की जमीन नापे बरसों गुजर गये होते । कुछ उसी की किस्मत है कि इज्जत की दो रोटियाँ मिलती है। कभी गुनगुना देती है तो राग रागनियाँ हाथ बाँधकर खड़ी हो जाती है । जब हँसती है तो यकीन मानें बिजली झेंपकर रह जाती है।"[1] वेश्या वर्ग की पृष्ठभूमि में पत्नी का ऐसा गुण चातुर्य सामाजिक प्रतिष्ठा की आड़ में नवाब साहब के लिये सौभाग्य बन जाता है और यह जुलाब की गोली किसी भी आशिक मिजाज को अपना हमदर्द बना सकती है ।

"शहर का संदेशा" भय एवं तज्जन्य अफवाहों के खंडन मंडन की मानवीय वृत्ति पर आधृत समस्या प्रधान कहानी है । समाज में अफवाहों को फैलाने वाला एक विशेष वर्ग होता है । मुख्य रूप से नौकर चाकर, धोबी, जमादार, सब्जीवाले इत्यादि अशिक्षित लोग ही अपनी अंधविश्वासी कल्पनाओं को मूर्त रूप देते हैं। एक बार लखनऊ में भी अफवाहें उड़ी कि बंगाल से कुछ जादूगर आये हैं और द्वार खटखटाकर आने वाले व्यक्ति को चाँटा मारकर मार डालते हैं। सारे नगर में भय और मानव के प्रति अविश्वास की भावनायें फैल गई। लम्बरदार के शब्दों में लेखक ने इस भय को स्पष्ट किया – "अरे मालिक, एक हुई। हम कहिती हय कि आज दुई रोज मां हियां सौ मनई का मार डालिन। सैंकड़न–हजारन का कानपुर मां मारि के अब लखनऊ मां आए है ।"[2] ये अफवाहें साधारण जनता को

---

1. हम फिदाए लखनऊ – जुलाब की गोली– पृष्ठ– 63
2. शहर का अन्देशा, पृष्ठ–89 (हम फिदाए लखनऊ)

कायर बनाती है । शिक्षित वर्ग में विश्वास और अविश्वास को तर्क की कसौटी पर कसा जाता है ।

"दफीने की खुदाई" का वर्ण्य विषय अफवाह, धनलिप्सा, धार्मिक अंधविश्वास जेसी मध्यवर्गीय सामाजिक समस्याओं से सम्बद्ध है । इस प्रवृत्ति को भारतीय समाज की धार्मिक मनोभूमि एवं अंधविश्वासों पर खड़ा किया गया है । यहाँ हर जाति अपनी हर इच्छा को भगवान् की इच्छा मान लेती है और फिर धार्मिक ठेकेदारों की बन आती है । चाहे हिन्दू या मुसलमान, धर्ममीस सामान्य व्यक्ति बिना किसी तर्क के उन अफवाहों पर विश्वास कर लेता है – "हुआ यह कि लखनऊ में शाही खजाना खुदने लगा हमारे मुहल्ले में अजी शहर के कोने–कोने में हर शरण्स, जिनके पास भी दादालाई जायदाद थी, यही सोचने लगा कि हो न हो, हमारे घर में भी करोड नहीं तो लाख अशर्फियों का घड़ा जरूर गढ़ा है।

घर–घर जन्म–पत्रियाँ खुलने लगीं, पंडित मौलवियों के घरों की चौखटें अपने–अपने घरों के दफीने का हाल जानने की आवाजाही में घिस गई .... शहर दफीनों की अफवाहों से दबा जा रहा था। आये दिन दो चार हम भी लाद देते थे।"[1] घर की स्त्रियाँ इन अफवाहों से बहुत जल्दी प्रभावित होती है । नागर जी ने अपने सहज हास्योत्फुल्ल व्यंग्यात्मक लहजे में कहानी को कपोल–कल्पित रंग दिया है । लखनवी संस्कृति हिन्दू–मुस्लिम धर्मों की साझीदार है। मनुष्य अपनी इच्छापूर्ति के लिये दोनों धर्मों के आचारों को अपना सकता है और दोनों धर्मो के अनुयायी अपने–अपने ईश्वर की शक्ति स्थापना की होड़ में परस्पर सहानुभूति खो बैठते हैं। लखनऊ ने सारे आडम्बरों को गप्पों का रंग दिया है। अतः नगर पर जादू–टोने, ज्योतिष, स्वप्न, पीर आदि का अधिक प्रभाव होने के कारण लेखक की कल्पना ने यथास्थान भिन्न–भिन्न इस प्रकार की घटनायें संजोकर कहानी को लखनवी कहानी बना दिया है ।

---

1. दफीने की खुदाई, पृष्ठ–94 (हम फिदाए लखनऊ)

(ख) **निम्नवर्गीय –**

इस वर्ग के अन्तर्गत शकीला की माँ, कादिर मियाँ की भौजी, जन्तर–मन्तर, मरघट के कुत्ते, हाजी कुल्फी वाला, खटकिन भाभी, नजीर मियाँ, कयामत का दिन, मलका टूरिया का बेटा, मुल्लर की महतारी आदि कहानियाँ आती है। शकीला की माँ, कहानी सन् 1936 में लिखी गई थी। यह कहानी नागर जी के कहानी–लेखन के विकास की पहली मंजिल कही जा सकती है । इसमें तत्कालीन समाज विशेषतः लखनऊ की गलियों के एक विशेष वर्ग का चित्रण सजीव हो उठा है । तन की कमाई खाने वाले खंडहर के सदृश कोठरियों में रहने वाले अपनी और विवश जिन्दगी का चित्र है, सन् 1936 के लखनवी समाज के नवयुवकों का यह आमचलन था ।

'कादिर मियाँ की भौजी' कहानी में पुरूष द्वारा उत्पीड़ित नारी की विवशता एवं पीड़ा वर्णित है । सारी कहानी की पीड़ा अन्तिम पंक्तियों में सिमट आई है – कमर पर हाथ रखकर नाक सिकोड , फिर फीकी हँसी हँसते हुए भौजी ने कहा– लिबण्डर– फिवण्डर नहीं, जरा सा हल्दी चूना पकवा लाना बहू से । अल्ला कसम बड़ी मार मारी है मरी पीटे ने आज । एक दर्द भरी हल्की सी अंगड़ाई लेकर भौजी फिर मुस्करा दी ।"[1]

नागर जी कथानक के अनुरूप वातावरण गढ़ने में सिद्धहस्त है । सन् 1938 का हिन्दुस्तान और उसका लखनऊ शहर और लखनऊ शहर की छोटी–छोटी गलियों, कामगीर, निम्नवर्गीय मुस्लिम समाज , उनके शौक उनके दैनिक व्यवहार, व्यवहारिक बीच कटुता व आत्मीयता की बहती धारा, नौजवानों की मस्ती सभी आँखों के सामने घूम जाते है – "चमेली का हार गले में पड़ा था, जुही का गजरा हाथ में लपेटे हुए, नया पम्पजूता पैरों में और सिर पर बढिया दुपलिया टोपी मियां कादिर पान चबाते आये।"[2]

---

1. कादिर मियाँ की भौजी – पृष्ठ–33
2. कादिर मियाँ की भौजी, पृष्ठ–23

'जन्तर–मन्तर' कहानी निम्नवर्गीय समाज में व्याप्त जड़ता, अंधविश्वास, जादू टोना और अन्तर्मन में जमें अविश्वास और कुसंस्कारों को बेनकाब करती है । जन्तर–मन्तर द्वारा चमत्कारिक रूप से अशिक्षित और गरीब लोगों को ठगना उनके लिये सामान्य बात है। इसी जन्तर–मन्तर का चमत्कार इस कहानी के माध्यम से वर्णित किया गया है । जन्तर–मन्तर के सारे नुस्खों को नागर जी की कलम ने व्यंग्यात्मक ढंग से उतार दिया है– एक पैसे का गोश्त खरीदकर और कड़ुए तेल का एक चिराग तश्तरी में रखकर किसी चौराहे पर रख देना और कल सबेरे सवा गज लाल कपड़े में बीस आने पैसे और एक ताजा फूल लेते आना । मैं कल रात मसान जाऊँगा , वहीं सब ठीक हो जायेगा । परसों सबेरे तुम्हें ताबीज दे दूँगा । अल्ला चाहेगा तो दो दिन में मूजी के पैर उखड़ जायेंगे।"[1] और यही चमत्कार गरीब का धन और श्रद्धा लूटकर भी उस मार खाने से न बचा सके । कादिर मियाँ शेखी में पीरू से भिड़े तो हड्डी पसली चूर हुई, सिर फूटा और अस्पताल पहुँच गये, किन्तु शाह जी के पास उत्तर तैयार है । दो इल्मों की लड़ाई छिड़ गई है । कल रात मसान पर इसी तनातनी में बात बहुत आगे बढ़ आई। पीरू को एक ओलिया ने शैतान के सुपुर्द किया है , इधर शाहजी ने मन्तर के बल से शैतान को जला डालने की कोशिश की। उधर वह ओलिया भी मन्तर के बल पर टक्कर ले रहा है । कल रात इसी लड़ाई में आसमान के तारे टूटते बचे । सारी दुनिया जलकर खाक हो गई होती । वह तो कहीं, शाहजी ने बचा लिया। यह कहानी अपने समय के समाज की आत्मा में जमी लड़ता की काई और अंधविश्वासी पर्दो के भीतर झाँकती है । वास्तव में इन रूढ़ियों ने हिन्दू मुस्लिम सभी हिन्दुस्तानियों को पतनोन्मुख किया है ।

'मरघट के कुत्ते' से मरघट पर रहने वाले अघोरी और कापालिकों की प्रवृत्तियों का परिचय मिलता है । असामाजिक कृत्यों का वीभत्स चित्रण अपनी पूरी भयावहता के

---

1. जन्तर मन्तर, पृष्ठ–115

के साथ उस दुनियां को प्रस्तुत करती है, जहाँ जिन्दगी से मौत प्यारी हैं, जहाँ इन्सानियत और जिन्दगी अपने अर्थ खो बैठती है। जहाँ एक सामान्य मनुष्य का जीवन समाजप्त होता है, वहाँ मरघट में रहने वालों का जीवन चालित और सक्रिय होता है। जहाँ भावना, हृदय बुद्धि सब निरर्थक हो जाते है, रह जाती है पैशाचिकता की , विभीषिका। नागर जी ने दुर्दमनीय साहस द्वारा समाज निषिद्ध उस संसार में न केवल प्रवेश किया है, बल्कि उस दुनियां को थोड़ी देर के लिये जिया भी है । अघोरियों की शव साधना अथवा मसान साधना जिन तन्त्र-मंत्रों से सिद्ध होती है, उसकी सक्रिय प्रक्रियाओं का विवरण आरम्भ होते ही वीभत्सता उत्पन्न करता है । अर्द्धरात्रि में शवों के आस पास के भयावह वातावरण में ये तान्त्रिक मुर्दों की हड्डियों और कपालों को अपना साधन बनाते हैं, और मरणशील सांसों की अंतिम स्थिति की प्रतीक्षा में रहते हैं। वे मुर्दों की अंतिम संस्कार भी नहीं करने देते । कुत्तों और सियारों का रोना, हड्डियों का चटकना, जली अधजली चिताओं से राख उड़ना से युक्त सारा वातावरण रोंगटे खड़ा कर देने वाला है । अमीरों के शव पर चढ़ने वाले कीमती दुशाले के लिये श्मशान के महापात्र और डोम के बीच छूआछूत और ऊँच-नीच का भाव भी मिट जाता है वहाँ केवल लोग है, अधिकार, न्याय सब व्यर्थ है। मुर्दे के कफल के लिये लड़ाई और मुर्दों का दुरूपयोग जीवन के अमानवीयता से युक्त अंधेरे पक्ष का कटुतम यथार्थ प्रस्तुत करता है।

'हाजी - कुल्फीवाला' कहानी में लखनऊ के निम्नवर्गीय समाज के प्रतिनिधि चित्रण है। यह कहानी नागर जी की विशाल दृष्टि, सूक्ष्म अन्वेषण एवं गहरी संवदेनशीलता को प्रकट करती है कुल्फीवाला निम्न मध्यवर्गीय समाज का एक प्रतिनिधि पात्र है जो परिश्रमी है, व्यवहार कुशल है। जिसके जीवन में सुख-दुख दोनों ही भरपूर आये है। उसने अपने परिश्रम से न केवल धन कमाया है अपितु कुल्फियों की खूबी से ही दो मंजिला मकान भी बनाया , किन्तु युवा लड़के-लड़की की मौत ने उसे तोड़ दिया।

नागर जी शब्द-शिल्पी है। अपने आस-पास के माहौल के कुछेक चित्र उड़ाकर उन्हें स्वप्न बनाने की कला नागर जी के पास है। उन्होंने इसी कला के सहारे उन्होंने अपने कहानी-संसार को विकसित किया है। किस्सागोई और गप्पबाजी का सुन्दर नमूना यहाँ मिलता है – फिर कोई शानदार कोठी बंगले वाला हाजी बुलाकी की कुल्फियों से महरूम न रहा। हाजी बुलाकी की कुल्फी और निमिष का शुमार भी लखनऊ के कल्चर में हो गया । विदेशी मेहमानों को लखनऊ आने पर चिकन के कुर्ते, दुपलिया टोपी, रूमाल और साड़ियाँ, मिट्टी के खिलौने और मशहूर इत्रों के तोहफे तो दिये ही जाते थे, हाजी बुलाकी की कुल्फी या सर्दियों में निमिष भी खिलायी जाने लगी । अंग्रेजी के अखबार वालों ने उनकी तस्वीरें तक छापीं।"[1]

लखनऊ की वेश्या समस्या को नागर जी ने समय-समय पर उठाया है। वे वेश्याओं के नागरिकी और सम्मानित जीवन अपनाने के पक्ष में है। आवश्यकता है समाज में साहसी युवकों की । मुश्तरी बाई नामक वेश्या की लड़कियों का गुणगान हाजी मियाँ की लच्छेदार बातों द्वारा एक नबाबजादे के सामने इस प्रकार कराया है कि वह वेश्या की लड़की से विवाह के लिये तैयार हो जाता है । नागर जी ने करवट बदलते हुए भारत की मान्यताओं के नूतन स्वरूप को स्वीकार किया है ।

'खटकिन भाभी' कहानी में साग सब्जी बेचने वाली एक खटकिन के आचार व्यवहार, बोलचाल, रहन-सहन एवं जीवन स्तर का सजीव वर्णन प्रस्तुत करती है। नागर जी ने समाज के उपेक्षित व्यक्ति की भी रूचियाँ, स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ, उसके आचार-व्यवहार को प्रस्तुत किया है। लेखक का उद्देश्य मुख्यतः सामान्य निम्न मध्यवर्गीय समाज की कुंठित दृष्टि और वातावरण का चित्रण करना है।

---

1. हाजी कुल्फी वाला, पृष्ठ-55 (हम फिदाए लखनऊ)

'नजीर मियाँ' कहानी के माध्यम से नागर जी ने एक ऐसे पात्र की सृष्टि की है जो लखनऊ की सभ्यता-संस्कृति का परिचय कराता है । नजीर मियाँ ने अपने व्यवहार से अपनी गली मोहल्ले वालों को आत्मीय बना लिया है – "किसी दुल्हन, किसी बेटी ने बुलवाया कि नजीर मियाँ ये ला दीजिए और वो ला दीजिए तो चौक, अमीनाबाद दौड़े जा रहे है।"[1] लखनवी भाषा, रीति-रिवाज, जीवनचर्या, रूढ़ियों आदि का यथार्थ चित्रण कहानी को जीवंत बनाता है। लखनऊ नगर की विशेष भाषा का जायजा नजीर मियां के इन शब्दों से लिया जा सकता है ।

अहा-हा-हा । हाजरीन, शायकीन, गुलदाम, मुलबदन जाने कताले आलम आशिक माशूक । चले आइये, चले आइये । ऐ हजरत, यह तो नखास है जहाँ कभी घोड़े बिकते थे, लेकिन अब लोगों का नसीब बिकता है। जो खुशनसीब है वही नखास में आते हैं, सैकड़ों का माल टके टके में ले जाते है। हाजरात, ये वो नखास हे कि जिसकी शान में फिरदौसी तक कह गया है कि अगर फिरदौस, बररूयें जमी अस्त, नखास अस्तों, नखास अस्तो, नखास अस्तो।"[2] यह लफ्फाजी और मिठास लखनवी भाषा की विशेषता है।

'कयामत का दिन' निम्नवर्गीय मुस्लिम समाज के अंधविश्वासों और रूढ़ियों का मनोरंजक आलेख है। हास्य रस से भरपूर यह कहानी मनुष्य की सहज प्रवृत्तियों और संभावनाओं का उद्घाटन करती प्रतीत होती है ।

'मलका टूरिया का बेटा' कहानी की रचना नारी के ममत्व को केन्द्र बिन्दु बनाकर की गयी है । इसमें अंग्रेजों की व्यवसायिकता, मानवीय सम्बन्धों के ह्रास तथा वासनामय जीवन के अभिशाप का भी अन्तर्भावन हुआ है। चौबे बनारसीदास का इतिवृत्तात्मक वृत्तान्त,

---

1. नजीर मियाँ, पृष्ठ- 80-85 (हम फिदाए लखनऊ)
2. वही, पृष्ठ- 80-85

अंग्रेजों की व्यापारिक वृत्ति से प्रेरित महाजनी प्रवृत्तियों का चित्रण स्वतन्त्र्य पूर्व का चित्र प्रस्तुत करता है। मलका टूरिया एक तेईस–चौबीस वर्षीया युवती है , जो मोटापे के कारण पति–परित्यत्ता है और मण्डी में आलू बेचती है । हाते की किरायेदारिन होने के कारण चौबे के जुल्म देखती है और उसकी नारी सुलभ ममता चौरासी बरस के बूढ़े की बेटे की तरह अपने आँचल की छाँव देती है । इस कहानी में नागबर जी की संवेदना शुष्क कम और आर्द्र अधिक है ।

मुल्लर की महतारी की केन्द्रीय संवेदना अशिक्षित समाज में व्याप्त परनिन्दा और अफ़वाह फैलाने की प्रवृत्ति एवं उससे उत्पन्न दुष्परिणामों से जुड़ी हुई। मुल्लर की महतारी बाबू सालिगराम को गबन का अपराधी करार कर झूँठी अफवाहें फैलाती है और सत्य का पता लगने पर दण्डित होती है। उचित शिक्षा के अभाव में ये घटनाएँ समाज में अस्वस्थ वातावरण उत्पन्न करती है। इन अफवाहों पर विश्वास न करके सत्य खोजना उचित है। **सूखी नदियाँ, माँ बाप और बच्चे** , मोती की सात चलनियाँ, बन्दिनी, सिकन्दर हार गया, दो आस्थायें . गिरहकट, सती का दूसरा ब्याह, इत्यादि कहानियों में भारतीय समाज की रूढ़ियों धर्मिक वाह्याडम्बर, अंग्रेजी शिक्षा के दुष्परिणाम सामाजिक परिवर्तन तथा मूल्यों के छात्र का चित्रण बहुत ही तल्खी के साथ हुआ है ।

सूखी नदियाँ, कहानी में भौतिक सभ्यता की विसंगतियों का व्यंग्यात्मक चित्रण है। फैशन, भोग, सेक्स और मानवीय संबंधों के बदलाव पर आधारित यह कहानी उच्चवर्गीय सभ्यता को बेनकाब करती है। पति की मृत्यु की खबर पाकर पत्नी जगत की सहानुभूति बटोरने के लिये चीखकर बेहोश होने का नाटक करती है। शोक के नाम पर मित्रों की लफ्फाजी और शायराना बाते होती है। गम और शोक पतले छिलकों की तरह उतारे जाते हैं। लगता है, पैसे से दिल दिमाग का कल्चर ही बदल जाता है, हर संस्कार एक रोमानी संसार में तैरने लगता है। रामानी रंगीनियों को नागर जी ने निहायत नाजुकता से ऐसे मीठे वाणों

से छेदा है कि पाठक व्यंग्य में छिपी पीड़ा को और ऐसे उच्च्वर्ग के कल्चर को देखकर अन्दर छटपटा उठता है। "व्हाट ए नाइस आइडिया। काश कि ऐसा होता। बर्फ से ढके हुए कब्रिस्तान में जब इतने हिन्दुस्तानी मिलकर अपने बिछुड हुए साथी को आखिरी आनर्स देते, तब इंगलैण्ड वालों को मालूम होता कि हमारे कौमी जज्बात क्या होते हैं। अहमद की मौत एक नेशनल हीरो की मौत की तरह याद की जाये ।"[1]

मिसेज अहमद का चित्रांकन एवं उसके जीवन की पृष्ठभूमि मित्रों की सहानुभूति में स्पष्ट हो जाती है – "विमला अगर इतना रंज करेगी तो इसे टी.बी. हो जाने का डर होगा। अभी तो बेचारी वर्मा के डायवोर्स केस से अपने को संभाल भी न पाई थी कि यह दु:ख इसके सिर पर पड़ गया ।"[2] धनिक वर्ग की यह आधुनिक सभ्यता और संस्कृति अपनी नहीं, उधार ली हुई है। यह वैदेशिक वृत्ति किसी को भी अपना नहीं बना पाती, जहाँ मात्र धन ही सर्वेसर्वा है । यह वर्ग सूखी नदियों के समान है जो किसी की प्यास नहीं बुझा सकती, किसी को तृप्ति नहीं देती ।

'मोती की सात चलनियाँ' कहानी में अन्तर्जातीय प्रेम विवाह तथा हिन्दू मुस्लिम ऐक्य का विधान करने वाली कहानी है। नागर जी के नयी पीढ़ी द्वारा पुरानी पीढ़ी का सामना करवाया है और भारत की अन्य जातियों की अपेक्षा हिन्दू-मुस्लिम युवक युवती का प्रेम विवाह एक सुखद आश्चर्य उत्पन्न करता है । पुरानी पीढ़ी आधुनिक शिक्षा को दोष देती है, किन्तु स्वयं आधुनिक बनकर पुरानी रूढ़ियों को तोड़ने के बाद भी वे नयी पीढ़ी का यह समन्वय दुनिया के डर से नहीं सह पाते । एक ओर मुस्लिम प्रोफेसर खुद आधुनिक थे, पर्दे के सख्त खिलाफ थे, गो ईद- बकरीद को भी मस्जिद में कभी नमाज पढ़ने न जाते थे, मगर इस्लाम को मानते थे, दुनिया से डरते थे । दूसरी ओर डॉ0 श्याम मोहन अपने डाक्टर बेटे

---

1. सूखी नदियाँ , पृष्ठ- 63
2. सूखी नादियाँ, पृष्ठ- 63-64

की मुस्लिम युवती से शादी की खबर सुनकर हिन्दू धर्म की दुहाई देते है– हमारे ऋषि मुनियों का सनातन धर्म जिसकी सारे संसार ने तारीफ की है, अब तुम्ही लोगों के हाथों समाप्त न होगा तो क्या कोई बाहर वाला आएगा।"। किन्तु नई पीढ़ी की स्थापना है .... हमारे लिये धर्म बदलने की बात ही नहीं उठती । हमें जन्म–मरन, शादी बगैरा के लिए किसी मुल्ला या पण्डित की जरूरत नहीं। मन्दिर मस्जिद की हमें जरूरत नहीं। ईश्वर कासे मानते है, मगर साइन्स की शक्ति में उसे देखते हैं। खुद आप ही ने कब ये ढोंग और आचार–विचार माने। आप नाम मात्र के लिये जन्म के संस्कारों से बन्धे रहे । हमें वह भी झूंठ लगा, हम उसे भी नहीं मानते ।[1] नागर जी ने परिवर्तित समय के अनुसार स्वस्थ दृष्टि का अनुमोदन किया है। धर्म और मजहब के संकीर्ण दायरों से निकलकर मात्र केवल एक मानवता का धर्म ही उचित है । इस कहानी में मानवता के सामाजिक पक्ष का अंकन है।

'माँ–बाप और बच्चे', शीर्षक कहानी उच्चवर्गीय शिक्षित समाज के ऐशोआराम और व्यस्त जीवन के संदर्भ में बच्चों की उपेक्षा एवं तज्जन्य उनकी समस्याओं का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है । एक प्रतिष्ठित वकील साहब के घर में ऐशोआराम का सब सामान है, किन्तु उन्हें घर में झाँकने की फुर्सत नहीं। बच्चे दो तीन महीने में एक बार ही पिता से मिल पाते है। घर की व्यवस्था नौकरों के हाथ, बच्चों की देखभाल आया के जिम्मे बच्चों की माता स्वयं सामाजिक कार्य कलापों में व्यस्त । आजादी के बाद सरकारी सांस्कृतिक हलचलें बरसाती नदियों की बाढ़ जैसी हर तरफ फैली है। वकील साहब की पत्नी लेडी बच्छराज, महिला संस्थाओं में बच्चों के पालन– पोषण की विशेषज्ञ मानी जाती है, किन्तु उनके ही बच्चे सभ्यता को एक तरफ रख सबसे दुर्व्यवहार करते है।

---

1. मोती की सात चलनियाँ, पृष्ठ– 85 (पाँचपादस्ता और सात कहानियाँ)

'बन्दिनी' कहानी स्त्री–पुरूष सम्बन्धों पर आधारित है, जिसमें नारी की पीड़ा के साथ ही उसके जागरण का स्वर फूटा है। लोहे के कारखाने के मैनेजर अपनी स्वामिनी कामिनी खन्ना के विश्वासपात्र होकर पत्नी के गुण भुला बैठे। कंचन और कामिनी के सान्निध्य ने उनकी पत्नी को अपने ही घर में दासी और उपेक्षिता एवं बंदी जीवन जीने के लिये मजबूर कर दिया, किन्तु स्वाभिमानी नारी ने अपनी पीड़ा को लोकसेवा की ओर मोड़ दिया और वे अपनी गली मुहल्लों के बच्चों को मुफ्त शिक्षा देने लगी । उनकी सरलता, ममता और उदारता ने उन्हें अनेक बच्चों की माँ जी बना दिया था। यहाँ तक कि कामिनी खन्ना की बेटी रीता ने भी उसे ही माँ मान लिया था। रीता को तीव्र ज्वर की अवस्था में माँ जी ढेर सारे बच्चों के साथ देखने आई तो उनके पति ने उन्हें अपने ही घर की कोठी में ताला लगाकर बन्दिनी बना दिया। दूसरे दिन रता तीव्र ज्वर में ही माँ जी के पास पहुँचकर बाहर फर्श पर ही अचेत हो गई तो कामिनी खन्ना ने उसकी ममता को जादू–टोना का नाम दे दिया।

दूसरी ओर उच्च वर्गीय नारी का चित्र है जो महिला समाज का संचालन करती है। बड़ी–बड़ी योजनायें बनाई जाती है, किन्तु केवल धन और यश के लिए उन्हें अपने बच्चों और घट का कोई ख्याल नहीं , कोई हमदर्दी नहीं, यहाँ तक कि पति के प्रति भी कोई दायित्व नहीं। किन्तु पीड़ित नारीत्व ने मातृत्व का गौरव पाकर समाज की बेड़ियों को चुनौती दी है। उसके आँसुओं ने नारी की पीड़ा की सीमा लाँघकर अपने लिए स्वतन्त्र एवं वरेण्य मार्ग खोज लिया है – ".... ये आँसू सामन्ती महाजनी परम्पराओं के दासीत्व, पत्नीत्व के प्रतीक नहीं, मातृत्व की अनादि अनन्त शक्ति का प्रतीक बनकर झलके थे।"[1]

नागर जी मानव हृदय के कुशल चितेरे है। जहाँ भी जिस रूप में मानवता पीड़ित हुई है, उनका संवेदनशील हृदय तड़प उठा है, नागर जी केवल समस्या को उठाकर छोड़ नहीं देते, उसका समाधान भी प्रस्तुत करते है। नारी चेतना ने अब करवट बदली है, किन्तु

---

1. बंदिनी, पृष्ठ–104 (पाँचवा दस्ता और सात कहानियाँ)

सत्ताशील पुरूष का सदियों का प्रभुत्व नारी विद्रोह से तिलमिला उठा है। नागर जी ने नारी की पीड़ा को मार्मिकता देकर विद्रोह के स्वर को प्रमुखता दी है।

'दो आस्थायें' कहानी पुरानी और नयी पीढ़ी के मूल्यों की टकराहट को पारिवारिक पृष्ठभूमियों में प्रस्तुत करती है, जिसके परिणामस्वरूप सम्बन्धों में बिखराव की स्थिति उत्पन्न होतजी है। पंडित देवधर कट्टर हिन्दू धर्मी है और अपने इष्ट की नियमपूर्वक कट्टरता से पूजा करते है । उन्होंने अपनी कोठी के बाहरी भाग में एक गुफा के रूप में माता सरस्वती का मन्दिर बनवाया है , जहाँ वे पारम्परिक रूप से बहुत ही शुद्ध और सात्विकता से पूजन-ध्यान करते है। किन्तु उनके दोनों पुत्र और बहुएँ पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित है, वे अपने पिता की कट्टरता को कतई बेमानी समझते है। रूढ़ियों को तोड़कर मांस-मदिरा का सेवन, शौकिया कुत्ते पालना आदि कार्यो के कारण घर में तीखा विरोध और तनाव उत्पन्न हो गया है। पंडित जी जितना अधिक खीझते हैं और परम्पराओं का दामन पकड़ते है, पुत्र उतनी ही तीव्रता से कई मान्यताओं को अपनाते है। इसी विरोध में पिता पुत्रों के पारस्परिक सम्बन्धों की आत्मीयता भी समाप्त हो गयी है और पिता ने अपने पोते-पोतियों तक का मोह तोड़ दिया है। पुरानी पीढ़ी ने कठोर संयम को अपना जीवन बनाया है। किन्तु नई पीढ़ी ने उन अन्धविश्वासों को भारतीय संस्कृति का कलंक माना है।

सामाजिक प्रेम सम्बन्धों की नैतिकता और भारतीयता के संस्कारों के द्वन्द्व की कहानी 'सिकन्दर हार गया' है । इसमें बदलते हुए सामाजिक मूल्यों में भारतीय नारी ने स्वाभिमान के कारण अपने स्वत्वों और पुरूषों के अत्याचारों के विरूद्ध आवाज उठायी गई है। पुरूष स्वयं को विलास के लिए स्वतन्त्र समझकर भी पत्नी को सतीत्व की दुहाई देता है। जीवन लाल एक खुबसूरत महत्वाकांक्षी व्यक्ति होने के कारण अपनी दुराचारी वृत्ति का दास है। उसकी पत्नी भी उसके दुराचारों की शिकार है। वह उसे सही मार्ग पर लाने के लिए किसी पर पुरूष से सम्बन्ध का नाटक रचकर पति की अहं को चोट पहुँचाती है। जीवन लाल स्वयं

के अपराधों से जड़, अपनी पत्नी की सच्चाई से दग्ध होकर अपनी पराजय स्वीकार करता है। वस्तुतः उसकी इसी पराजय में भारतीयता की जय है। नागर जी ने नारी के गौरव को सदैव अक्षुण्ण रखा है।

'गिरहकट' कहानी मध्यवर्गीय समाज में व्याप्त अत्याचार और आत्महन्ता प्रवृत्ति को निरूपित करती है। हर व्यक्ति चाहे वह किसी भी विभाग में हो, अथवा किसी भी पद पर हो, अवसर से लाभ उठाना, सरकारी माल की चोरी करना, रिश्वत लेना आदि कार्य बड़े सहज भाव से करता है। कानून इन लोगों पर लागू नहीं होता । चोरी, डकैती, जबकतरी आदि अपराधों के कारण अपराधियों को जेल जाना पड़ता है, सजा भुगतनी पड़ती है। सभ्य नागरिक समाज इनसे घृणा करता है, लेखक ने दोनों प्रकार के लोगों को अपराध की भावना का अहसास करवाकर आमने-सामने खड़ा किया है ।

'गिरहकट' के रूप में सामाजिक विडम्बनाओं के और पक्ष भी खुले है। बी.ए. प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण नौजवान बेकारी के कारण जेबें काटते है समाज स्वयं उन्हें ईमानदारी से जीने नहीं देता और अपराधी चोरी करके अपनी पत्नी को शिक्षा दिलवाता है। गिरते हुए सामाजिक मानदण्डो के प्रस्तुतीकरण में भी लेखक की मानवीय आस्था सजग है। गिरहकट स्वयं सहज भाव से समर्पित होकर अपना अपराध बखानता है और समझौता करता हे। लेखक का विचार है पाप से घृणा करो, पापी से नहीं और जब सब पापी हों तब कौन किसको सजा देगा?

'सती का दूसरा ब्याह' शिक्षित नारी की स्थिति, परम्परागत बन्धनों के प्रति विद्रोह और नये जीवन मूल्यों का सुन्दर निरूपण करने वाली कहानी है। यह कहानी नारी के अन्तर्जातीय एवं पुनर्विवाह जैसे क्रान्तिकारी जीवनमूल्यों की ओर अग्रसर होने की सूचना देती है। नागर जी नारी को समाज की एक स्वतन्त्र इकाई मानते है । उसका बौद्धिक विकास समाज के उत्थान में सहायक है और उसका जीवन मानसिकता के समधरातल पर अपना जीवन साथी खोजने में स्वतन्त्र है । भारतीय समाज की मानसिकता पुरूषों के परम्परागत संस्कार टूटती

हुई रूढियाँ नये समझौते नारी की स्थिति को सुदृढ़ करते है। डॉ0 किशोरी अग्रवाल अपने पति के अत्याचारों से त्रस्त होकर पिता के घर पर ही डाक्टर की पढ़ाई करती है और डॉ0 रसगोत्रा की सहयोगी बन अपने जीवन को सेवा कार्यों में लगा देती है। उसका पति उसे अनेक प्रकार से बदनाम कर भारतीय संस्कृति के आदर्शों की दुहाई देता है और पत्नी के सतीत्व की व्याख्या करता है । उससे दुखी होकर किशोरी समाज के सामने अपने पति के अत्याचारों का बखान कर डॉ0 रसगोत्रा से अपने दूसरे विवाह की घोषणा करती है। कहानी का शीर्षक भारतीय नारी के परिवर्तन को सूचित करता है।

राजनीतिक पृष्ठभूमि पर आधारित कहानियाँ –

राजनीतिक कहानियों के माध्यम से नागर जी ने सत्ता और स्वार्थ की राजनीति पर प्रहार करते हुए राष्ट्रीय हित के संदर्भों को उभारा है। नागर जी द्वारा लिखित राजनीतिक विषय पर आधारित कहानियों में विशिष्ट चेतना, विशिष्ट राष्ट्रीयता तथा मानव की आत्मिक प्रवृत्तियों का सहज अंकन किया गया है। इस कोटि में आने वाली प्रमुख कहानियाँ है– एक था गाँधी, चौदह अप्रैल, लखनवी होली, एटम बम, जय पराजय तथा 'देश सेवा शाह मदारों की'।

'एक था गाँधी' कहानी गांधी के गरिमामय व्यक्तित्व उनके मानवतावाद तथा देश की स्वतंत्रता में उनके योगदान को विशेष रूप से रेखांकित करती है। यह नागर जी का एक अनोखा प्रयोग है। सांकेतिक शैली में नागर जी ने अपने कथ्य को सशक्त बनाया है।

'एक था गांधी' एक सशक्त एवं करारा व्यंग्य है । एक ओर जहाँ गांधी जी का व्यक्तित्व एवं उनकी आत्मा का सौन्दर्य मुखर हो उठा है, दूसरी ओर उनके क्रियाकलापों तथा परतन्त्र भारत के अन्धेरे को दूर करने के उनके प्रयत्न पूर्व पश्चिम पर उनका प्रभाव, विदेशियों की प्रतिक्रियाएँ और स्वतन्त्र भारत के सत्ता लोभी अधिकारियों के आडम्बर एवं कृत्रिमता अपनी

सम्पूर्णता में उजागर हुई हैं। गांधी सूर्यदर्शी है- सूर्य जो ज्ञान और प्रकाश का प्रतीक है। गांधी जी ने न्याय का स्वर बुलन्द किया और वर्गभेद मिटाने का यत्न किया । वे अन्याय को न्याय से जीतना चाहते थे, अतः उन्होंने सत्य, अहिंसा , को अपने हथियार बनाये। गांधी जी के न्याय और आदर्श की बातें अब केवल गांधीवादी सिद्धान्त रह गए है। इसी तथ्य पर यह कहानी व्यंग्य करती है, किन्तु नागर जी मानवता प्रेमी है और मानवता के स्थायित्व में उनका अटल विश्वास है। गांधी जी का न्याय मानवता का न्याय है। उनका स्वर अमर है। नागर जी ने गांधी जी के जीवन-दर्शन को मानवता की विजय में प्रतिष्ठित कर दिया है।

'चौदह अप्रैल' कहानी बम्बई के बन्दरगाह में शस्त्रास्त्र से भरे एक ब्रिट्रिश जहाज में आग लगाकर ध्वस्त करने की घटना पर आधृत है । इस कहानी में रचनाकार ने निष्क्रिय देशभक्ति हिंसामूलक राजनीति और मानवीय स्वार्थवृत्ति पर करारी चोट की हैं। नागर जी ने राजनीतिक व्यंग्य और आम जनता की मानसिकता का अच्छा चित्र खींचा है - "निष्क्रिय देशभक्ति के दीवाने चमत्कारिक रूप से देश की आजादी का सपना देख रहे थे।"[1] नागर जी ने हर रंग की कहानी को बेलाग होकर प्रस्तुत किया है। चाहे वह सामाजिक हास्य व्यंग्य हो या मौत की भयंकर वीभत्सता , हर चित्र सजीव है - "अफवाहों की गति से आग तेजी पकड़ रही थी। सुना, जैसे ही जहाज फटा, डॉक पर काम करने वाले सैकड़ों हिन्दुस्तानी कुली और विलायती अफसर डॉक के साथ ही हवा में उड़ गए और ऊपर से उनके अंग कट-कट कर गिरने लगे । उनकी लाशें समुद्र को पाट कर मुर्दों का एक दूसरा डॉक बनाने का प्रयत्न करने लगी।"[2] चौदह अप्रैल की घटना मनुष्य की हिंसा की प्यास बुझाने के लिये कई बार आवृत होती है, परन्तु हिंसा की ज्वालाओ के साथ ही नई राजनीति चल पड़ती है।

'लखनवी होली' के माध्यम से नागर जी ने सामाजिक और आर्थिक विडम्बनाओं पर कशाघात किया है । इस कहानी में नितान्त व्यक्तिगत परिवेश की विचारधारा एवं घटनाओं को रोचक ढंग से शब्दों में बाँधा गया है । इस कहानी न कहकर संस्मरण कहना उचित

---

1. चौदह अप्रैल, पृष्ठ5105 (सिकन्दर हार गया)

हेगा। पत्रकारों की सामर्थ्य को नकारा नहीं जा सकता। बड़े-बड़े सामर्थ्यवान व्यक्तियों की प्रतिष्ठा इनके हाथ में होती है और पत्र-पत्रिकाओं की लोकप्रियता इनके खबरों पर निर्भर करती है। नागर जी ने अपनी रचनाओं में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक , नैतिक बिडम्बनाओं पर व्यंग्य किये है ।

लेखक ने इस कहानी में राजनीति और संस्कृति के परस्पर प्रभाव पर तीखा व्यंग्य किया है । होली के अवसर पर पानी और रंग की बरबादी से सरकार परेशान है और होलियों पर भी जाने वाली गालियों से चुनाव के दिनों में पार्टियों के लिये गालियों का स्टाक खत्म हो जाता है। इनके अतिरिक्त होली पर मनों लकडी फूँक कर मूल्यवान राष्ट्रीय सम्पत्ति को नष्ट किया जा रहा है।

हिरोशिमा नागासाकी की त्रासदी पर आधारित एटमबम कहानी घिनौनी राजनीति के विरूद्ध मानवीय संवेदना और जिन्दगी के प्रति आस्था का संयुक्त अभियान है। कुछ स्पर्धी एवं स्वार्थी सत्ता प्रधान शक्तियों का संघर्ष जब राष्ट्रीय संकट बनकर लाखों असहाय, निर्दोष लोगों का विनाश करताहैतक वैयक्तिक चेतना की मार्मिकता अपना समूचा अस्तित्व लेकर इस कहानी में उफन पडी है । व्यक्ति के सपने, उसकी दुनिया, उसकी भवितव्यता समाष्टिगत पीड़ा बन गई है। हिरोशिमा और नागासाकी पर अमरीका द्वारा एटमबम डालकर सामूहिक संहार करना मानवीय इतिहास की नृशंस घटना है – डॉ0 सुजुकी के शब्दों में लेखक का मन्तव्य मूर्त है– "इन्हें क्यों मारा गया । ये किसी के दुश्मन नहीं थे। इन्हें अपने लिये साम्राज्य की चाह न थी। अगर इनका अपराध है तो केवल यही कि यह अपने बादशाह के मजबूरन बनाए हुए गुलाम है। व्यक्ति की सत्ता के शिकार है . . जापान की निर्दोष और मूक जनता ने दुश्मनों का क्या बिगाडा था जो उन पर एटमबम बरसाये गए । विज्ञान की नगई खोज की शक्ति आजमाने के लिये उन्हें लाखों, बेजुबान बेगुनाहों की जान लेने का क्या अधिकार था।"[1] नागर जी की

---

1 एटम बम, पृष्ठ-57 (मेरी प्रिय कहानियाँ- कहानी संग्रह)

आस्था की गूँज अनास्था में भी जीवन का विश्वास और सम्बल प्रदान करती है। नागर जी की जीवन के प्रति आस्था और मानवता की जय अटल है– वे हमेशा मृत्यु के अन्धेरे में जीवन का प्रकाश खोज लेते हैं – "हमे जिन्दगी को बचाना है। यह हमारा पेशा है, फर्ज है। एटम की शक्ति से हार कर क्या हम इन्सान और इन्सानियत को चुपचाप मरते हुए देखते रहेंगे1

'जय–पराजय' कहानी राष्ट्रीय एवं सामाजिक दायित्व के लिए सतत् संघर्षशील तथा नेतागिरी की यशलिप्सा के कारण पारिवारिक जिम्मेदारियों से सवर्था अलग–थलग हो जाने वाले नेता का व्यंगयपूर्ण चित्र है। क्रांतिकारी नेता जनता का अगुआ बनकर साढे तीन वर्षों की कैद से बाहर निकला हे और जनता अपने प्रिय नेता के स्वागत के लिये टूट पडी हे। फूलों के हार, चार घोडों की फिटन पर नगर में जुलूस, अखबारों के लिये फोटोग्राफरों के चित्र नगर के धनी मानी सेठों द्वारा स्वागत सम्मान उसे संकुचित कर देता है, किन्तु इस सारे शोरगुल के पीछे एक टूटती जिन्दगी है, यथार्थ का नग्न स्वरूप है। वह जनता का नेता एक साधारण गृहस्थ भी है। उसके परिवार को उसकी जरूरत पहले है। जिस परिवार को असहाय छोड़कर जनता के हितों के लिये वह जेल चला गया, वह जनता जेल से बाहर निकलते ही उसका स्वागत कर सकती है, किन्तु साढ़े तीन वर्षों तक उसका परिवार आर्थिक थपेड़ों से किस प्रकार ध्वस्त हो गया इसकी ओर किसी ने नहीं देखा नेता जी के जेल जाने के बाद जन्म लेने वाला शिशु आर्थिक अभावों में उसके आने से पहले ही दम तोड़ चुका था। वह जय–गौरव से अभिभूत टूटती जिन्दगी को करीब से देखता है। नगार जी ने सामाजिक व्यंग्य को मार्मिकता का गहरा पुट दे दिया है।

अधिकारियों एवं पूँजीपतियों के भ्रष्ट आचरण तथा स्वार्थ प्रपंचों की तिक्त अनुभूति पर आधारित 'देश सेवा शाह मदारों की' कहानी उक्त वर्गों पर सीधे चोट करती है। जमीन जायदाद के दलाल मुंशी और नगरपालिका के सदस्य एवं ठेकेदार की चालों को शतरंज के मोहरों की तरह चला

गया है और जातिभेद, वर्गभेद, अल्पमत–पूँजीपति सभी नुत्तों का प्रयोग किया गया है। गरीबों का पिछडापन दूर करने उनको ऊँचे लोभ में फँसाकर उनकी सम्पत्ति के स्वयं मालिक बनकर ये लोग स्वार्थ साधते है और पिछड़ापन दूर करने के नाम पर मरी हुई पब्लिक को शाह प्रदान बनकर मारते है।

मनोवैज्ञानिक कहानियाँ

इस वर्ग में उन कहानियों को रखा गया है, जिनमें व्यक्ति मन का वैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए चरित्रों की सृष्टि की गयी है। 'आदमी जाना अनजाना', क्लार्क ऋषि का शाप, 'आदमी। नहीं । नहीं।', 'बेबी को प्रेम कहानी', 'नाश और निर्माण', 'राजा–रानी और संतान', 'मन के संकेत' प्रमुख मनोवैज्ञानिक कहानियाँ है। 'आदमी जाना अनजाना' हिन्दू–मुस्लिम ऐक्य भावना से प्रेरित कहानी है जिसमें मियाँ एहसान अली खाँ जैसे संवेदनशील और मानवीय प्रेम के हिमायती व्यक्ति को अपने ही बेटों की साम्प्रदायिक जड़ता के सम्मुख लाचार होकर आत्महत्या का मार्ग अपनाना पडता है । निश्चय ही मानवता बड़ी वस्तु है और धर्मों की सीमा से बाहर है। नागर जी ने व्यक्तिवादी भूमिका पर हिन्दू – मुस्लिम संस्कृति के ऐक्य की स्थापना की है।

क्लार्क ऋषि का शाप कहानी में नागर जी ने बीसवीं शताब्दी के पूँजीपतियों को खटमल की संज्ञा देते हुए शोषणवृत्ति पर करारी चोट की है । यह कहानी लेखक की काल्पनिक उडान का सुन्दर सशक्त नमूना है जिसमें व्यंग्य भंगिमा विद्यमान है । यह कहानी पूँजीपतियों की शोषण वृत्ति के भयंकर परिणाम पर दृष्टि डालती है। लेखक कल्पना के पंखों पर चढकर भविष्य के उस युग में पहुँचता है , जब चन्द्रलोक के अतिरिक्त मंगललोक, वृहस्पति लोक और शुक्र लोक मनुष्य के आवागमन के सामान्य स्थान होंगे और अन्तर्राष्ट्रीय यात्राओं के समान अन्तर्लोकीय यात्रायें सुगम होगी तक विज्ञान की उन्नति के द्वारा और पुरातत्ववेताओं द्वारा इतिहास के सुदूर गर्भ में आज की सभ्यता अवशेषों में शेष होगी । नागर जी के पैने व्यंग्य ने शोषण वृत्ति पर करारा प्रहार किया है और बीसवीं सदी के पूँजीपतियों को खटमलों की संज्ञान दी

है। जो दूसरों का रक्त चूसकर मोटे होते हैं – समाजवादी धर्म मानने वाले अपने विरोधियों पर तथा उनका साथ देने वाले कुली या दास जाति के लोगों पर इन्होंने अकल्पनीय अत्याचार किये । नगरों को तबाह किया, एटम बम गिराकर सभ्यता का नाश किया। मुनाफाखोरी की प्रथा का अवलम्बन करके ही ये खटमल लोग सारी पृथ्वी का रक्त शोषण करते थे और पृथ्वीवासियों के शरीर में मृत्यु के कीटाणुओं का प्रवेश करा देते थे।"[1]

शोषकों के अत्याचारों से गरीब जनता का नामों निशान मिट गया और गरीब की आत्मा के शाप से पूँजीपतियों का राज्य उजड़ गया, वह आण्त्मा आज भी मजदूरों को रोटी देने वाली मशीनों में बसती हे, उनकी आहों में रहती है। पूँजीपतियों के विरूद्ध गरीब की आह और मानवता की पुकार भविष्य का स्वर्णयुग और उसकी संभावनाएँ इस कहानी में लेखक के आक्रोश, मान्यताओं और भावी विकास की आस्थाओं को प्रकट करती हे। लेखक ने विश्लेषणात्मक शैली में सामाजिक राजनीतिक व्यंग्य को जिस शिल्प में ढाला है, वह परिचित होते हुए भी प्रहारक और मार्मिक है।

'नाश और निर्माण' में वैयक्तिक अन्तर्मंथन से मन की पीड़ा और व्यक्तिजीवन की संवेदनशीलता का संश्लिष्ट चित्र निर्मित हुआ है । नागर जी ने अपनी कहानियों में एक ओर सामाजिक समस्याओं राष्ट्रीय उलझनों, आदर्शों, रूढ़ियों, परम्पराओं के चित्रण से आगे जाकर मानवतावाद का सर्वमान्य सिद्धान्त प्रतिष्ठापित किया है दूसरी ओर मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन की संवदेनशीलता, नारी की पीड़ा, हृदय की कोमलता एवं रोमानियत को भी उतनी ही मार्मिकता से अंकित किया है। मीनी इस कहानी की नायिका है, वह आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर है, वह पत्रकार है। उसने अपने सपनों की मंजिल गिरीश नामक पुरूष की छाया में खोज

---

1 क्लार्क ऋषि का शाप–

ली थी और हृदय के समस्त अभावों को भावनाओं से भर लिया था, किन्तु हृदय ने अनाधिकार चेष्टा की थी। गिरीश विवाहित था और वह उससे विवा कर स्थायो छाया नहीं दे सकता था। वह इतना समझदार अवश्य था कि मीनी के जीवन को उसने कुर्बान नहीं होने दिया और अपनी गृहस्थी की प्रसन्नता के लिये उससे किनारा कर लिया ।

गिरोश नारी की शक्ति से प्रेरणा ले सकता है, वह विवाहित होकर भी एक कुमारी से प्रेम कर सकता है, किन्तु संसकारों और सामाजिकता का ध्यान अवश्य है– "भाव और अभाव अब तो दोनों ही मर गए है। मैं तुम्हें अपनी पत्नी नहीं बना सकता, मीनी, क्योकि पत्नी के रूप में मेरी कल्पनायें तृप्त हैं, सुखी है, शांत है ..... । मैं पुरूष हूँ , मेरे लिये फिर भी सात खून माफ हो जायंगे । मगर तुम स्त्री हो मीनी, समाज तुम्हे अनैतिकता का दंड देगा, भले ही तुम कितनी स्वतन्त्र हो, नीति सभ्यता का बंधन है।"[1] नागर जी ने कहानी को घटनाओं के तंतुजाल से बचाया है। वे काल्पनिक पात्रों को यथासम्भव यथार्थ धरातल पर टिकाते है और परिचित वातावरण को यथासम्भव यथार्थ संस्पर्श देकर आत्मीय बना देते हैं। मीनो कविताओं के माध्यम से अपनी वेदना को बांध लेतो हे– रोमानियत के रंग में रंगना, इन कविताओ के सहारे अपने सपनों की पूर्ति पाकर उस भाव में रम जाना उसे सुखकर प्रतीत हो रहा था।"[2] नागर जी ने एक पात्रीय मनोचिन्तन द्वारा सामाजिक सभ्यता, मानव हृदय की विवशता, नारी की पीड़ा और घुटन, मन की सतहों को छूने वाली स्वस्थ दृष्टि, उच्च स्तरीय वैचारिकता को रोमानी पृष्ठभूमि में संवारा है।

'राजारानी और संतान' में बालमनोविज्ञान के आधार पर बच्चों के क्रिया–कलापों के द्वारा उनकी निश्छलता और सरलता की हृदयस्पर्शी झाँकी प्रस्तुत हुई है। बच्चे कहानी बड़े शौक से सुनते है। उनकी दादी, नानी आदि उन्हें राजा, रानी और उनकी सन्तान से ही कहानी

---

1 नाश और निमोण– पृष्ठ 74–75 (पाँचवा दस्ता और सात कहानियां)

2 नाश और निर्माण– पृष्ठ–76 (पांचवा दस्ता और सात कहानियाँ)

का आरम्भ करते है । बच्चे काल्पनिक जगत में बिहार करते है और राजा, रानी और उनकी सन्तान के माध्यम से अपनी चेतना और ज्ञान को विस्तार और संदर्भ देते है।

'मन के संकेत' भी मनोवैज्ञानिक कहानी है। यह एक भावना प्रधान कहानी है जिसमें केन्द्रीय नारी पात्र रोहिणी के व्यक्तित्व के ताने बाने से प्रेम की तीव्र अनुभूति का मनोविश्लेषणात्मक चित्रण किया गया है, बाबू राजकिशोर का रोहिणी को शरण देना, उसको जमींदारों से सम्बन्ध, धन का लोभ, शिशुपाल सिंह का नजर कैद होना, बच्चे के विचित्र ज्वर में पति की छाया और फिट अदृश्य मूँज से बंधकर रोहिणी का पैदल चलकर पति के पास पहुँचना, मार्ग में मिलने वाले "छैला युवक का सभ्य हो जाना आदि आदि नाटकीय दृश्यों का संयोजन चित्रपटीय संयोजन का प्रभाव डालता है।

आंचलिक कहानियाँ

नागर जी की प्रायः सभी कहानियाँ लखनऊ की पृष्ठभूमि पर आधारित है। लखनऊ का हर रंग उनके उपन्यासों, कहानियों में बिखरा पड़ा है। अतः अनेक आलोचकों ने उन्हें आंचलिक कथाकारों उद्देश्य आंचलिकता की सीमा से काफी आगे है । इस दृष्टि से नागर जी को आंचलिक कथाकारों की श्रेणी में रखना उचित ही है, किन्तु उनकी कुछ कहानियों में आंचलिकता का विशेष पुट आ गया ळै यद्यपि हम फिदाए लखनऊ संग्रह की सभी कहानियाँ इस कोटि मे रखी जा सकती हे तथापि "पाँचवा दस्ता" और सात अन्य कहानियाँ संग्रह की 'एक दिल हजार दासता' तथा नबाव साहब शीर्षक कहानियों की आंचलिकता विशेष रूप से रेखांकनीय है ।

'एक दिल हजार दासता' कहानी में आंचलिक चित्रण का एक उदाहरण ध्यान देने योग्य है – " मैंने अपने बचपन में उस लखनऊ की आखिरी उड़ती हुई सी झलक देती है जिसमें ओढनियों पर आशिक होने वाले फनकार रहते थे। कनकौव्यों में नोट चिपटाकर उड़ाये जाते

थे । कनकौव्वों में नोट चिपटाकर उड़ायें जाते थे। शाम को चौक के संकरे बाजार में चिकन के कुर्ते, दुपलिया टोपी, दुपट्टा, धवेती या छकलिया अंगरखा, नुक्केदार दुपलिया, चूड़ीदार पायजामा, पट्टेदार बाल और सुरमई आँखों का मेला लगता था। उनके साथ रेशमी रूमालों से ढँके हुए मुठ्ठियों में भींचते हुए हजरत बटेर भी तशरीफ लाया करते थे।[1]

लखनऊ का परिवेश नागर जी की समस्त चेतना पर छाया हुआ है। लखनऊ ने उन्हें प्रतिपल गतिशील किया है । एक सम्मोहक अनुभूति की तरह उन्हें हर ओर लखनऊ नजर आता है –

'खुदा आबाद रखे लखनऊ को फिर गनीमत है
नजर कोई न कोई अच्छी सूरत आ ही जाती है ।"

"एक लफ्ज लखनऊ में ये तमाम तस्वीरें सिमटकर सदा मेरे साथ रहती हे। आदमी अपने माहौल से जुदा होकर कुछ भी नहीं । वह जिस जगह रहता है, वहाँ की आबो हवा, कुदरत के नजारे, वहाँ का इतिहास, रीति रिवाज, रहन–सहन, सब कुछ जाने अनजाने तौर पर उसके जीवन का अंग बन जाता है। नागर जी ने लखनऊ के प्रति सारी आत्मीयता अतीत स्मृतियों और वर्तमान आसत्तियों के साथ एक दिल हजार दासतां, में उंडेल दी हे। यह संस्मरण नुमा रोचक कथा रोमांचक अनुभवों से युक्त है । बरसाती मौसम, टीम की कोठरी और आबादी से दूर कोल्हापुर का शान्त एकान्त वन, उस पर मौलाना और पंडित का साथ और नागर जी की किस्सागोई शैली में लखनऊ की यादें सजीव हुई हैं।"[2]

---

1 पाँचवा दस्ता और सात अन्य कहानियाँ, पृष्ठ–117

2 डॉ0 सुदेश बत्रा – अमृतलाल नागर : व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त, पृष्ठ–211

नागर जी ने बडे इत्मीनान और धैर्य से लखनऊ की संस्कृति को शब्दों का जामा पहनाया है । वस्तुत. इस कहानी को कथावस्तु में न बाँधकर रेखाचित्रों के संकलन रूप में प्रस्तुत किया गया है । नागर जी की अनुभूतियों की मार्मिक कथाओं का संकलन "एक दिल हजार दाहतां, में है । वस्तुतः एक दिल हजार दासतां में नागर जी के अनुभवों और लखनऊ प्रे2म ने कल्पना की उडानों को विसतार दिया है। इसे एक कहानी न कहकर वर्णन, रेखाचित्रों संस्मरणों का संश्लिष्ट चित्र होने के कारण ललित निबन्ध कहना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

नवाब साहब में नागर जी ने लखनऊ के परिवेश की पृष्ठभूमि में वहाँ की संस्कृति और आचार-विचारों का चित्र खीचा है। लखनवी भाषा अपनी नजाकत और मिठास के लिये प्रसिद्ध है । इसी मिठास की नजाकत की आड़ में लखनवी गप्पो की उड़ानों का जायजा लिया गया है। कलकत्ते के भीड भरे चौराहे पर लेखक की इकलौती कमीज फटी तो उन्हें महसूस हुआ, गोया नवाबों की नवाबी चली गई और उस अजनबी माहौल में दो लखनवी अपनी वर्तमान हालत भूलने के लिये अपना सुनहरा इतिहास लच्छेदार बातों से बयान करते हैं - "अरे वह दिन हवा हुए, जब पसीना गुलाब था।" और लेखक महोदय अपने साथी नवाब साहब की नवाबी के कायल बनकर उनकी हाँ में हाँ जोडते चले जाते है। अन्त में बरसात से वे एक घर में शरण लेते हे जिसे नवाब साहब अपने एक परिचित का घर बतलाते है किन्तु वह उनका ही घर था। वहाँ विपन्नता का साम्राज्य था। अपना भेद खुलने पर नवाब साहब अपनी पत्नी को अपनी रखैल बतलाते है और लेखक महोदय असलियत समझकर मन की मन मुस्कराते हुए नीचे उतर आते हैं।

लखनऊ की संस्कृति की प्रमुख विशेषता नवाबी सभ्यता है और स्वयं को नवाब बाजिद अली शाह का परपोता बनाने वाले नवाब साहब की खुश गप्पियों पर लेखक ने नहले पर दहला चढ़ाकर हास्य का एक अनोखा रंग चढ़ा दिया है। नवाब साहब यदि अपने कल्पित

मामूजाद भाई के बेटे, महरी और लाल बटेर के बारे में पूछते है तो तस्लीम लखनवी साहब पहली ही बार उनका नाम सुनने पर भी अपनी शान रखने के लिये बात पर बात जड़ते चले जाते है – "और वो अब्बासी महरी? भई बडी नेक है. . " "जी हाँ, क्या कहने हैं उसके भी । गजब का इखलाक हे और ऐसी पुरमजाक कि वाह । . . . मैं कलकत्ते आने लगा तो तांगा रोक के बोली, मेरे लिये, मुर्शिदाबादी साडी लाइयेगा । देखिये, भूलियेगा मत।"[1]

महरी के हालचाल की बयानी इस जिन्दादिली के साथ की गई है कि पाठक मुस्कराए बिना नही रहता। नागर जी के हास्य में कोमलता और सजीवता के साथ–साथ वातावरण के उपयुक्त व्यंग्य की स्थापना मिलती है। इस कहानी में सामाजिक कुंणओं एवं आर्थिक विषमताओं द्वारा उत्पन्न विशेष मानसिक परिस्थितियों की प्रतिक्रियाओं का चित्रण मिलता है। कहानी में उक्ति– वैचित्र्य एवं शब्द माधव द्वारा उचित वातावरण की सर्जना की गई है। इसके अतिरिक्त हाजी कुल्फीवाला, नजीर मियों, बनफशा बेगम के नूरे नजर, जुलाब की गोली, दफीने की खुदाई, जन्तर–मन्तर आदि कहानियों में लखनऊ के परिवेश का ही जीवंत चित्रण हुआ है । नागर जी ने अपने एक कहानी–संग्रह का नाम ही "हम फिदाए लखनऊ'रखा है।

नागर जी ने अपने अधिकांश कहानियों में सामाजिक, राजनीतिक हास्य व्यंग्य का अद्भुत सम्मिश्रण किया है । वास्तव में नागर जी हास्य–व्यंग्य और गप लिखने के आर्ट में चकल्लस के सम्पादन काल से ही लोक विश्रुत है । नागर जी के हास्य–व्यंग्य की सबसे बडी विशेषता यह है कि वे अपने पाठकों को हास्य–व्यंग्य के बहाने यथार्थ के अत्यन्त निकट पहुँचाते है । इस सम्बन्ध में उन्होंने लिखा भी है – "मैंने यथार्थ के जिस चक्रव्यूहों– भरे दुर्गभ पथ में प्रवेश किया था, उस पर बेझिझक आगे बढने के लिए हास्य रस ने मुझे दम

---

1 नवाब साहब (एम दिल हजार अफसाने) अमृत लाल नागर राजपाल एण्ड सन्ज, 1991, पृष्ठ–93

दिया । जीवन की सजीव शाब्दिक फोटोग्राफी से आरम्भ करके ही मैं यथार्थ को उसकी विभिन्न सतहों पर विविध रूपों में पहचानने का रास्ता पा सका । [1]

भारतपुत्र नौरंगी लाल, कालदण्ड की चोरी, तुलाराम शास्त्री, पीपल की परी, संग्रह की सभी कहानियॉ हास्य– व्यंग्यमूलक हे, किन्तु तुलाराम शास्त्री, भारतपुत्र नौरंगीलाल, श्री श्री कथा बाप बैअे की , मुंशी घिर्राऊ लाल, छापे के हुरूफ, डॉ0 फरनीचर पलट, डॉ0 साईन बोर्ड, हमारे पडोसी मुंशी बख्तावर लाल, चकल्लस, बनफसा बेगम के नूरे नजर, कालदण्ड की चोरी,शीर्षक कहानियॉं हास्य– व्यंग्य की मोहक फुलझडिया है।

नागर जी के हास्य–व्यंग्य कहानी का सुन्दर उदाहरण 'छापे के हुरूफ' कहानी है। अधेड उम्र के कम्पोजीटर युवा वर्ग की रसवन्ती कविताओं पर चिढते हैं, लाज शर्म की दुहाई देते हैं, किन्तु ऐसी ही एक कविता के साथ स्वयं को कोकशास्त्र बटी के विज्ञापन में जोड़ते है। उनकी युवा पत्नी एक युवा कवि के साथ भाग गई है। वे सोचते है कि शायद इस विज्ञापन में उनके बूढ़े से जवान होने की खबर पाकर उनकी पत्नी लौट आए । अनमेल विवाह की ये विसंगतियॉं भारतीय समाज के भुक्त भोगियों को सदा से भोगनी पडी है और इनके ऐसे ही परिणाम सदा समाज के हास्य–व्यंग्य के आलम्बन बनते है । नागर जी ने पूरी नाटकीयता के साथ अधेड कम्पोजीटर के जीवन का रहस्य अन्त में प्रकट किया है । अवधी भाषा का प्रयोग और कथानक की नाटकीयता एवं संवादों की हास्यजनक चटुलता ने कहानी के शिल्प को सुन्दर, सुगठित और प्रभावपूर्ण बना दिया है ।

'डॉ0 फरनीचर पलट' कहानी में आर्थिक विवशताओं से जूझते हुए एक डाक्टर की आप बीती का रोचक अंकन किया गया है। अनेक डिग्रियों से युक्त डाक्टर साहब की प्रैक्टिस ठप्प है और वे घोर निर्धनता में मायूसी के दिन गुजार रहे है। विपन्नता की इस अवस्था में उन्हें केवल अपनी डिग्रियों से ही गौरव और सन्तोष प्राप्त होता है। उनका एक मात्र कम्पाउण्डर

---

1 भारत पुत्र नौरंगीलाल, पाठक परमेश्वर से, पृष्ठ–7

और नौकर उनकी दुकान में किसी तरह टिका है। वह रोज उनके फर्नीचर को पलटता रहता है और उनकी घुड़कियोंको बड़ी बेअदबी से सुनता रहता है, उसे डाक्टर साहब का कोई डर नही– डिगरियाँ आप की अब घिस गई साहेबु बेकार हो गई। डाक्टर साहब की दुकान की ओर कोई मरीज झाँकता भी नहीं, देहाती अशिक्षित लोगों को भी रामू फुसलाकर दुकान की तरफ खींचता है बात तो सुनते ही जाओं यार। इनकी बात की कोई कीमत थोडे ही है और नौ डिग्रियों वाले डाक्टर देहातियों पर रौब डालने के लिये कहते है। .... प्लास्त्तर चढाने की फीस एक हजार रूपये लूँगा और दिन में मुझे आज सत्तर मरीज देखने है इसलिये ...... "मगर देहाती चतुर थे" – ये लोग कोनो बड़े जालियाँ है, हम लोगन का फँसाय रहे है" कहकर भाग निकलते है और घर आई लक्ष्मी लौट जाती है । कोई काम न होने पर डाक्टर साहब रामू से फर्नीचर पलटवाते रहते है , शायद शो अच्छा हो जाने से प्रैक्टिस चमक जाये और रामू उनकी विवशता से लाभ उठाकर दवाखाने की दवाइयाँ चुरा–चुरा कर बेचता रहता है। जब कुछ नहीं बचता तो डाक्टर को कुल्फी बेचने की सलाह दता है। मनुष्य आर्थिक विपन्नता में किस सीमा तक दयनीय हो जाता है, उसका चित्रण इसमें है।

'डाक्टरी साईन बोर्ड' कहानी शिक्षा की डिग्रियाँ होने पर भी बेरोजगारी, आर्थिक विपन्नता और उससे उत्पन्न मनुष्य की दयनीय मनोस्थितियों के करूण चित्र द्वारा हास्य की सर्जना की गई है। यह हास्य कटु नहीं, कोमल , सहानुभूति परक औरे सरल है। डाक्टर साहब की प्रैक्टिस चलती नहीं, बीबी अपने बच्चों को लेकर मायके में है, कम्पाउण्डर इनकी बची खुची दवाइयों और स्टेथोस्कोप ले गया और अब साइन बोर्ड की सब डिग्रियाँ घिस गई। डॉ0 मक्खन लाल शर्मा बिगड़कर मक्खन ला बेशर्म बन गये है । डाक्टर की बेचारगी और मन की दयनीय अवस्था, लोगों द्वारा उन पर होने वाले मजाक एव उनके सीधेपन का नाजायज फायदा उठाना डाक्टर साहब जैसे दयनीय हास्य जनक व्यक्तित्वों की स्थिति शहर की व्यस्ततम पुरानी गली

मुहल्लों में ही खप सकती है। नागर जी ने पृष्ठभूमि के रूप में इन गली मुहल्लों के कस्बाई व्यक्तित्व को एवं पुरानी महाजनी वृत्तियों को अंकित किया है। नई बदलती हुई मान्यताओं के अनुसार डाक्टर को शिक्षिता पत्नी सम्मानपूर्वक बच्चों को स्वयं कमाकर पालती है।[1] इस कहानी में नागर जी ने डाक्टर की डिग्रियों जैसे श्री बी.पी (डाक्टर बम पुलिक) श्री एम ए (डाक्टर आफ मुहल्ला अनाथालय) के माध्यम से मजेदार हास्य की प्रस्तुति की है। यह मस्ती नागर जी की कहानी-शैली कीप्रमुख विशेषता है।

नागर जी ने अपने रचनाकाल के प्रारम्भ में 'चकल्लस' नामक हास्य पत्रिका का सपादन भी किया है । इस कहानी में नौजवान पीढ़ी द्वारा दूसरों को परेशान कर मजे लेना अथवा सामान्य चकल्लसी प्रवृत्तियों का विवेचन किया गया है। लेखक ने इन प्रवृत्तियों का अकन दैनिक जीवन की क्रियाओं क अनुरूप ही किया है। कहीं-कहीं प्रसंगेतर प्रसंगों को बलपूर्वक खींचना अस्वाभाविक व अरूचिकर भी हो जाता है ।

चकल्लसी नशेबाजी में किसी दहाती बारात की शामत आ जाये तो एक अच्छा खासा तमाशा खड़ा हो जाता है । ऐसा ही रोचक तमाशा लेखक ने पात्रों की स्वाभाविक भाषा में अंकित किया है। दूल्हें को तंग करके, बारातियों को सीट न देकर और अन्त में अपनी दुल्हिन के पास खड़े होने को भी शोहदेपन का अपराध बनवाकर वर की गाडी छुड़वा देना, उसे पुलिस के हवाले कर देना, एक सजीव प्रसंग की कल्पना सहज ही हास्योत्पादक है। नागर जी की कई कहानियाँ विवरणात्मक बन जाती है। प्रसंगों की उद्भावना जहाँ कहानी का मजा दे जाती हे, वहीं उनका व्याख्यात्मक विवरण कहानी को आलेख या संस्मरण बनाकर रस भंग कर देता है।

---

1 डॉ0 सुदेश बत्रा- अमृतलाल नागर : व्यक्तित्व, कृतित्व और सिद्धान्त पृष्ठ-214

"बनफशा बेगम के नूरे नजर"कहानी भी हास्य पर आधारित है। इसमें लखनऊ के मुस्लिम समाज और विशेषकर अस्तप्राय: नवाबी जीवन के खंडित चित्रों का खाका खींचा गया है। भाषा और परिवेश की सजीवता ने कहानी को यथार्थ रंग दिया है – यों तो गुलजार बाग में अब न गुल रहे और न बुलबुल । एक मील के घेरे में उनकी दूरी चार दीवारी की ईंटे जाबजा बिखरी पडी है।"[1] शराबी और विलासी नवाब को परस्त्री से मुक्त कर उनकी व्याहता बेगम ने बड़ी साध से एक पुत्र प्राप्त किया और उसे जग की छाया से दूर रखा । तीस वर्ष तक बाहर की हवा न लगने दी । डाक्टरों की सलाह से जब दुन्ने मियाँ को अपने युवा होने का अहसास हुआ तो वे दुल्हन भी ले आए किन्तु दुर्भाग्य से वह दुल्हन लड़की से लड़का बन गई आयेर अब दुन्ने मियाँ की माँ डाक्टरों से अपने लड़के को लड़की बनाने की प्रार्थना करती है ।

यह कहानी हास्य के रंग में रंगी हुई है तथा माता के अंध स्नेह और प्रतिक्रिया स्वरूप उत्पन्न स्थितियों को उजागर करती है । माँ का यह प्यार एक बारगी अस्वाभाविक प्रतीत होता है और निश्चय ही यह अस्वाभाविकता ही हास्य को उत्पन्न करती है किन्तु इसे स्वाभाविक रंग देने के लिये लेखक ने बेगम के व्यक्तिगत जीवन के सूनेपन को दर्शाया है। बेगम के मन की कुंठायें पुत्र के विकास के लिये एक विडम्बना बन जाती हैं ।

नागर जी की रचना परिधि में कुल्फीवाला, सब्जीवाली, अस्तप्राय: नवाब, फटेहाल डाक्टर आदि पात्रों के साथ सम्पर्क में आने वाले हर व्यक्ति का बहुरंगी रूप समाहित हो गया है। "मुंशी बख्तावर लाल" उर्दू भाषा की गप्पबाजी की श्रृंखला में ही एक नई कड़ी है। नागर जी को उर्दू की रवानी में कमाल हासिल है और उनकी भाषा ऐसे बख्त वाले उत्तराधिकारियों के माध्यम से नवाबी जमाने की झलक दिखा जाती है । मुंशी जी ने लेखक को बचपन में गोदी खिलाया है जबकि लेखक गोदी की उम्र में लखनऊ रहे ही नहीं। गप्पबाजी का आरम्भ

---

1. बनफशा बेगम के नूरे नजर: (एक दिल हजार अफसाने) अमृतलाल नागर, राजपाल एण्ड सन्स, 1991, पृष्ठ–311

यही से शुरू हो जाता है । मुंशी साहब नवाब वाजिद अली शाह के परम सहयोगियों में थे। उनका जमाना गुजरे अरसा हुआ मगर मुंशी जी उनकी मित्रता का बखान आज तक जोर शोर से करते है। गप्पबाजी का सिलासिला कथा को आगे बढाता चलता है। स्वराज्य आन्दोलन के समय में अपनी झूठी अकड और लन्तरानियों के चक्कर में पुलिस द्वारा पकड लिये गए तो अपनी गलतियों की माफी मांगकर छूट पाये किन्तु गप्पबाजी की आदत सहज ही छूटती नहीं। "मुंशीजी ने अकड़कर फरमाया, "बल्ला, आप भी कैसी बातें करते हैं हजरत।" और फिर मूंछों पर ताव देते हुए बोले, "भला जिस काम में मुंशी बख्तावर लाल हाथ डालें और वह पूरा न हो। लाट साहब ने फौरन ही हुक्म दिया कि कागजात तैयार करों। बस, अब कागज तैयार होने भर की देर है, कि सौराज हो गया । अब आप यह ख्याल फरमाए कि नवाब वाजिद अली शाह साहब, खुदा उन्हें " फिर एकाएक घबराकर बोले, "नहीं–नही, वह सब कुछ नहीं, आप उन्हें कुछ ख्याल न कीजिएगा हजरत। अच्छा इस वक्त मुझे जरी एक काम है।"[1]

"तुलाराम शास्त्री" भी दैनान्दिन जीवन के अनुभवों को प्रस्तुत करती है जिसमें लेखक के परिवार के सदस्य एवं निजी जीवन सभी एक किस्सा बनकर सामने आते है । तुलाराम लेखक के नौकर का नाम है। उन्होंने उसे शास्त्री जी की उपाधि दे रखी है। उसके स्वभाव कार्यो को उसी की भाषा से मंडित कर सजीव रेखाचित्र खींचा गया है। यह रेखाचित्र हास्य प्रधान है। प्रायः गांव के अशिक्षित लोग शहरी सभ्यता की चकाचौंध में खो जाते हें और वहाँ की नकल किया करते है। नागर जी ने अपने घर के इस प्राणी के व्यक्तित्व को रेखांकित कर दिया है और गौने की तलब में तुलाराम शास्त्री की विशेषताओं को ही विस्तार दिया है। घर में विवाह की रौनक, व्याह के गीत, उनका प्रभाव और लेखक की बौद्धिक व्याख्या साथ ही रस उमंग भरे वातावरण का नौकर पर प्रभाव इन सबका वर्णन, वर्णनों और संवादो

---

1. हमारे पड़ोसी मुंशी बख्तावरलालः एक दिल हजार अफसाने पृष्ठ– 78

के सहारे नागर जी ने प्रस्तुत किया है।

" **मुंशी घिर्राऊलाल** " हास्य और गप्पबाजी का सुन्दर चित्र है । बडबोले, गप्पी लोगों की गप्पें और साहित्यिक गोष्ठी में परिचित साहित्यकार, वातावरण की आत्मीयता और बहुत ही नाटकीय ढंग से गप्पों की हकीकत से पर्दा उठाना– नागर जी बरबस ही हास्य की स्थिति उपस्थित कर देते हैं। वे परिस्थितियाँ गढ़ते नहीं, स्वयं ही ऐसे व्यक्तित्व पुरानी डींगें हांकने और पुराने जमाने के नवाबों का ठाठ, अन्त में उनकी निहायत बोसीदा स्थिति को स्पष्ट कर देते है।

कालदंड की चोरी कहानी एक हास्य प्रधान किन्तु कालपनिक लम्बी कहानी है। जासूसी, तिलस्मी और गप्पबाजी के मिश्रण से इसका ताना बाना बुना गया है। विश्वविख्यात जासूस यमराज' कालदंड की चोरी का पता लगा रहे है। जासूस राबर्ट ब्लेक, सेक्सटन ब्लेक, शर्लाक होम्स, पंडित गोपालशंकर, सांवल सिंह अर्थात् हिन्दुस्तानी और अंग्रेज मिलकर कालदंड की खोज कर रहे है। पृथ्वी के करिश्मों के साथ-साथ देवलोक का दृश्य भी प्रस्तुत है। शुद्ध मनोरंजन की दृष्टि से लिखी गई इस कहानी की कल्पना वाकई बड़ी मजेदार है। यदि यमराज का कालदंड ही चोरी हो जाय तो सारे संसार का कार्यक्रम ही बदल जाये। हर विचार, बाद का नयावन और कुंठाओं से त्रस्त आज की सामान्य जनता व्यंग्यात्मक रूप से प्रस्तुत हुई है। अन्त में शिवजी के शब्दों में कहानी का मन्तव्य मूर्त हुआ है – "भूखे नंगों को नये पुराने वर्ग भेदों में न बाँटो । अपना संयुक्त मोर्चा बनाकर जग जीतो। स्वयं महाकालेश्वर तुम्हारे साथ है, कालदंड वापिस लौटा दो ।[1]

नागर जी की आरम्भिक रचनाओं में से पाँचवां दस्ता एक लघु उपन्यास के कलेवर में रचित है किन्तु इसे लघु उपन्यास की अपेक्षा लम्बी कहानी कहना अधिक उपयुक्त होगा–

---

1. कालदंड की चोरी – एक दिल हजार अफसाने, पृष्ठ– 413

क्योंकि उपन्यास का रचना–वैचित्र्य और वैविध्य एवं अर्थगर्भित विशालता के स्थान पर इसमें कहानी की सरलता, ऋजुता और एकरूपता के ही अधिक दर्शन होते है। इस रचना में लेखक का आदर्शवादी दृष्टिकोण ग्रामीण संस्कृति एवं राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य के यथार्थ संस्पर्शो को छूता हुआ अधिक उभर आया है। गहन उद्देश्यों का बिखराव और संगुफन इसमें नहीं मिलता अपितु किसी एक अनुभूति को व्यापक परिवेश दे दिया गया है अपनी विचार भावनाओं को स्वाथ और स्वाभाविक रूप से चित्रित किया गया है। कहानीकार ने जीवन की एक संवेदनशील अनुभूति को सरल शब्दों में कुशलता से बाँधा है। सिमरौली गांव की अपनी सहज सभ्यता और संस्कृति है, जहाँ महाजनों किसानों के वर्गभेद भी है और शहरी सभ्यता का आभास भी छाया डालने लगा है। लोग पूँजी के बल पर एक दूसरे से छोड़ लेते हुए "ऊँचा" कहलाने की फिक्र में रहते है। ऐसे में एक प्रतिष्ठित किसान की लड़की का विवाह एक फौजी कप्तान से हो जाना कम आश्चर्य जनक न था। अठारह वर्षीया लड़को तारा इक्यावन वर्षीय फौजी कर्नल से विवाह कर रानी बन गई। लेखक ने यहाँ आदर्शवादी दृष्टिकोण के सहारे एक फौजी के मन में ग्रामीण सरल बालिका को वधू रूप में ग्रहण करने की इच्छा को प्रस्तुत किया है। वह फौजी जो देश–विदेश की सुदूरवर्ती सीमाओं को लांघकर जिन्दगी को एक निश्चित लीक पर धकेल कर घर की छाया की इच्छा करता है किसी अपने को चाहना करता हे। जो सैकड़ो बार नारी शरीर का उपभोग कर चुका है , जो शहरी सभ्यता की चंचलता से थक चुका है, वह उम्र की ढलान पर एक पर्णकुटी में विश्राम कर शराब से ऊबकर शीतल जल से व्यास बुझाना चाहता है। एक ग्रामीण बाला के अतिरिक्त यह सारल्य अन्यत्र कहाँ मिलेगा अतः वह अपनी वधू के पवित्र लाजवन्ती रूप के गौरव में बंध सा जाता है। अड़तालीस घंटे के अल्टीमेटम में विवाह करके वह एक परायी बेटी को रानी बहू बनाकर अपना सब कुछ उसे दे जाता है। उसे नई सभ्यता की शिक्षा देने के लिए एक मास्टरनी की व्यवस्था की जाती है। छः महीने बाद जब वह वापिस लौटता है तो उस ग्रामीण बाला को स्वाभाविक गरिमा से उब चुप हो जाता है। उसके जीवन की सारी कृत्रिमता और मलिनता विगलित हो जाती

है। दूसरी ओर अठारह वर्ष तक विवाह न हो पाने के कारण जो लड़की माता-पिता और गाँव वालों के लिये बोझ समझी जाती थी, वही अचानक इस तरह का सौभाग्य पाकर अपने में ही सिमट जाती हे। माता-पिता और गांव वाले उसकों रानी का मान देते हैं। उसके अन्तर्द्वन्द्व का यथार्थ और सजीव चित्रण किया गया है। यह विशेष मान उस सहज नहीं रहने देता, उस पर स्वयं को अपने पति के अनुकूल न पाने के कारण वह हीनता के भार से दबी रहती है। उसकी शहरी शिक्षिता मास्टरनी एक अशिक्षित ग्रामीण नारी का इतना सुख वैभव देखकर इसे अपने प्रति अन्याय समझती है, किन्तु ग्रामीण बाला में शिक्षा और अनुभव एवं सुहाग गौरव के द्वारा नई जागृति आजी है और वह स्वाभिमान एवं आत्मविश्वास संजो लेती हे, अपने पति को स्वयं पत्र लिखती है उसका यह गौरवदीप्त रूप अन्त में एक दम उजागर हो गया है। कल्लू धोबी अपनी पत्नो के हठ के कारण उसे कप्तान साहब की मोटर दिखाने रात को लाता है और वे गरीब भोले इन्सान उसमें बैठकर सुख स्वप्नों में लीन हो निद्रामग्न हो जाते हैं किन्तु लोगों द्वारा पकडे जाने पर उन पर जासूस होने का आरोप लगबाया जाता है और उनकी पिटाइं की जाती है । सहृदय ग्रामीण नारी तारा का साहस ही उन्हें तब बचाता है। जाते जाते कल्लू धोबी के कहे गये शब्द इस उपन्यास के नाम को सार्थक, सिद्ध करने का प्रयत्न करते है। " मार से ज्यादा मुझे इज्जत का गम है। गरीब की सच्ची बात की भी बड़ों में कदर नहीं ? मैं गरीब हूँ तो इसलिये पाँचवाँ दस्ता हो गया और जो बड़े लोग है, आपस में एक दूसरे का गला काटते हैं, आग लगाते है, सारी खिलकत को उजाड़ते है, उन्हें कोई पाँचवा दस्ता नहीं कहता। वाह रे इन्साफ। "[1] इन शब्दों में उपन्यास का उद्देश्य सन्निहित किया गया है। अमीरी और गरीबी के भेद को प्रकट किया है। इस लम्बी कहानी में पूँजीवाद का स्वर बहुत गहरा नहीं है, किन्तु अन्तिम प्रसंग द्वारा ही इस स्वर को प्रमुखता दी गया है, अन्यथा एक सीधी कहानी के सरल चित्रण को फौजी पृष्ठभूमि और अहिंसक चिन्तन

---

1 पांचवा दस्ता, पृष्ठ- 57

दिया गया है । तारा के शब्द लेखक के इसी अहिंसक चिंतन के पोषक है – पॉंचवां दस्ता इसमें नहीं, हमारे मनों में है। एक दूसरे से डर, संदेह और झूठे घमंड का जोम– यहीं तबाही लाता है। बिना सोचे समझे झूँठे शक प बेचारों की दुर्दशा कर डाली ।"[1]

लेखक का चिन्तन राजनीति, लड़ाई और मह्ँगाई के संदर्भों में जीवन को व्यंजित करता है– "जब तक पैसे का बँटवारा ठीक ठीक न होगा। दुनिया इसी तरह अमीरों और गरीबों में बँटती जायेगी । पैसे वाला चाहता है कि जितनी तेजी के साथ उनका मन सारी दुनियां पर छा जाता है, उतनो ही तेज रफ्तार से वह दुनियां का मालिक हो जाये। हजार तरकीबों से वह अपनी ताकत बढ़ाता है, पैसे की ओहदे की ताकत । उस ताकत के जोश को आत्माभिमान का नाम देकर वह शराफत के साथ अपना गुरूर बढ़ाता है, गुस्सा बढ़ाता है। उसके ‘गुरूर, गुस्से और नफरत की रफ्तार उसके मन की तरह ऊँची और तेज होती जाती है। पूरी ताकत के साथ वह दुनियां से नफरत करता है, वह दाम बढाता है , टैक्स बढाता है , डंडे गोलियां और बमों की बरसात को और भी तेज करता है।"[2] मनुष्य के स्वार्थ के अंधे खेल में राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सत्य खोजना अत्यन्त कठिन कार्य है। नागर जी का चिन्तन वैयक्तिक स्तर पर मुखरित हुआ है। यह लम्बी कहानी एक सीधा सपाट चिंतन युक्त, सरल प्रभाव पाठक के हृदय पर दौड़ती है। तथ्यों के प्रस्फुटन के बजाय आदर्शों, सिद्धान्तों का आरोपण अधिक प्रतीत होता है। चित्रांकन और वातावरण सजीव, भाषा, सरल और अन्तर्द्वन्द्व ग्राह्य है।

नागर जी ने कथा साहित्य को एक स्वरूप दृष्टिकोण दिया है । उन्होंने प्रत्येक वर्ग के जीवन को बहुत निकटता से देखा है। नगार जी की कहानियों का शिल्प और कथ्य किसी रहस्य या रोमांच से आबद्ध नहीं है। उन्होंने यथार्थ जीवन की, मानव जीवन– एवं समाज, भारतीय संस्कारों से युक्त समाज की धड़कनों को छुआ है। उसकी हर संभावित समस्या

---

1 पॉंचवां दस्ता, पृष्ठ – 57

2 पॉंचवा, दस्ता, पृष्ठ– 52

को सामने उठाकर रखा है। नागर जी ने बहुत सारी कहानियाँ लिखी है । उनकी कहानियों में विविध सामाजिक, राजनैतिक प्रवृत्तियों का अंकन हुआ है। नागर जी एक ऐसे कथाकार है, जहाँ उनकी कहानियाँ हरेक स्थिति में समाज को प्रतिबिम्बित करती है, वे एसे सर्जक है, जहाँ वे स्वयं भोक्ता है और उसके संभावित समाधान के चेतन शिल्पी भी है। नागर जी की कहानियाँ बहुत अधिक प्रसिद्ध नहीं हो सकी , क्योंकि उनमें कथा तत्व अधिक है और वह सूक्ष्म संवेदना कम है जो आधुनिक कहानी का प्राण बिन्दु- अमृत स्पर्श है। निष्कर्षतः नागर जी एक सफल कहानीकार भी है। उनकी कहानी कला अपनी स्वतन्त्र सत्ता रखती हैं। प्रेमचन्दीय परम्परा को उन्होंने खुलापन दिया है और नवीन आन्तरिक मनोविश्लेषणों में न फँसकर समाज ओर जीवन के हर पहलू को सरल अभिव्यक्ति दी है। मुख्य रूप से उनको कहानियाँ उनकी जिन्दादिली की प्रतीक है और वे हास्य-व्यंग्य- विनोद और सहृदयता का ही प्रकटीकरण है। लखनऊ की बहुरंगी धरती ने उनकी रचना प्रतिभा को भी विविध रंगों से चित्रित किया है। यह सत्य है कि विविधता और रोचकता लिये ये कहानियां मन को नई ताजगी से भर देती है। साथ ही ये एक बात का बार-बार अहसास कराती है कि इन कहानियों के पात्र जीवन के कितने निकट है।[1]

नागर जी मुख्य रूप से मानव जीवन के चितेरे थे। आर्थिक अभाव, दो पीढियों के टकराव, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर वैयक्तिक संवेदनाओं का स्पर्श, नारी की विवशता और विद्रोह एवं उसकी गरिमा की छुवन, आधुनिक जीवन का असन्तुलन आदि स्थितियाँ उनको कहानियों की आधार शिला बनी है। नागर जी की कहानी कला में नूतन प्रयोगशीलता, रोचकता और तीव्रता के दर्शन होते है।

---

1 सिकन्दर हार गया - कहानी संग्रह (फ्लैप पृष्ठ)

सन्दर्भ तालिका

(क) आधार ग्रन्थ

1. **अग्निगर्भा :** अमृतलाल नागर, 1983, प्रथम संस्करण, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली ।
2. **अमृत और विषः** अमृतलाल नागर, 1966, प्रथम संस्करण, लोकभारती प्रकाशन, प्रयुक्त पंचम संस्करण, 1972
3. **एकदा नैमिषारण्ये :** अमृतलाल नागर, 1971, प्रथम संस्करण, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
4. **एक दिल हजार अफसाने :** अमृतलाल नागर, 1991, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली ।
5. **करवट :** अमृतलाल नागर, 1985, प्रथम संस्करण, राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली ।
6. **खंजन नयन :** अमृतलाल नागर, 1981, प्रथम संस्करण, राजपाल एण्ड सन्स, दिलली
7. **चढ़त न दूजो रंग :** अमृतलाल नागर, 1982, प्रथम संस्करण, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली ।
8. **नाच्यौ बहुत गोपाल :** अमृतलाल नागर, 1978, प्रथम संस्करण, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, प्रयुक्त चतुर्थ संस्करण, 1982
9. **पीढ़ियाँ :** अमृतलाल नागर, 1990, प्रथम संस्करण, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली।
10. **बिखरे तिनके :** अमृतलाल नागर, 1982, प्रथम संस्करण, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली।
11. **बूंद और समुद्र :** अमृतलाल नागर, 1956, प्रथम संस्करण , किताब महल प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, प्रयुक्त दूसरा संस्करण, 1964
12. **महाकाल;** अमृतलाल नागर, 1947, प्रथम संस्करण, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, प्रयुक्त संस्करण 1981
13. **मानस का हंस;** अमृतलाल नागर, 1972, प्रथम संस्करण, राजपाल एण्ड सन्स, दिलली ।

मेरी प्रिय कहानियाँ – अमृतलाल नागर, 1970, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली।

मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनायें – अमृतलाल नागर, 1986, प्रथम संस्करण, ज्ञानभारती, दिल्ली ।

शतरंज के मोहरे : अमृतलाल नागर, 1959, प्रथम संस्करण, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, प्रयुक्त तीसरा संस्करण, 1968

सिकन्दर हार गया , अमृतलाल नागर, 1973, प्रथम संस्करण, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली।

सात घूँघट वाला मुखड़ा : अमृतलाल नागर, 1968, प्रथम संस्करण, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, प्रयुक्त चतुर्थ संस्करण, 1980

सुहाग के नूपुर : अमृतलाल नागर, 1960, प्रथम संस्करण, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रयुक्त चतुर्थ संस्करण, 1980

सेठ बाँकेमल : अमृतलाल नागर, 1955, प्रथम संस्करण, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, प्रयुक्त संस्करण, 1983

हम फिदाए लखनऊ : अमृतलाल नागर, 1973, प्रथम संस्करण, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली।

(ख) सहायक सन्दर्भ ग्रन्थ

1. **अमृतलाल नागर** के उपन्यास ;-आनन्द प्रकाश त्रिपाठी, 1981 , प्रथम संस्करण, आनन्द प्रकाशन , फैजाबाद ।
2. **अमृतलाल नागर** के उपन्यास (नये मूल्यों की तलाश);-हेमराज कौशिक, 1984 प्रथम संस्करण, प्रकाशन संस्थान , दिल्ली ।
3. **अमृतलाल नागर** का उपन्यास साहित्य;-प्रकाश चन्द्र मिश्र, युगवाणी प्रकाशन, कानपुर।
4. **अमृतलाल नागर,** व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त; – सुदेश बत्रा, 1979, प्रथम संस्करण पंचशील प्रकाशन, जयपुर ।
5. **आधुनिकता और हिन्दी उपन्यास** ;-इन्द्रनाथ मदान, 1980, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
6. **आधुनिक साहित्य** ;–नन्ददुलारे वाजपेयी, संवत् 2013, भारतीय भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद।
7. **आधुनिक साहित्य,** विविध परिदृश्य;–सुन्दरलाल कथूरिया 1973, प्रथम संस्करण, वाणी प्रकाशन, दिल्ली ।
8. **आधुनिक हिन्दी उपन्यास**;–नरेन्द्र मोहन, 1975, प्रथम संस्करण, दि मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया लिमिटेड।
9. **आधुनिक हिन्दी उपन्यास;**–भीष्म साहनी, 1980, प्रथम संस्करण, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।
10. **आधुनिक और हिन्दी कहानी;**–जगन सिंह, 1980 प्रथम संस्करण, प्रासंगिक प्रकाशन दिल्ली ।
11. **आस्था और सौन्दर्य** ·–रामविलास शर्मा, 1961, प्रथम संस्करण, किताब महल, इलाहाबाद।

12. **आस्था के प्रहरी;**-सत्यपाल चुघ इकाई प्रकाशन, इलाहाबाद।

13 **इतिहास और आलोचना;** - नामवर सिंह, 1978, तीसरा संस्करण, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।

14. **उपन्यास और लोक जीवन;** -रैल्फ फॉक्स (अनु. नरोत्तम नागर), 1979, प्रथम संस्करण, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली ।

15. **उपन्यासकार अमृतलाल नागर;** -दामोदर वशिष्ट एवं आशा बागड़ी, 1975, प्रथम संस्करण, मुदित प्रकाशन, आदर्शनगर।

16. **उपन्यास का स्वरूप;** -शशिभूषण सिंहल, 1975 प्रथम संस्करण, कैलाश पुस्तक सदन, ग्वालियर।

17. **उपन्यासकारों के बीच प्रेमचन्द;** -विश्वम्भर मानव, 1961 , प्रथम संस्करण, किताब महल, इलाहाबाद।

18. **उपन्यासकार प्रेमचन्द**, समाजशास्त्रीय अध्ययन;-राजकुमारी गुगलानी, 1983 , प्रथम संस्करण, मंथन पब्लिकेशन्स, रोहतक ।

19. **ऐतिहासिक उपन्यास;**- सत्यपाल चुघ, 1974, प्रथम संस्करण, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली ।

20. **कथा के नये अक्षांश;** - धनंजय, 1984 , प्रथम संस्करण, शान्ति प्रकाशन, इलाहाबाद।

21. **कला और संस्कृति :** - सुमित्रानन्दन पन्त, 1965, प्रथम संस्करण, किताब महल, इलाहाबाद।

22. **कहानी के इर्द गिर्द :**- उपेन्द्रनाथ अश्क, 1971, प्रथम संस्करण, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद।

23 **कहानी , नयी कहानी;**- नामवर सिंह, 1966, प्रथम संस्करण, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

24. **कहानी, रचना प्रक्रिया और स्वरूप,** बटरोही, 1973 प्रथम संस्करण, अक्षर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली ।

25. **कहानी, स्वरूप और संवेदना,** राजेन्द्र यादव, 1988, तृतीय संस्करण, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।

26. **खंजन नयन, संवेदना और शिल्प,** प्रभा शर्मा, 1991, प्रथम संस्करण, बोहरा प्रकाशन, जयपुर।

27. **ग्रामीण समाजशास्त्र,** साहित्य परिप्रेक्ष्य, विश्वम्भर दयाल गुप्त, 1980, सीता प्रकाशन, ह हाथरस ।

28 **जिनके साथ जिया,** अमृतलाल नागर, 1973 , प्रथम संस्करण, राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली ।

29. **धर्म और समाज,** सर्वपल्ली राधाकृष्णन (अनु0 विराज एम0ए0) , 1963 , राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली ।

30. **परिवर्तन और विकास के सांस्कृतिक आयाम** , पूरनचंद्र जोशी , 1987 , प्रथम संस्करण, राजकमल प्रकाशन,

31. **प्रेमचन्द्र और उनका युग** , रामविलास शर्मा, 1952 , प्रथम संस्करण, मेहरचन्द्र मुंशीराम, दिल्ली ।

32. **प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्पविधि,** सत्यपाल चुघ, इकाई प्रकाशन, इलाहाबाद।

33. **मेरी प्रिय कहानियाँ–** अमृतलाल नागर, 1970, प्रथम संस्करण राजपाल एण्ड सन्स, दिलली ।

34 **स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य की समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि :** स्वर्णलता, 1975 , प्रथम संस्करण, विवेक पब्लिशिंग हाउस,

35. **समकालीन उपन्यास की भूमिका :** रणवीर रांग्रा, 1986, प्रथम संस्करण, जगतराम एण्ड सन्स, दिल्ली ।

36. **समकालीन हिन्दी उपन्यास** :- विवेकी राय, 1987 , प्रथम संस्करण, राजीव प्रकाशन, इलाहाबाद।

37. **समाजशास्त्र** :- एम. एल गुप्ता एवं डी. डी शर्मा, 1987, द्वितीय पूर्णतः संशोधित संस्करण, साहित्य भवन, आगरा।

38. **साहित्य और समाज,** परिवर्तन की प्रक्रिया;- सच्चिदानंद हीरानंद **वात्स्यामन** अज्ञेय, 1985 प्रथम संस्करण, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली ।

39. **साहित्य और संस्कृति** ;- अमृतलाल नागर, 1986 प्रथम संस्करण, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली ।

39. **साहित्य और संस्कृति** ;- जैनेन्द्र कुमार, 1979, प्रथम संस्करण , पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली ।

40. **साहित्य और संस्कृति** :- देवेन्द्रमुनि शास्त्री, 1970, प्रथम संस्करण, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी ।

41. **साहित्य का उद्‌देश्य** – प्रेमचन्द, 1967, प्रथम संस्करण हंस प्रकाशन, इलाहाबाद।

42. **साहित्य का समाजशास्त्र और स्थापना;** श्रीराम मेहरोत्रा, 1970, रचना प्रकाशन, वाराणसी ।

43. **साहित्य का समाजशास्त्र;** - नगेन्द्र, 1982 , प्रथम संस्करण, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली ।

44. **साहित्य का समाजशास्त्र;**- विश्वम्भर दयाल गुप्ता, 1982, सीता प्रकाशन, हाथरस।

45. **साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका** ;-मैनेजर पाण्डेय, 1989 प्रथम संस्करण , हरियाणा साहित्य अकादमी ।

46. **साहित्यालोचन** ; - श्यामसुन्दर दास, 1965, प्रथम संस्करण, इण्डियन प्रेस पब्लिकेशन्स प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग।

47. **संस्कृति और सहित्य** : -राम विलास शर्मा, 1949, प्रथम संस्करण, किताब महल , इलाहाबाद।

48. **संस्कृति के चार अध्याय;**– रामधारी सिंह, दिनकर, 1962, प्रथम संस्करण, उदयचल आर्य कुमार , पटना ।

49. **हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद;** – त्रिभुवन सिंह, 1973, हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी ।

50. **हिन्दी उपन्यास की शिल्पविधि का विकास;** – कृष्ण नाग, 1962, प्रथम संस्करण, लोक चेतना प्रकाशन, जबलपुर ।

51. **हिन्दी उपन्यास, समाजशास्त्रीय विवेचन;** – चण्डी प्रसाद जोशी, 1962, प्रथम संस्करण, अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर ।

52 **हिन्दी उपन्यास;**–सुरेश सिन्हा, 1972, प्रथम संस्करण, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

53 **हिन्दी उपन्यास;** – सुषमा धवन, 1961, प्रथम संस्करण, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।

54. **हिन्दी उपन्यास; शिल्प और प्रयोग;** – त्रिभुवन सिंह, 1973, हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी ।

55. **हिन्दी उपन्यास:** – शिव नारायण श्रीवास्तव, सं0 2016 वि. सरस्वती मंदिर, वाराणसी ।

56. **हिन्दी कहानी; उद्‌भव और विकास;** – सुरेश सिन्हा, 1967, **प्रथम संस्करण,** आशोक प्रकाशन, दिल्ली।

57 **हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ;** –शशिभूषण सिंहल, 1970, प्रथम संस्करण, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।

58. **हिन्दी उपन्यास विवेचन:** –सत्येन्द्र, 1968, प्रथम संस्करण, कल्याणमल एण्ड संस, त्रिमोलिया बाजार, जयपुर ।

59. **हिन्दी उपन्यास;** – शशिभूषण सिंहल, 1968, प्रथम संस्करण, सरस्वती मन्दिर, वाराणसी

60. हिन्दी उपन्यास शिल्प, बदलते परिप्रेक्ष्यः प्रेम भटनागर, 1968, प्रथम संस्करण, अर्चना प्रकाशन जयपुर ।

61. हिन्दी उपन्यास, सुषमा धवन , 1961, प्रथम संस्करण, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।

62. हिन्दी कहानी : एक अंतरंग परिचयः– उपेन्द्र नाथ अश्क, 1967, प्रथम संस्करण, नीलाम प्रकाशन, इलाहाबाद।

63. हिन्दी कहानी, कथ्य और शिल्प, सन्तबख्श सिंह, 1973, प्रथम संस्करण, अभिनव भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

64 हिन्दी की प्रगतिशील कहानियाँ, धनंजय वर्मा, ज्ञानरंजन, स्वयं प्रकाश, 196, प्रथम संस्करण राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली ।

कोश –

1 भारतीय साहित्य कोश – संपादक – डॉ0 नगेन्द्र प्रथम सस्करण – 1981 प्रकाशन – नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली ।

2. हिन्दी साहित्य कोश – प्रधान संपादक – डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा, द्वितीय संस्करण, 2020

संस्कृत –

(क) सन्दर्भ ग्रन्थ

1. काव्यालंकार – आचार्य भामह : भाव्यकाट – देवेन्द्र नाथ शर्मा, प्रकाशक, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद् पटना ।

2. काव्यालंकार– आचार्य रूद्रट – व्याख्याकार – श्री रामदेव शुक्ल, संस्करण प्रथम, संवत् 2023 विक्रमी ।

3. नाट्य शास्त्रम् – श्रीमद् भरतमुनि, – टीकाकार– आचार्य मधुसूदन शास्त्री, विक्रम संवत् 2028, सम्पादक – श्री मधुसूदन शास्त्री

4. रस गंगाधर – पडित जगन्नाथ – व्याख्याकार – पं0 मनमोहन झा, 1955, प्रकाशक, चौखम्भा विघा भवन, बनारस।

5. वक्रोक्ति जीवितम् – आचार्य कुन्तक – व्याख्याकार – श्री राधेश्याम मिश्र, 1967, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी ।

6. साहित्य–दर्पण – आचार्य विश्वनाथ – टीकाकार – प0 शालग्राम शास्त्री, 1956, प्रकाशक– मोती – लाल बनारसीदास, वाराणसी।

(ख) कोश –

1. शब्द कल्पद्रुम – चतुर्थ भाग – राजा राधाकान्त विरचित, संस्करण – 1961, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी ।

1. A History of Ancient Literature ; Max Mullsfer, 1912 Penini office, hooneshari Office, Prayay.
2. Concept of Ideology, Jorge Larrain, 1981, Forwarded by Tom Bottomore.
3. Culture and Society - Raymond Williams 1961, Pelican Book
4. Culture- and Society in contemporary Europe- Stanley Hoffmann, 1981, George Allen and Unwin.
5. Method in the Sociology of Literature; Lucien Goldman, 1981, Basil Black well.
6. Hidden God: Lucien Goldmann, 1967, Routedge and Kegan Paul, London.
7. Sociology of Indian Literature in Diversities, D.P. Mukherjee, 1958, Peoples Publishing House, New Delhi.
8. The Activities Nature of the Art of Socialist Redism; y. Lukin, Marxist Leninist, Aesthetics and life.
9. The Social Function of art, Radha Kamal Mukherjee, 1951, Hind Kitab Ltd. Bombay.
10. The Sociological Imagination - C Weight Mills, 1959, Oxford University Pren, London.

11. The Social Production of Art - Janet Wolff, 1981, Macmillan Pren Ltd. London.

12. The Sociology of Literature : Diana and Alanswingewood, 1972, Macgibbon and Kee, London.

13. The Sociology of Art and Literature- Milton C. Albrecht and others, 1970, Duck worth.

14. Towards A sociology of the Novel; Lucien Goldmann, 1975, Tavistock Publication, London.

पत्र–पत्रिकायें

1. आज , 19 अगस्त, 1979
2. आलोचना, 4
3. आलोचना, 20
4. आलोचना, 28
5. कादम्बिनी, दिसम्बर, 1973
6. कादम्बिनी, नवम्बर, 1980
7. दस्तावेज, प्रवेशांक, 1979
8. धर्मयुग, 2 अगस्त 1964
9. धर्मयुग, 27 नवम्बर, 1966
10. धर्मयुग, 11 जून 1972
11. धर्मयुग, 20 अगस्त 1972
12. धर्मयुग, 1 अप्रैल, 1973